इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDC-111
हिंदी नाटक एवं एकांकी

हिंदी नाटक एवं एकांकी

खंड 1

हिंदी नाटक एवं एकांकी–1 7

खंड 2

हिंदी नाटक एवं एकांकी–2 181

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

प्रस्तुत पाठ्यक्रम BHDC-111 'हिंदी नाटक तथा एकांकी' बी.ए. (ऑनर्स) हिंदी का पाठ्यक्रम है। इस पाठ्यक्रम में दो खंड हैं जिनमें 17 इकाइयाँ हैं। पाठ्यक्रम में कुछ विशिष्ट हिंदी नाटकों तथा एकांकी का अध्ययन कराया जाएगा। इस पाठ्यक्रम में आप जिन तीन नाटकों का अध्ययन करेंगे, वे हैं– 'अंधेर नगरी' (भारतेन्दु हरिश्चंद्र), 'स्कन्दगुप्त' (जयशंकर प्रसाद) और 'माधवी' (भीष्म साहनी)। इनके साथ ही पाठ्यक्रम में आप तीन एकांकियों का भी अध्ययन करेंगे। ये एकांकियाँ हैं– 'और वह जा न सकी' (विष्णु प्रभाकर), 'भोर का तारा' (जगदीश चंद्र माथुर) तथा 'दीपदान' (रामकुमार वर्मा)। नाटकों तथा एकांकी से संबद्ध विश्लेषण एवं मूल्यांकन की इकाइयाँ इस पाठ्यक्रम में दी गई हैं। साथ ही इनके लेखकों के परिचय भी नाटक तथा एकांकी से संबद्ध इकाइयों में प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे नाटक या एकांकी के अध्ययन के पूर्व आप उस विशिष्ट रचना के रचनाकार/लेखक से परिचित हो सकें।

जैसा कि आप समझ गए होंगे कि पाठ्यक्रम का उद्देश्य है आपको हिन्दी साहित्य के कुछ विशिष्ट नाटकों एवं एकांकी से परिचित कराना। इन्हें समझने के लिए उनके विशिष्ट विषयों को सरल भाषा में विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। किसी भी विधा की रचना का वाचन करते हुए यह आवश्यक होता है कि आप उसके कथानक या अंतर्वस्तु को समझें। अतः मूल नाटक एवं एकांकी पर विचार करने के क्रम में हमने उसकी कथा के साथ–साथ उसके विविध पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है जिससे आप उस रचना को ठीक तरह से समझ सकें। पाठ्यक्रम की इकाइयों में अध्ययन कराए जा रहे विशिष्ट नाटकों तथा एकांकी की कथावस्तु, चरित्रों भाषा तथा शैली और उद्देश्य पर विचार किया गया है। पाठ्यक्रम की पहली इकाई में आप नाटक के स्वरूप और विकास का अध्ययन करेंगे। इसी इकाई में आप नाटक के प्रमुख तत्वों के संदर्भ में भी जानकारी प्राप्त करेंगे। इसी प्रकार पाठ्यक्रम की 11वीं इकाई में एकांकी तथा उसके तत्वों के संदर्भ में विचार किया गया है। इन इकाइयों का अध्ययन करने के उपरांत आप नाटकों तथा एकांकी का मूल्यांकन और विश्लेषण सरलता से कर सकेंगे।

पाठ्यक्रम में निर्धारित नाटक आपको पुस्तकालय से सरलता से प्राप्त हो सकते हैं। आपसे अपेक्षा की जाती है कि आप इन नाटकों तथा एकांकी का गंभीरता से अध्ययन करें जिससे इकाइयों के विषयों को समझने में कठिनाई न हो। हमारा प्रयत्न है कि इस पाठ्यक्रम की इकाइयों की सहायता से आप इन विशिष्ट नाटकों एवं एकांकी को भली–भाँति समझ लें और उनका आस्वादन कर सकें।

शुभकामनाओं के साथ!

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDC-111

हिंदी नाटक एवं एकांकी

खंड

1

हिंदी नाटक एवं एकांकी–1

इकाई 1	
हिंदी नाटक : स्वरूप और विकास	11
इकाई 2	
भारतेन्दु की नाट्य दृष्टि और 'अंधेर नगरी'	39
इकाई 3	
'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु का विश्लेषण	51
इकाई 4	
'अंधेर नगरी' का नाट्य–शिल्प'	62
इकाई 5	
जयशंकर प्रसाद के नाटकों का सामान्य परिचय	78
इकाई 6	
'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का विश्लेषण	94
इकाई 7	
'स्कन्दगुप्त' का नाट्य–शिल्प	112
इकाई 8	
भीष्म साहनी एवं उनके नाट्य साहित्य का सामान्य परिचय	132
इकाई 9	
'माधवी' नाटक का कथ्य और शिल्प	150
इकाई 10	
'माधवी' के कथानक का वैशिष्ट्य एवं प्रमुख पात्र	168

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 1 का परिचय

यह पाठ्यक्रम BHDC-111 'हिंदी नाटक एवं एकांकी' का प्रथम खंड है। इसमें आप हिंदी नाटक का अध्ययन करेंगे। हिंदी नाटक के स्वरूप और विकास की विस्तृत जानकारी देने के साथ–साथ इस खंड में हम आपको हिंदी के तीन नाटकों 'अंधेर नगरी', 'स्कन्दगुप्त' और 'माधवी' का अध्ययन करा रहे हैं। 'अंधेर नगरी' के लेखक भारतेन्दु हरिश्चंद्र हैं। 'स्कन्दगुप्त' जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित है और 'माधवी' नाटक भीष्म साहनी द्वारा लिखा गया है।

इस खंड में कुल दस इकाइयाँ हैं। इकाई–1, हिंदी नाटक के स्वरूप और विकास से संबंधित है। नाटक की स्वरूपगत विशेषताओं का उल्लेख करते हुए यहाँ प्राचीन भारतीय और पाश्चात्य नाट्य दृष्टियों की चर्चा की गई है। यह भी बताया गया है कि किस तरह हिंदी नाटक ने इन दोनों से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी अपना निजी स्वरूप निर्मित किया है। हिंदी नाटक के विकास के विभिनन चरणों का परिचय देते समय प्रमुख रचनाकारों, युगीन परिस्थितियों और नाटक के क्षेत्र में उनके योगदान का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। विभिन्न युगों में नाट्य–रचना के क्षेत्र में आए बदलावों तथा उनके कारणों को जाँचने, परखने का प्रयास भी किया गया है।

इकाई 2, 3, 4 'अंधेर नगरी' नाटक से संबंधित है। इकाई 2 में 'अंधेर नगरी' के लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का परिचय प्रस्तुत किया गया है साथ ही उनके नाट्य साहित्य की जानकारी भी दी गई है। इकाई 3 एवं 4 में नाटक के कथानक और नाटक की संरचनागत विशिष्टताओं का विवेचन–विश्लेषण है। 'अंधेर नगरी' पर चर्चा के माध्यम से इन इकाइयों में नाटककार के रूप में 'भारतेन्दु हरिश्चंद्र' की उपलब्धियों और सीमाओं पर विचार किया गया है।

'अंधेर नगरी' हिंदी नाट्य परंपरा का पहला महत्वपूर्ण नाटक है। यह नाटक जब लिखा गया था तब से लेकर अब तक उतना ही प्रासंगिक है और इसका कई रूपों में प्रदर्शन भी किया गया है जिसकी चर्चा आप इकाइयों में पढ़ेंगे। इन इकाइयों में आपको भारतेन्दु के नाटकों और नाटक संबंधी उनके विचारों को जानने का भी अवसर मिलेगा।

खंड में 3 इकाइयाँ जयशंकर प्रसाद के नाटक 'स्कन्दगुप्त' से संबंधित है। खंड की इकाई 5, 6 एवं 7 में जयशंकर प्रसाद के नाटक 'स्कन्दगुप्त' से संबद्ध विषयों का अध्ययन कराया गया है। 'स्कन्दगुप्त' प्रसाद जी का महत्वपूर्ण नाटक है और इसमें 'गुप्तकाल' के पतन की घटनाएँ हैं। इकाई 5 में आप जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय प्राप्त करेंगे तथा उनके नाट्य साहित्य के बारे में जानेंगे। इकाई 5 में ही जयशंकर प्रसाद की नाट्य दृष्टि और 'स्कन्दगुप्त' की रचनाशीलता पर विचार किया गया है। इकाई 6 में 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु पर विस्तार से चर्चा की गई है। इस क्रम में इतिहास दृष्टि और राष्ट्रीय चेतना पर भी विचार किया गया है। इकाई 7 में नाट्य शिल्प के आधार पर 'स्कन्दगुप्त' नाटक का मूल्यांकन एवं विश्लेषण किया गया है। इस इकाई के अंतर्गत दृश्य योजना, भाषा, संवाद, अभिव्यक्ति और नाटक में शामिल गीतों की विशेषताओं पर भी विचार किया गया है। प्रसाद के नाटक और विशेष रूप से 'स्कन्दगुप्त' के संदर्भ में रंगमंच प्रस्तुति का स्वर हमेशा विविधता का विषय रहा है। नाटक लिखे जाने से लेकर अब तक इसके कई प्रदर्शन प्रख्यात रंगकर्मियों ने किए हैं। इसके बावजूद यह भी सत्य है कि इस नाटक की रंगमंच प्रस्तुति हमेशा चुनौती भरी रही है। आप इन इकाइयों के माध्यम से स्कन्दगुप्त के इन सभी पहलुओं पर गंभीरता से विचार कर सकेंगे।

खंड की इकाइयाँ 8, 9 एवं 10 भीष्म साहनी के प्रसिद्ध नाटक 'माधवी' पर आधारित हैं। 'माधवी' सन् 1984 ई. में प्रकाशित हुआ था। इस नाटक में कल्पना का आधार लेकर पौराणिक कथा की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इकाई 8 में भीष्म साहनी का परिचय दिया गया है और उनके नाटकों का परिचय देने के साथ–साथ नाटकों की विशेषताओं पर विचार किया गया है। इकाई 9 में 'माधवी' नाटक का नाट्यशिल्प के बिन्दुओं के आधार पर मूल्यांकन एवं विश्लेषण किया गया है। इकाई 10 में 'माधवी' नाटक के चरित्रों तथा उनकी विशेषताओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

लेकिन इस सभी इकाइयों का अध्ययन करने से पहले यह जरूरी है कि आप 'अंधेर नगरी' स्कन्दगुप्त और 'माधवी' नाटक को ध्यान से पढ़ें जहाँ–जहाँ आपको समझने में कठिनाई उत्पन्न हो उसे रेखांकित कर लें और परामर्श सत्रों में परामर्शदाताओं (काउंसलरों) के साथ विचार विमर्श करें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1: हिंदी नाटक : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 साहित्य की अन्य विधाएँ और नाटक

- 1.2.1 प्रत्यक्षता
- 1.2.2 प्रभाव की सघनता और तीव्रता
- 1.2.3 सामूहिकता
- 1.2.4 नाटक की रचना प्रक्रिया और दर्शक
- 1.2.5 नाट्य प्रस्तुति और दर्शक
- 1.2.6 विभिन्न कलाओं का समावेश
- 1.2.7 सजीवता
- 1.2.8 संवादात्मकता
- 1.2.9 तात्कालिकता

1.3 नाटक और रंगमंच का संबंध

1.4 नाटक और उपन्यास

1.5 नाटक के तत्व

- 1.5.1 कथावस्तु
- 1.5.2 पात्र
- 1.5.3 परिवेश
- 1.5.4 भाषा, शैली और संवाद
- 1.5.5 अभिनेयता और मंचीयता
- 1.5.6 प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य

1.6 नाटक के प्रकार

1.7 हिंदी नाटक का विकास

- 1.7.1 भारतेन्दु युगीन हिंदी नाटक
- 1.7.2 प्रसाद युगीन हिंदी नाटक
- 1.7.3 प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिंदी नाटक के स्वरूप के विषय में विस्तृत जानकारी दे सकेंगे;
- अन्य साहित्यिक विधाओं के संदर्भ में नाटक की विशेषताओं को पहचान सकेंगे;
- नाटक और उपन्यास में अंतर बता सकेंगे;
- नाटक के विभिन्न तत्वों की चर्चा कर सकेंगे;

- नाटक के विभिन्न प्रकारों को पहचान सकेंगे;
- हिंदी नाटक के विकास के विभिन्न चरणों की विशेषताएँ बता सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

नाटक, साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में विशिष्ट विधा होती है और एकांकी वस्तुतः नाटक का ही एक प्रकार है। एकांकी का जन्म आधुनिक युग में हुआ और शिल्प तथा टेकनीक की दृष्टि से हिंदी एकांकी का शिल्प पश्चिम से प्रभावित है। किंतु नाटक का अस्तित्व दुनिया भर के साहित्य में प्राचीन काल से मौजूद है। वह प्राचीन काल से मनुष्य का सहचर रहा है। अपार सुख–दुख के गहन क्षणों में जैसे मनुष्य की वाणी से अनायास कविता फूट पड़ी उसी तरह गहन भावों की शारीरिक मानसिक अभिव्यक्ति के लिए नृत्य और नाटक की शुरूआत हुई। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ–साथ साहित्य की उन्नति होती गई और महाकाव्यों तथा नाट्यकृतियों का सृजन हुआ। श्रेष्ठ रचनात्मक साहित्य के आने के बाद उसके कुछ सामान्य सिद्धांत निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया। इस प्रकार कविता और नाटक के रचना–सिद्धांतों की परंपरा विकसित हुई।

विभिन्न युगों में हुए सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिवर्तनों के अनुरूप नाटक की रचना प्रक्रिया में बदलाव आते रहे और नाट्य सिद्धांतों में तथानुरूप परिवर्तन होते रहे। इस तरह नाटक ने आज जो स्वरूप ग्रहण किया है वह एक लंबी परंपरा और समय के साथ–साथ परंपरा में हुए आंतरिक और बाह्य परिवर्तनों का स्वाभाविक परिणाम है। ऐसी स्थिति में हिंदी नाटक के स्वरूप और विकास की चर्चा करते समय हमें प्राचीन और मध्ययुगीन नाट्य परंपरा को भी ध्यान में रखना होगा।

1.2 साहित्य की अन्य विधाएँ और नाटक

हम चर्चा कर चुके हैं कि नाटक एक विशिष्ट साहित्यिक विधा है। यहाँ हम उसकी विशिष्टता के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। यह जानकारी नाटक की रचना प्रक्रिया को समझने में सहायक होगी। साथ ही किसी भी नाट्य कृति के विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए भी सही दिशा प्रदान करेगी।

1.2.1 प्रत्यक्षता

साहित्य की अन्य विधाओं यानी कविता, कहानी और उपन्यास आदि को हम पढ़ या सुन सकते हैं जबकि नाटक को पढ़ने और सुनने के अतिरिक्त हम अपनी आँखों से देख भी सकते हैं। सभी साहित्यिक विधाओं का माध्यम शब्द होता है, किंतु नाटक में शब्द के साथ–साथ रूप भी समाहित होता है। अन्य साहित्यिक विधाएँ शब्दों द्वारा, कल्पना की सहायता से, हमारे हृदय अथवा कल्पना में भाव चित्र उपस्थित करती हैं, जबकि नाटक स्थिति–परिस्थिति को हमारे सामने साक्षात् दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम जीवन की घटनाओं को वास्तव में घटित होता देख रहे हैं। इंद्रियों के आधार पर पड़ने वाले इस प्रभाव को ध्यान में रखते हुए प्राचीन भारतीय आचार्यों ने काव्य के दो विभाग किए हैं–श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। संस्कृत साहित्य में नाटक को भी काव्य ही माना गया है और उसे दृश्य काव्य की श्रेणी में रखा गया है। इस तरह कविता और नाटक का भेद 'श्रव्य काव्य' और 'दृश्य काव्य' के रूप में किया गया है। 'श्रव्य काव्य' के शब्द उन दिनों की स्मृति को सुरक्षित रखे हुए हैं जब साहित्य में लिखित परंपरा की बजाए मौखिक (गायन की) परंपरा का प्रचलन अधिक रहा होगा। प्राचीन समय में कविता जन समुदाय के समक्ष गाकर सुनाई जाती थी। उदाहरण के लिए, महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित आदिकाव्य 'रामायण' को लव–कुश आरंभ

में गाकर ही सुनाते हैं। माना जाता है कि उन्होंने इसे भगवान रामचंद्र के दरबार में गाकर सुनाया था।

नाटक को 'दृश्य काव्य' इसलिए कहा गया कि दर्शक विशेषतः उसे आँख और कान दोनों इंद्रियों से ग्रहण करता है। उसे सुनने के साथ–साथ देखा भी जा सकता है। आज जब साहित्य की काव्य के अतिरिक्त अन्य अनेक विधाएँ सामने आ गई हैं और वह मुद्रित होकर सुगमता प्राप्त होने के कारण सुनने की बजाए पढ़ने की वस्तु अधिक हो गया है तब इसे 'श्रव्य काव्य' कहना बहुत तर्क संगत नहीं रहा। इसी तरह आज नाटक को 'दृश्य काव्य' की बजाए दृश्य विधा कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि आज नाटक को गद्य साहित्य का प्रमुख भेद माना जाता है। यद्यपि पद्य नाटक और गीति नाट्य भी नाटक के प्रकार हैं, किंतु अब मुख्य रूप से नाटक गद्य की ही एक विधा मानी जाती है।

1.2.2 प्रभाव की सघनता और तीव्रता

ऊपर हम कह चुके हैं कि अन्य साहित्यिक विधा शब्दों के माध्यम से हमारी कल्पना में बिंब या भावचित्र उत्पन्न करती है जिसे हम अनुभव करते हैं। किंतु नाटक हमारे सामने प्रत्यक्ष होता है। इसमें हमें कल्पना का उतना सहारा नहीं लेना पड़ता जितना अन्य विधाओं में। स्वाभाविक है कि जो हम सुनते या पढ़ते हैं उसकी तुलना में जो हम देखते हैं उसका प्रभाव ज्यादा होता है। यह लोक सिद्ध अनुभव है कि प्रत्यक्ष और मूर्त का प्रभाव अप्रत्यक्ष और अमूर्त की अपेक्षा अधिक होता ही है। यही कारण है कि नाटक की प्रभाव क्षमता अन्य किसी भी विधा से अधिक होती है। इस अंतर को हम आधुनिक युग में रेडियो और टेलीविजन की तुलना से समझ सकते हैं।

1.2.3 सामूहिकता

नाटक में भाषा के माध्यम से लेखक जो कुछ दर्शकों तक पहुँचाना चाहता है उसे अभिनेता अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। दृश्य माध्यम होने के कारण नाटक में सामाजिकता अन्य विधाओं से अधिक होती है। कविता, कहानी या उपन्यास को हम अकेले में बैठकर पढ़ सकते हैं, पर नाटक का आस्वाादन एकांत में नहीं किया जा सकता। यह एक सामूहिक कला है जिसमें लेखक के अलावा रंगकर्मियों (निर्देशक, अभिनेता मंडली, मंच–सज्जाकार, प्रकाश व्यवस्थापक, संगीत वाद्यकार आदि) की पूरी–पूरी सक्रिय भूमिका होती है।

1.2.4 नाटक की रचना प्रक्रिया और दर्शक

दर्शक इस सामूहिक कला के अनिवार्य अंग होते हैं। लेखक तथा रंगकर्मियों के संपूर्ण प्रयास दर्शक को केंद्र में रख कर चलते हैं। कोई नाट्य प्रस्तुति कितनी ही अच्छी क्यों न हो, उसकी सफलता और सार्थकता सिद्ध करने के लिए दर्शक समूह की उपस्थिति अनिवार्य है।

दर्शकों के संबंध में खास बात यह है कि नाटक देखने आए विभिन्न व्यक्ति एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न होते हैं। उनके आयु–वर्ग, शिक्षा–दीक्षा, सामाजिक स्तर में काफी विविधता होती है। इसी कारण उनके सोच–विचार, पसंद–नापसंद और रुचियाँ भी एक दूसरे से अलग–अलग हो सकती हैं। लोग एक साथ बैठकर नाट्य प्रस्तुति को देखते हैं। दर्शक समूह की इस विशिष्टता का असर नाटक की रचना प्रक्रिया पर पड़ता है। वैविध्यपरक दर्शक समूह को एक साथ प्रभावित करने के लिए नाटक में तीव्र प्रभावोत्पादकता नितांत अपेक्षित होती है। नाटक में प्रभावोत्पादन की क्षमता लाने के लिए लेखक तथा रंगकर्मी दोनों का योग आवश्यक है।

1.2.5 नाट्य प्रस्तुति और दर्शक

नाटक में दर्शक की अहम् स्थिति एक अन्य दृष्टि से भी होती है। दर्शकों का व्यवहार नाट्य प्रदर्शन को प्रभावित करता है। रंगशाला (नाट्यगृह) में बैठे दर्शकों की प्रस्तुति को देखकर जो भी तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है वह अभिनेताओं को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित अवश्य करती है। इस तरह दर्शक और प्रस्तोता के बीच स्थापित होने वाला प्रत्यक्ष तादात्म्य नाट्य प्रस्तुति का महत्वपूर्ण अंग बन जाता है। इस दृष्टि से नाटक आधुनिक विज्ञान के युग के विभिन्न तकनीकी दृश्य माध्यमों की तुलना में विशिष्ट होता है। सिनेमा या टेलीविजन देख रहे दर्शक और नाटक देख रहे दर्शक में यही अंतर होता है। प्रस्तुत करने वाले और देखने वाले के बीच जीवंत सपंर्क एक दूसरे को खास तरह से प्रभावित करता है। यही कारण है कि नाटक जन सामान्य को अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में ज्यादा प्रभावित कर पाता है। नाटक की इस विशेषता के आधार पर ही संस्कृत के आचार्यों ने नाटक की अन्य विधाओं की तुलना में श्रेष्ठ बताते हुए कहा है– 'काव्येषु नाटकम् रम्यम्।' अर्थात् काव्यों में नाटक सबसे अधिक रमणीय होता है।

1.2.6 विभिन्न कलाओं का समावेश

सामूहिक कला होने के कारण नाटक में विभिन्न कलाओं का अनिवार्य समावेश रहता है। नाटक देखते समय हमारा ध्यान अक्सर केवल अभिनेताओं की ओर जाता है। किंतु अभिनेताओं के अलावा और भी कई व्यक्ति होते हैं जो नाटक की प्रस्तुति में सहायता करते हैं। नाटक के लिए उपयुक्त रंगमंच की सजावट करने के लिए स्थापत्य कला और चित्रकला आदि में कुशल व्यक्तियों की जरूरत पड़ती है। पात्रों की वेशभूषा तथा श्रृंगार के लिए खास तरह के विशेषज्ञ अपेक्षित होते हैं। गीत, नृत्य आदि की प्रस्तुति में सहायता के लिए संगीत वाद्य के क्षेत्र में कुशल लोगों की जरूरत होती है। मंच पर प्रकाश तथा ध्वनि–प्रभाव, माइक आदि की व्यवस्था के लिए उपयुक्त व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता होती है। आधुनिक युग में बिजली के प्रकाश तथा वैज्ञानिक तकनीकों के प्रयोग के कारण प्रकाश व्यवस्था की संपूर्ण नाट्य प्रभाव में बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह ध्यान रखना जरूरी होता है कि मंच के किस भाग पर कब, कितना और किस ढंग का प्रकाश दिया जाए कि अभिनेताओं का अभिनय अधिक से अधिक यथार्थ, सजीव और प्रभावपूर्ण हो सके। पर्दे के पीछे से सक्रिय प्रकाश व्यवस्थापक अपने कार्य में उतनी ही लगन और निष्ठा के साथ संलग्न रहता है जितना हमारी आँखों के सामने मंच पर उपस्थित अभिनेता। नाट्य प्रस्तुति को सफल बनाने में उसका भरपूर योगदान होता है।

1.2.7 सजीवता

नाटक की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें जीवन की वास्तविकता का अनुकरण जीते–जागते साधनों द्वारा किया जाता है। अन्य विधाएँ जीवन का अनुकरण शब्दों के माध्यम से उसका वर्णन करके करती हैं जबकि नाटक में घटनाओं को घटित होते दिखाया जाता है। अभिनेता वेशभूषा और रूप सज्जा द्वारा पात्रों का रूप धारण करते हैं और उनके आचार–व्यवहार तथा बातचीत आदि का अनुकरण करते हैं। इस तरह नाटक में जीवन के कार्य व्यापारों की प्रत्यक्ष क्रियाशील सजीवता होती है, उनका विवरण नहीं होता। प्राचीन संस्कृत आचार्यों ने अवस्था के अनुकरण को नाटक कहा है– 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' (दशरूपक 1/7)। यह अवस्था शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार की होती है। इसलिए अनुकरण चार प्रकार के अभिनय– आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य द्वारा किया जाता है। इस तरह नाटक में अभिनय की प्रधानता होती है या फिर यह भी कहा जा सकता है कि अभिनय से ही नाटक बनता है।

1.2.8 संवादात्मकता

नाटक एक संवादात्मक कला है। यहाँ संपूर्ण स्थिति का उद्घाटन पात्रों के संवादों तथा कार्यकलाप से होता है। अन्य विधाओं में लेखक स्वयं भी विवरण दे सकता है, पृष्ठभूमि के संकेत कर सकता है, पात्रों के कार्यों पर टिप्पणी कर सकता है, किंतु नाटक में ऐसा नहीं होता। नाटककार अपनी ओर से केवल रंग संकेत देता है जो दृश्य–सज्जा वातावरण, पात्रों के रूपाकार, अभिनय आदि से संबंधित होते हैं। प्रमुख कार्य–व्यापार संवादों के माध्यम से ही चलता है।

1.2.9 तात्कालिकता

हम कह चुके है कि साहित्य की अन्य विधाएँ पढ़ने के लिए होती हैं किंतु नाटक देखने के लिए। पढ़ते समय यदि कोई बात समझ में नहीं आती या ध्यान से चूक जाती है तो उसे दोबारा पढ़ा जा सकता है या रुक–रुक कर कई अंतरालों में पढ़ा जा सकता है। किंतु नाटक में एक बार प्रस्तुत स्थिति अथवा संवाद दोहराया नहीं जाता। दर्शक को उसे तुरंत समझना होता है। अतः स्थिति, भाषा, शैली, संवाद या प्रस्तुति में तत्काल संप्रेषणीयता की क्षमता अपेक्षित होती है।

बोध प्रश्न–1

क) प्राचीन भारतीय आचार्यों ने काव्य के कौन से दो विभाग किए? नाटक इनमें से किसके अंतर्गत आता है ?

....

....

....

ख) क्या आज भी नाटक को काव्य की श्रेणी में रखा जाता है? यदि नहीं तो क्यों?

....

....

....

ग) दर्शक नाटक की प्रस्तुति को किस तरह प्रभावित करते हैं?

....

....

....

1.3 नाटक और रंगमंच का संबंध

दृश्य माध्यम होने के कारण नाटक की रचना प्रक्रिया की अपनी मौलिक विशेषताएँ होती हैं। रंगमंचीयता अथवा प्रस्तुति पक्ष नाट्य रचना प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि नाटक साहित्य की वह विधा है जिसकी सफलता की जाँच रंगमंच पर होती है। जो रचना अभिनेय नहीं यानी जिसे रंगमंच पर प्रस्तुत न किया जा सकता हो वह नाटक नहीं कही जा सकती, भले ही वह संवादों के माध्यम से क्यों न प्रस्तुत की गई हो। इस दृष्टि से नाटक और रंगमंच में घनिष्ट संबंध होता है। ये दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। यही कारण है कि रंगमंचीय परिस्थितियों का बदलाव नाटक को प्रभावित करता है और नाट्य लेखन की प्रवृत्तियों का बदलाव रंगमंच को बदल देता है। रंगमंच युग विशेष की जनरुचि और तत्कालीन सामाजिक,

आर्थिक स्थितियों पर आधारित रहता है। यही कारण है कि नाटक का स्वरूप हर युग में बदलता रहता है। 16वीं शताब्दी में इंग्लैंड में रंगमंच काफी लोकप्रिय था। परिणामस्वरूप उस युग में शेक्सपियर जैसे प्रतिभा संपन्न नाटककार हुए और उन्होंने अपूर्व नाटकों की रचना की जो आज भी विश्व साहित्य की अमूल्य धरोहर बने हुए हैं। किंतु कुछ समय बाद इंग्लैंड में थियेटर में तालेबंदी हो गई। 40 वर्ष तक थियेटर बन्द रहने के कारण रंगमंचीय गतिविधियाँ ठप्प रहीं। बाद में जब रेस्टोरेशन युग में रंग कर्म फिर से शुरू हुआ तो नाटक की शक्ल ही बदली हुई थी।

1.4 नाटक और उपन्यास

नाटक तथा उपन्यास दोनों ही गद्य विधाएँ आज बहुत लोकप्रिय हैं। यहाँ हम दोनों की तुलना प्रस्तुत कर रहे हैं। नाटक की तुलना में उपन्यास काफी नई विधा है। नाट्य लेखन और प्रस्तुति की परंपरा भारत में बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। किंतु हिंदी में उपन्यास की शुरूआत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई है। अंग्रेजी साहित्य के परिचय के माध्यम से पहले पहल बंगला में उपन्यास लेखन आरंभ हुआ। बंगला के माध्यम से वह हिंदी में आया। स्वरूप की दृष्टि से इन दोनों में कुछ समानताएँ हैं जैसे दोनों के लिए कथानक, पात्र आदि अपेक्षित होते हैं। किंतु नाटक और उपन्यास अपनी मूल प्रकृति संवेदना और प्रभाव में भिन्न होते हैं। उपन्यास की रचना केवल पढ़ने के लिए होती है जबकि नाटक की रचना रंगमंच पर अभिनय के लिए होती है। इसलिए उपन्यास तो अपने आप में पूर्ण होता है जबकि नाटक रंगशाला में प्रस्तुत होकर ही पूर्ण होता है। उपन्यास का कथानक प्रायः अतीत में घटित होता है। अतः उपन्यास की भाषा में ज्यादातर भूतकालिक क्रियाएँ ही प्रयुक्त होती हैं। नाटक में घटनाएँ अतीत की होने पर भी वर्तमान में हमारी आँखों के समक्ष घटित दिखाई जाती हैं। अतः यहाँ विवरण या वर्णन मात्र न होकर पुनः सृजन होता है। उपन्यासकार के पास केवल शब्द ही होते हैं। नाटककार के शब्दों की पूर्ति और पुष्टि अभिनय द्वारा की जाती है जिससे नाटक में सजीवता का समावेश होता है। इस तरह दोनों में की कथावस्तु भाषा शैली, पात्र आदि तत्व होने के बावजूद रूप रचना की विशिष्टता के कारण इन तत्वों में भी एक स्तर पर भेद हो जाता है।

आकार

उपन्यास के संबंध में आकार की कोई सीमा नहीं है। वह हजार पृष्ठों का भी हो सकता है और सौ–डेढ़ सौ पृष्ठों का लघु उपन्यास भी। उसे हम लगातार भी पढ़ सकते हैं और रुक कर यानी उसे हम एक बैठक में भी पढ़ सकते हैं और कई सप्ताह का समय लगाकर धीरे–धीरे भी पढ़ सकते हैं। किंतु नाटक को हम एक बार में ही देखते हैं। नाट्यगृह में हम दो तीन घंटे से अधिक समय के लिए नहीं बैठ सकते इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि नाटक की घटनाएँ गति के साथ आगे बढ़ें। दर्शकों को आकृष्ट करने के लिए उनमें जिज्ञासा, कौतूहल और आकस्मिकता निरंतर बनी रहे। यदि दर्शक ऊब जाएँगे और बीच में ही उठकर जाने लगेंगे तो पूरा नाट्य कर्म ही असफल हो जाएगा। यदि हम उपन्यास को पसंद नहीं करते और उसे अधूरा छोड़ देते हैं तो इसका किसी अन्य व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। किंतु यदि नाटक के दर्शक अधूरी प्रस्तुति के बीच में उठकर चले जाते हैं (भले ही सब न जाएँ पर यदि अधिकांश चले जाते हैं) तो रंगकर्मियों पर अपने असफल हो जाने का गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। उनका मनोबल ही गिर जाता है। नाटक की रचना प्रक्रिया में इस तथ्य का ध्यान रखा जाना अपेक्षित होता है।

पात्र

नाटक के पात्रों के बारे में लेखक स्वयं कुछ नहीं कहता। उनका चरित्र उनके संवादों और उनके व्यवहार से उद्घटित होता है। किसी पात्र के अपने संवादों से तो उसके चरित्र की जानकारी मिलती ही है अन्य पात्रों द्वारा कही गई बातों से भी उसके चरित्र का पता चलता है। पात्रों के क्रियाकलाप और शारीरिक चेष्टाएँ भी उनके चरित्र को प्रस्तुत करती हैं। उपन्यासकार को दोहरी सुविधा होती है। पात्रों के कथोपकथन तथा कार्यकलाप के द्वारा उनके चरित्र के उद्घाटन के साथ–साथ वह चरित्र–चित्रण की विश्लेषणात्मक पद्धति भी अपनाता है यानी पात्रों के चरित्र का विश्लेषण स्वयं भी करता है। वह जब आवश्यक समझता है तब स्वयं नाटक के पात्रों में शामिल हो जाता है और उनके भाव–विचार के लिए उनके संबंध में टीका–टिप्पणी करता चलता है। इस तरह नाटककार परोक्ष या नाटकीय ढंग काम में लाता है और उपन्यासकार परोक्ष के साथ–साथ साक्षात् या विश्लेषणात्मक ढंग भी।

रूप–रचना

रूप–रचना के अंतर के कारण उपन्यास और नाटक के संवादों में भी भेद हो जाता है। हम कह चुके हैं कि नाटककार शब्दों की पूर्ति अभिनय द्वारा होती है। अतः भाषा के लिखित रूप की बजाए उसका मौखिक रूप प्रधान होता है। भाषा के मौखिक रूप में स्वर का उतार–चढ़ाव, लहजा, शारीरिक भाव–भंगिमा आदि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए नाटक में वार्तालाप कहीं–कहीं शब्दों से ज्यादा उसकी प्रस्तुति पर आश्रित होता है। वाक्य कभी–कभी अपूर्ण भी होते हैं तथा प्रसंग और परिस्थिति के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर संवाद एक हद तक लंबे भी हो सकते हैं। उपन्यास का माध्यम लिखित भाषा होती है। इसलिए लिखित भाषा की सभी विशेषताएँ वहाँ आ जाती हैं।

उपन्यासकार अपने पात्रों की मनःस्थिति को उभारने के लिए संवादों के अलावा कभी–कभी पत्र–व्यवहार का भी सहारा लेता है। पात्रों के आपसी पत्र उनके चरित्र–चित्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कई बार ये पत्र कई–कई पृष्ठों के भी होते हैं। किंतु नाटककार के पास यह सुविधा नहीं होती। कभी–कभी किसी विशेष सूचना के लिए या कथा विकास में आकस्मिक मोड़ लाने के लिए यदि वह पत्र का इस्तेमाल करता भी है जैसे ऐतिहासिक नाटकों में एक राजा से दूसरे राजा के पास दूत द्वारा पत्र भेजते हैं और इन पत्रों को मंच पर पढ़ा भी जाता है, तो यह पत्र बहुत ही संक्षिप्त होना चाहिए।

बोध प्रश्न–2

नीचे दिए गए वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) i) नाटक और रंगमंच में .... होता है।

ii) नाटक का स्वरूप हर युग में .... रहता है।

iii) नाटक और उपन्यास दोनों ही .... साहित्य की विधाएँ हैं।

ख) i) उपन्यास में आकार की कोई सीमा नहीं होती किंतु नाटक में यह सीमा होती है। क्यों?

....

....

....

....

....

ii) नाटक और उपन्यास के संवादों में क्या अंतर होता है?

....

....

....

....

1.5 नाटक के तत्व

नाट्य रचना अथवा किसी भी साहित्यिक कृति को किन्हीं निश्चित तत्वों के भीतर ''फिट'' करके मूल्यांकित करना बहुत आसान और सदैव उपयुक्त नहीं होता। कारण, प्रतिभावान साहित्यकार नियमों में पूरी तरह बँध कर नहीं चलता, और फिर समय तथा स्थितियों के बदलाव के साथ–साथ रचना दृष्टि में भी बदलाव आते रहते हैं। रचनाकार नए से नए प्रयोग करते रहते हैं। फिर भी विविध साहित्यिक विधाओं की कुछ संरचनात्मक विशिष्टताएँ होती हैं जो एक दूसरे से अलग पहचान बनाती हैं तथा प्रत्येक विधा को उसका अपना निश्चित स्वरूप प्रदान करती हैं। कृति के विश्लेषण विवेचन के सामान्य मानदंड निर्धारित करने में इन संरचनागत विशिष्टताओं को आधार बनाया जाता है। रचनाकार द्वारा किए गए नए प्रयोगों को भी इन संरचनागत विशिष्टताओं के भीतर और बाहर जाँचा–परखा जाता है।

हम बता चुके हैं कि नाटक खेलने की परंपरा दुनिया भर में प्राचीन काल से चली आ रही है। यही कारण है कि अधिकांश देशों के प्राचीन साहित्य में नाट्य लेखन प्रचुर मात्रा में हुआ तथा नाट्य सिद्धांतों की चर्चा काव्य सिद्धांतों की चर्चा के साथ–साथ ही शुरू हो गई। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि नाटक का स्वरूप परंपरा और प्रयोग के आधार पर निर्मित और रूपांतरित होता रहता। हिंदी नाटक की स्थिति भी ऐसी ही है इसके स्वरूप निर्माण में भारतीय और पाश्चात्य नाट्य दृष्टियों का योग रहा है। अतः भारतीय और पाश्चात्य नाट्य तत्वों की संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है। भारतीय नाट्य सिद्धांत संस्कृत के नाटकों के आधार पर निर्मित हुए थे तथा पश्चिमी नाट्य सिद्धांतों का आधार यूनानी नाटक थे।

भारतीय आचार्यों ने नाटक के तीन अनिवार्य तत्व माने हैं– वस्तु, नेता और रस। वस्तु का अर्थ है कथावस्तु, नेता यानी पात्र और रस यानी रचना से उत्पन्न होने वाले प्रभाव या उसकी अनुभूति। अर्थात् रचनाकार द्वारा अनुभूत सत्य की दर्शक अथवा पाठक को प्रतीति अथवा अनुभूति।

पाश्चात्य आचार्यों ने नाटक के छः तत्व माने हैं : कथावस्तु, पात्र, देशकाल, संवाद, शैली और उद्देश्य। इसके अलावा वहाँ संकलन–त्रय यानी नाटक में स्थान, समय और काल की एकता पर भी जोर दिया गया है।

पश्चिम में सुखांत और दुखांत दो तरह के नाटकों का प्रचलन रहा है जो क्रमशः कामदी (Comedy) और त्रासदी (Tragedy) कहलाते हैं। किंतु संस्कृत नाटक में त्रासदी को सैद्धांतिक स्तर पर स्वीकार नहीं किया गया था। नायक का पतन अथवा उसकी मृत्यु दिखाना भारतीय नाट्य दृष्टि के अनुकूल न था। जबकि पश्चिम में त्रासदी को कामदी से श्रेष्ठ और बृहत्तर रचना स्वीकार किया गया और उसके माध्यम से मानवीय भावों के परिष्कार की संकल्पना की गई।

रचना–दृष्टि के इस भेद के अनुरूप ही पूर्वी और पश्चिमी नाट्य तत्वों में अलग–अलग तरह की विशिष्टताएँ विकसित हुईं। पश्चिमी नाटक में द्वंद्व अथवा संघर्ष को प्रधानता दी गई और भारतीय नाटक में रसानुभूति को।

हिंदी नाटककारों ने न तो भारतीय नाट्य सिद्धांतों को पूर्णतया स्वीकार किया है, न पश्चिमी नाट्य सिद्धांतों का अंधानुकरण ही किया है। दोनों ही दृष्टियों को अपनाते हए उन्होंने स्थिति और प्रसंग के अनुकूल अपने नाटकों की रचना की है। इस तरह नाटक के तत्वों के भीतर दोनों नाट्य दृष्टियों का समावेश हुआ है। साथ ही परंपरा से छूट लेकर नए प्रयोग भी किए गए हैं।

1.5.1 कथावस्तु

कथानक का अर्थ है घटनाओं या कार्य–व्यापार की योजना। लेखक अपनी कथावस्तु का चयन जीवन के किसी भी क्षेत्र से कर सकता है। समाज, राजनीति, इतिहास, मनोविज्ञान आदि किसी को भी वह अपने नाटक का विषय बना सकता है। हम चर्चा कर चुके हैं कि नाटक में जीवन की क्रियाशील सजीवता होती है। जीवन की घटनाएँ उसमें दृश्य रूप में प्रस्तुत होती हैं। ऐसी स्थिति में नाटककार जिस कथ्य को चुनता है उसका संपूर्ण घटना–व्यापार दृश्य रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। नाटक और उपन्यास की तुलना के दौरान हमने बताया था कि उपन्यास का पाठक उसे कई बार बीच में से छोड़–छोड़ कर भी पढ़ सकता है किंतु नाटक एक बार में ही देखा जाता है। अतः उसका समय दो–तीन घंटे से अधिक नहीं होना चाहिए। ऐसी स्थिति में नाटककार अपने कथ्य का कुछ अंश दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है तथा कुछ की सूचना देता है। जो स्थितियाँ प्रमुखतया दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण हो सकती हैं उन्हें दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है। शेष आवश्यक स्थितियों और कार्यकलापों की सूचना पात्रों द्वारा प्रस्तुत कराता है इस तरह कथानक में कार्य–व्यापार दो तरह से आगे बढ़ता है, दृश्य घटनाओं के माध्यम से और सूच्य घटनाओं के माध्यम से। कथानक दो प्रकार का हो सकता है – आधिकारिक और प्रासंगिक। आधिकारिक कथानक का संबंध नाटक के मुख्य कार्य या उद्देश्य से होता है। यह कथा नाटक के प्रधान पात्रों से संबंधित होती है। प्रासंगिक कथा का अर्थ है प्रसंगवश आयी हुई या गौण कथा। इस कथा का सीधा संबंध नायक अथवा नायिका से न होकर अन्य पात्रों से होता है किंतु प्रासंगिक कथा नाटक की मूल कथा यांनी आधिकारिक कथा से सर्वथा स्वतंत्र नहीं होती बल्कि यह मूल कथा की गति को आगे बढ़ाने में सहायक होती है।

कथावस्तु में कार्य व्यापार के समुचित नियोजन के लिए प्राचीन संस्कृत आचार्यों ने कार्यावस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों और संधियों की व्यवस्था की थी। इस तरह फल की प्राप्ति की इच्छा से किए गए कार्य की पाँच अवस्थाएँ मानी गईं (आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा नियताप्ति और फलागम) कथानक को पाँच भागों में विभक्त किया गया। बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य नामक अर्थ प्रकृतियाँ वस्तुतः नाटक के कार्य–व्यापार की सिद्धि के उपायों या साधनों से संबंध रखती है।

पश्चिमी नाटक में भी कार्य की छः अवस्थाएँ मानी गई हैं जो कथावस्तु के

1) प्रमुख कार्य व्यापार को प्रकट करके (Exposition)

2) संघर्ष का सूत्रपात करती हुई (Rise and development of conflict)

3) कार्य को चरम सीमा की ओर बढ़ाती हैं (Crisis & falling of action)

4) चरम सीमा पर पहुँचकर संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और संघर्ष के दो पक्षों में से एक के ह्रास की शुरूआत होने लगती है और दूसरे की सफलता की संभावना बढ़ने लगती है।

5) यह अवस्था भयंकर अंत (Catastrophe) के रूप में समाप्त होती है।

कथावस्तु में कार्य–व्यापार और घटनाओं के नियोजन की यह व्यवस्था वस्तुतः समग्र नाट्य प्रभाव को दृष्टि में रखकर की गई थी। आधुनिक नाटककार ने इसे स्वीकार नहीं किया है। फिर भी वह अपने कथा सूत्रों को इस ढंग से अवश्य पिरोता है कि समग्रता

में प्रभाव की अन्विति उत्पन्न हो सके। इसलिए आज नाटक में कार्य–व्यापार की तीन स्थितियाँ महत्वपूर्ण होती हैं– 1) आरंभ 2) विकास और 3) परिणति अथवा अन्त।

बोध प्रश्न–3

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर चार–पाँच पंक्तियों में दीजिए।

क) कथावस्तु के दो प्रकार कौन से है? उनसे आप क्या समझते है?

....

....

....

....

....

ख) नाटक में कार्य–व्यापार दो तरह से आगे बढ़ता है। दोनों तरह की घटनाओं के बारे में बताइए।

....

....

....

....

....

ग) कथा विकास की तीन स्थितियाँ कौन सी हैं?

....

....

....

....

....

1.5.2 पात्र

पात्र नाटक का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। नाटक के अन्य सभी तत्व पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति पाते हैं। उनके आचार व्यवहार और वार्तालाप से नाटक की कथावस्तु निर्मित होती है। नाटक का प्रधान पुरुष पात्र नायक कहलाता है और प्रधान स्त्री पात्र नायिका। नायक और नायिका के अतिरिक्त नाटक में मुख्य पात्र भी होते हैं जिनमें से कुछ नायक के सहयोगी पात्र होते हैं और कुछ प्रतिकूल अथवा विरोधी पात्र। प्रमुख विरोधी पात्र खलनायक या प्रतिनायक कहलाता है। इन पात्रों के अलावा एक और विशिष्ट पात्र नाटकों में होता है जिसे विदूषक कहते हैं। विदूषक भारतीय तथा पश्चिमी दोनों ही नाट्य परंपराओं में मौजूद है। अंग्रेजी में इसे Clown कहा जाता है। शेक्सपियर के नाटकों में इसे Fool भी कहा गया है। विदूषक हास्य व्यंग्य की सृष्टि के अलावा समग्र नाट्य व्यापार में प्रमुख भूमिका निभाता है। अपने बेडौल रूपाकार से और हंसोड़ स्वभाव से दर्शकों का मनोरंजन करने के अलावा वह नायक का मित्र और सहयोगी होता है। उसकी भूलों पर व्यंग्य करता है और जरूरत के वक्त उसकी मदद करता है। आधुनिक नाटकों में विदूषक को एक अलग पात्र के रूप में प्रस्तुत करना जरूरी नहीं रह गया है। प्रधान या गौण पात्रों में से किसी से भी विदूषक का कार्य पूरा करा लिया जाता है। बहुत से नाटकों में विदूषक की भूमिका होती ही नहीं है।

पात्रों की संख्या के संबंध में नाटक में कोई निश्चित नियम नहीं होता। कथावस्तु की आवश्यकताओं के अनुरूप पक्षों की योजना की जाती है। इतना ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए कि उतने ही पात्र रखे जाएँ जितने कार्य–व्यापार के विकास के लिए जरूरी हों। कोई भी पात्र फालतू प्रतीत नहीं होना चाहिए। इसी तरह पात्रों की संख्या इतनी अधिक न हो जाए कि नाटक के समग्र प्रभाव में विघ्न पड़े अथवा रंगमंच पर पात्रों की भीड़–भाड़ दिखाई दे। घटनाओं की जरूरत के हिसाब से ही पात्र होने चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि पात्रों के कार्य से कथानक विकसित हो और वे कथानक के अनिवार्य अंग हों।

नाट्य शास्त्र में नायक के विशिष्ट उदात्त गुणों की चर्चा की गई है। पश्चिम की प्राचीन नाट्य परंपरा भी नायक में श्रेष्ठ गुणों की अपेक्षा करती है। किंतु आधुनिक नाटक इस तरह की बंदिश को स्वीकार नहीं करता। महान नायक की परिकल्पना को झटकते हुए सामान्य मानवीय दुर्बलताओं का समावेश नायक में कराया गया है। यथार्थवादी नाट्य दृष्टि तथा विभिन्न सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और मानवतावादी विचारधाराओं के प्रभावस्वरूप आज नायक का स्थान प्रधान पात्र ने ले लिया है।

1.5.3 परिवेश

परिवेश नाटकों का महत्वपूर्ण तत्व है। नाटक में प्रस्तुत घटनाएँ वर्णित न होकर प्रत्यक्ष रूप में सामने आती हैं। कथानक चाहे प्राचीन काल से संबद्ध हो या समसामयिक जीवन से, नाटक में वह वर्तमान के रूप में ही दृश्य और मूर्त होता है। अतः जिस समय, समाज और परिस्थिति को लिया गया हो वह हमारे सामने साकार हो उठनी चाहिए। उस काल–खंड विशेष का समग्र परिवेश, उसकी सभ्यता–संस्कृति, आचार–विचार, रीति–रिवाज, रहन–सहन और वैचारिक सरोकार की जीवंत अनुभूति नाट्य प्रस्तुति के माध्यम से होनी चाहिए। साथ ही उनकी प्रासंगिकता और विश्वसनीयता भी स्थापित होनी चाहिए। परिवेश की सृष्टि नाटक के कथ्य, घटनाओं, पात्रों के रूप, वेश विन्यास, भाषा, संवाद, शैली, मंच–सज्जा आदि सभी के द्वारा की जाती है और थोड़ी देर के लिए हम उस नाटक के समय, समाज और स्थिति में प्रवेश कर लेते हैं। देश काल या परिवेश की सृष्टि जितनी उपयुक्त होगी नाटक उतना ही सार्थक होगा। इस खंड में आप जयशंकर प्रसाद का नाटक 'स्कन्दगुप्त' पढ़ेंगे। आप गौर करेंगे कि इस नाटक का समस्त वातावरण मौर्य तथा गुप्त कालीन भारतीय समाज को प्रस्तुत करता है। साथ ही भारतीय मुक्ति संग्राम के सांस्कृतिक–सामाजिक नवजागरण के परिवेश की भी सृष्टि करता है।

1.5.4 भाषा, शैली और संवाद

भाषा

नाटक में भाषा को बड़ा ही गंभीर दायित्व वहन करना पड़ता है। दृश्य विधा के कारण नाटक में हमारा भाषा से जीवित साक्षात्कार होता है। भाषा के लिखित रूप के बजाए यहाँ उसके मौखिक रूप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लिखित भाषा और मौखिक भाषा के स्वरूप और प्रभाव में अंतर होता है। किंतु नाटक में दोनों का समन्वय अपेक्षित होता है। जो बात पात्र कहे वह दर्शक को तुरंत संप्रेषणीय हो, इसलिए उसमें स्पष्टता नितांत अपेक्षित है। इसके साथ ही उसमें सार्थक सारगर्भिता भी हो जो दर्शकों को प्रभावित कर सके। यानी किसी भी गंभीर या महत्वपूर्ण बात को पूरी सहजता और स्पष्टता से इस प्रकार कहा जाए कि उसकी बोलचाल की लय समाप्त न हो। दूसरी ओर भाषा से एक अन्य महत्वपूर्ण अपेक्षा और की जाती है कि वह पात्रानुकूल तथा परिवेश के उपयुक्त हो। यानी पात्रों के गुण, स्वभाव, शिक्षा–दीक्षा, सामाजिक हैसियत, मानसिक दशा के अनुकूल हो तथा जिस समय और समाज के वे पात्र हों उस समय और समाज के अनुरूप हो।

शैली

किसी भी कृति में कथ्य को प्रस्तुत करने का ढंग शैली कहलाता है। शैली नाटक का महत्वपूर्ण तत्व है। कोई भी बात अपने आप में जितनी महत्वपूर्ण होती है उतना ही उसे प्रस्तुत करने का ढंग भी महत्वपूर्ण होता है। शैली में दो चीजों की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैः लेखक का अपना व्यक्तित्व और उसके द्वारा चुना गया विषय। विषय के अनुरूप शैली गंभीर विवेचन युक्त, विश्लेषणात्मक, विवरणात्मक या व्यंग्यात्मक होती है। शैली के कई भेद होते हैं। उदाहरण के लिए प्रतीकात्मक शैली, हास्यपरक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, विचारपरक शैली, मनोविश्लेषणपरक शैली, भावनात्मक शैली, प्रसन्न शैली, पांडित्यपूर्ण शैली, तर्कपूर्ण शैली, खंडन–मंडन की शैली, बोलचाल की शैली।

यह आवश्यक नहीं कि लेखक एक ही प्रकार की शैली अपनाए। एक साथ कई तरह की शैलियों का प्रयोग भी किया जा सकता है या एक ही कृति में स्थान–स्थान पर अलग–अलग शैलियाँ भी प्रयुक्त हो सकती हैं। 'प्रसाद' जी के 'स्कन्दगुप्त' नाटक में तर्क–वितर्क पूर्ण शैली, व्यंग्यपूर्ण शैली, विश्लेषणात्मक शैली और भावनात्मक शैली साथ–साथ चलती रही हैं।

संवाद

संवाद अथवा कथोपकथन को नाटक का प्राण कहा जाता है। उसके बिना नाटक हो ही नहीं सकता। हमारे जीवन में वाणी का जो महत्व है वही नाटक में संवादों का है। अन्य साहित्यिक विधाओं में लेखक अपनी ओर से भी कुछ कहता है किंतु नाटक का लेखक सब कुछ पात्रों के माध्यम से ही कहलाता है। पात्रों का व्यवहार और वाणी ही लेखक के कथ्य को दर्शक तक पहुँचाती है। पात्रों के चरित्र के उद्‌घाटन में संवादों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी पात्र के वचनों से उसके अपने बारे में परिचय मिलता है। साथ ही जो कुछ वह अन्य पात्रों के बारे में कहता है उससे अन्य पात्रों के बारे में जानकारी मिलती है। यह जानकारी सदैव ही सीधी और स्पष्ट नहीं होती। लेखक सदैव भाषा की अभिधा शक्ति से ही काम नहीं लेता वह व्यंजनात्मक और लाक्षणिक ढंग से भी बात कहलाता है।

संवाद को नाटक की कसौटी माना जाता है क्योंकि कथ्य की संप्रेषणीयता में संवाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संवाद इतने लंबे नहीं होने चाहिए कि भाषा के मौखिक रूप यानी बोलने की दृष्टि से अस्वाभाविक हो जाएँ और दर्शक ऊबने लगें। न ही इतने विचार बोझिल होने चाहिए कि अस्पष्ट हो जाएँ। उनमें बोलचाल की सहजता अपेक्षित है। यह अर्थ नहीं कि नाटक के संवाद केवल रोजमर्रा के साधारण वातालाप की तरह ही हों। गौर करने की बात यह है कि दैनिक जीवन में भिन्न–भिन्न स्थितियों और स्तरों पर हमारी बातचीत का स्वरूप और शैली भिन्न–भिन्न होते हैं। कार्यालय सार्वजनिक स्थल, मित्र मंडली, विचार गोष्ठी आदि जैसे विभिन्न स्थलों पर हमारी भाषा और वार्तालाप अलग–अलग होती है। इसी तरह, अध्यापक, डाक्टर, राजनीतिक नेता, संगीतज्ञ, साहित्यकार, न्यायाधीश, दार्शनिक विचारक, मजदूर, किसान, व्यापारी आदि विभिन्न सामाजिक हैसियतों के लोगों की बातचीत में अपने–अपने ढंग की विशिष्टता होता है और यदि नाटककार जीवन के इस वैविध्य को भली–भाँति देखता और अनुभव करता है तो उसके नाटकों में संवाद जीवन स्थितियों के अनुकूल और यथार्थ होंगे।

संवादों का प्रस्तुति पक्ष भी नाटक में बड़ी अहम भूमिका रखता है। लेखक को चुनना होता है कि समग्र कथ्य का कौन सा अंश दृश्य और मौखिक रूप में सर्वाधिक संप्रेषणीय और प्रभावपूर्ण हो सकेगा। संवादों में स्वाभाविकता के साथ–साथ, वाक्चातुर्य (यानी बातचीत की कुशलता) अपेक्षित है। रंगमंच पर नाटक की सफलता या असफलता का आधार काफी हद तक उसके संवाद होते हैं।

संवादों के प्रकार

प्राचीन भारतीय नाटकों में तीन प्रकार के संवादों की चर्चा की गई है (1) सर्व श्राव्य (2) नियत श्राव्य (3) अश्राव्य। संवादों की ये तीन श्रेणियाँ मंच पर उपस्थित अन्य पात्रों के सुनने की दृष्टि से निर्धारित की गई हैं। दर्शक इन तीनों तरह के संवाद सुनते हैं। सर्व श्राव्य मंच पर उपस्थित सभी पात्रों के सुनने के लिए होता है। नियत श्राव्य कुछ पात्रों के सुनने के लिए और अश्राव्य मंच पर खड़े किसी अन्य पात्र के सुनने के लिए न होकर केवल दर्शकों के सुनने के लिए होता है। इसे 'स्वगत कथन' भी कहा जाता है। इसका प्रचलन भारतीय नाटक और पश्चिमी नाटक दोनों में ही खूब रहा है। आजकल भी स्वगत भाषण शैली प्रचलित है। हालाँकि इसे मनोविज्ञान की दृष्टि से ज्यादा प्रभावपूर्ण नहीं माना जाता।

1.5.5 अभिनेयता और मंचीयता

हम चर्चा कर चुके हैं कि नाटक दृश्य विधा है इसलिए मंचीयता या रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत होने की क्षमता नाटक का अनिवार्य अंग है। अन्य साहित्यिक विधाओं की रचना लिख दिए जाने पर पूर्ण हो जाती है किंतु नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत होकर पूर्ण होता है। इस तरह नाटक और रंगमंच में घनिष्ठ संबंध होता है। जो कृति रंगमंच पर सफलतापूर्वक नहीं की जा सकती अथवा जो दृश्य रूप में प्रभावपूर्ण नहीं है उसे नाटक नहीं कहा जा सकता भले ही वह संवादों के रूप में क्यों न लिखी गई हो। इसलिए नाटक में रंगमंचीय संभावनाएँ होनी चाहिए। यद्यपि रंग–प्रस्तुति एक सामूहिक कला है किंतु इस सामूहिक कला के लिए मूल आधार नाटककार द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। अतः नाट्य कृति ऐसी होनी चाहिए कि दृश्य रूप में प्रस्तुत और प्रभावी हो सके। उसके पात्रों की योजना इस प्रकार हो कि अभिनेता उनका भली–भाँति अभिनय कर सके। अभिनय चार तरह का होता है :

1) आंगिक – शारीरिक चेष्टाओं द्वारा
2) वाचिक – वाणी द्वारा यानी संवाद बोलकर
3) सात्विक – विविध भावों की हाव–भाव द्वारा अभिव्यक्ति से
4) आहार्य – वेशभूषा, श्रृंगार और साज–सज्जा द्वारा

नाटक की स्थितियाँ और संवाद ऐसे होने चाहिए कि अभिनेता उन्हें सहज ही आत्मसात् कर सकें और स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत कर सकें। संवाद बोल देना ही अभिनय की दृष्टि से पर्याप्त नहीं होता। उनके अनुकूल शारीरिक–मानसिक चेष्टाएँ और भावों का अभिनय अपेक्षित होता है। इसके लिए लेखक द्वारा दिए गए रंग–निर्देश सहायक होते हैं। रंग–निर्देश ऐसे हों कि अभिनय को अधिक सजीव बनाने में निर्देशक तथा रंग–कर्मियों के सहायक हो सकें। दृश्य परिवर्तन इस तरह न हो कि मंच पर साज–सज्जा को बार–बार बदलने की जरूरत पड़े। विभिन्न सुदूर स्थलों को एक के बाद एक करके मंच पर प्रस्तुत करने से गड़बड़ी पैदा हो सकती है। दृश्य संख्या भी बहुत अधिक न हो। अंक विभाजन और दृश्य विभाजन समुचित हो। आजकल बहुत से नाटककार बार–बार दृश्य परिवर्तन उपयुक्त नहीं समझते और केवल अंक परिवर्तन ही प्रस्तुत करते हैं। संकलन त्रय – यानी स्थान, काल और कार्य की एकता की योजना भी मंचन की सुविधा की दृष्टि से ही अपेक्षित मानी गई है । यद्यपि नाटककारों ने इस बंधन को सदैव स्वीकार नहीं किया। पश्चिम की इस संकल्पना को स्वयं शेक्सपियर ने ही नहीं माना।

1.5.6 प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य

किसी भी रचना के पीछे रचनाकार की रचना–दृष्टि निहित होती है। रचना जिस उद्देश्य अथवा उद्देश्यों को लेकर की जाती है अथवा रचनाकार उसके माध्यम से जो

कुछ कहना चाहता है वही उस रचना का प्रतिपाद्य होता है। प्रतिपाद्य के आधार पर ही कृति का महत्व अथवा उसकी मूल्यवत्ता निर्धारित होती हैं। उसमें निहित जीवनाभुव, मानवीय मूल्य और संवेदना ही उसकी प्रासंगिकता निर्धारित करते हैं। संस्कृत नाटक में रस को इसीलिए वस्तु और नेता से अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। रस की प्रक्रिया में रचनाकार द्वारा अनुभव किए गए सत्य को नाट्य रचना द्वारा पाठक या दर्शक तक संप्रेषित किया जाता है। लेखक की अनुभूति से पाठक की अनुभूति के तदाकार होने की इस प्रक्रिया को रसानुभूति कहा जाता है।

पश्चिम के नाट्य सिद्धांतों में करुणा और त्रास के माध्यम से विरेचन या भाव–परिष्कार करना त्रासदी का उद्देश्य माना गया था। ये दोनों दृष्टियाँ वस्तुतः नाटक के उद्देश्य को केंद्र में रखकर चलती हैं।

आधुनिक नाटककारों ने सिद्धांतों के जटिल बंधन को अस्वीकार कर दिया है किंतु किसी भी नाटक में जो अनुभूति अथवा जीवन सत्य प्रतिपादित किया गया है वह समाज के लिए किस दृष्टि से प्रासंगिक और उपयोगी है ? इस प्रश्न का उत्तर ही उस नाटक के महत्व को निर्धारित करता है। उसमें प्रस्तुत भाव बोध, मन स्थितियाँ परिस्थितियाँ और वास्तविकताएँ जीवन के किन्हीं महत्वपूर्ण प्रश्नों या समस्याओं को जिस हद तक उजागर करती हैं, उन पर सोचने के लिए मजबूर करती हैं या मानव मूल्यों को उद्घाटित और स्थापित करती हैं उस हद तक ही वह नाटक समाज के लिए सार्थक और प्रासंगिक होगा।

नाटक के विभिन्न पात्र अपनी–अपनी स्थितियों में जो कुछ कहते और करते हैं उसके भीतर निहित आशय को पकड़ने पर ही इस लेखकीय दृष्टि का पता लगा सकते हैं। कभी–कभी तो लेखक स्वयं समाधान प्रस्तुत करके अपने उद्देश्य के सीधे स्पष्ट कर देता है किंतु कभी–कभी वह केवल समस्या को उभार कर छोड़ देता है। दर्शक के मन में उस समस्या के प्रति बेचैनी या आकुलता मात्र उत्पन्न कर देता है और दर्शक से अपेक्षा करता है कि जीवन में उठने वाले प्रश्नों या समस्याओं का समाधान वह स्वयं ढूँढ़े। मराठी के प्रसिद्ध नाटककार विजय तेंदुलकर के नाटक इसी प्रकार के हैं।

ऐतिहासिक नाटकों में प्रतिपाद्य और भी अधिक महत्वपूर्ण होता है । इतिहास की घटना की पुनरावृत्ति मात्र लेखक का उद्देश्य नहीं होता। उसके माध्यम से लेखक वर्तमान के किसी प्रसंग, समस्या या परिस्थिति को उजागर करता है।

किसी नाटक में प्रतिपाद्य को समझने और उसका मूल्यांकन करने के लिए नाटक को ध्यान से पढ़ना या मंच पर उसकी प्रस्तुति देखना आवश्यक है।

बोध प्रश्न 4

क) निम्नलिखित के बारे में अधिक से अधिक आठ–दस शब्दों में बताइए।

i) नायक

ii) नायिका

iii) खलनायक

iv) विदूषक

....

....

....

....

....

ख) परिवेश की सृष्टि किस–किस माध्यम से की जाती है?

....

....

....

....

....

ग) नाटक की भाषा अन्य साहित्य माध्यमों की भाषा से किस प्रकार विशिष्ट होती है?

....

....

....

....

....

घ) निम्नलिखित से आप क्या समझते हैं? लगभग तीन पंक्तियों में उत्तर दजिए।

i) पात्र और परिस्थिति के अनुकूल संवाद

ii) स्वगत कथन

....

....

....

....

....

ङ) अभिनय के चार प्रकार कौन से हैं?

....

....

....

....

....

1.6 नाटक के प्रकार

आपने कुछ नाटक अवश्य देखे होंगे। यह महसूस किया होगा कि नाटक कई तरह के होते हैं। कुछ नाटकों को आप किसी थिएटर अथवा रंगमंच पर प्रस्तुत होते देखते हैं। साथ ही कुछ नाटक आपने ऐसे भी देखे होंगे जिनके अभिनय के लिए किसी थिएटर या रंगशाला की जरूरत नहीं है। आपने रामलीला या रासलीला देखी होगी, नौटंकी, विदेसिया या तमाशा आदि देखे होंगे या नुक्कड़ नाटक देखे होंगे। इनकी प्रस्तुति किसी भी खुली जगह में हो जाती है। जरूरत हो तो कुछ तख्त आदि डाल कर मंच बना लिया जाता है नहीं तो लोग दायरा बना कर खड़े हो जाते हैं या बैठ जाते हैं और अभिनेता बीच में खड़े होकर अभिनय करते हैं। इसके अलावा आपने टेलीविजन पर नाटक देखे होंगे या रेडियो पर नाटक सुने होंगे। इस तरह के नाटकों के कई भेद

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

होते हैं जैसे साहित्यिक नाटक और लोक नाटक। कृति के रूप में प्रस्तुत नाट्य रचनाएँ पहली श्रेणी में आती हैं और जन जीवन में अभिनय की परंपरा के रूप में व्याप्त नाटक जैसे – रामलीला, रासलीला आदि दूसरी श्रेणी में। साहित्यिक नाटक कई प्रकार के होते हैं। वस्तुतः इनके भेदों का निर्धारण कई आधारों पर किया जा सकता है। जैसे–

1) स्वरूप के आधार पर – सुखांत नाटक, दुखांत नाटक, दुःख–सुखांत नाटक, प्रहसनपरक नाटक

2) विषय के आधार पर – ऐतिहासिक नाटक, पौराणिक नाटक, सामाजिक नाटक, राजनीतिक नाटक, धार्मिक नाटक

3) शैली के आधार पर – हास्यपरक नाटक, व्यंग्यपरक नाटक, प्रतीकात्मक नाटक, मनोविश्लेषणपरक नाटक

4) अंकों के आधार पर – एकांकी नाटक, अनेकांकी नाटक (जिसे वस्तुतः "नाटक'' ही कहा जाता है)

5) पात्रों के आधार पर एक पात्रीय नाटक, बहु पात्रीय नाटक

6) गद्य–पद्य के आधार पर – गद्य नाटक, पद्य नाटक, गीति नाटक

7) प्रयोगों के आधार पर – समस्या नाटक, नुक्कड़ नाटक, एब्सर्ड नाटक

8) प्रस्तुति माध्यम के आधार पर – रंगमंचीय नाटक, रेडियो नाटक, टेलीविजन नाटक

नाटकों के ये प्रकार उनकी विशिष्टताओं को स्पष्ट करने के लिए निर्धारित किए गए हैं। अतः यह नहीं समझना चाहिए कि कोई नाटक उपर्युक्त में से किसी एक ही प्रकार का हो सकता है। किसी भी नाटक में विभिन्न दृष्टियों से कई तरह की विशिष्टताएँ होती हैं, जैसे कोई नाटक राजनीतिक होने के साथ–साथ प्रतीकात्मक और व्यंग्यात्मक भी हो सकता है। उसे समस्या नाटक के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है और नुक्कड़ के रूप में भी।

1.7 हिंदी नाटक का विकास

हिन्दी साहित्य का इतिहास यद्यपि एक हजार वर्ष से अधिक पुराना है किंतु अठाहरवीं शताब्दी तक यहाँ काव्य रचना की ही प्रधानता रही। ब्रजभाषा में लिखित थोड़े बहुत पद्य नाटक मिलते हैं किंतु रंगमंच की दृष्टि से इन्हें नाममात्र का ही नाटक कहा जा सकता है। कहा जा सकता है कि हिंदी में विधिवत् नाट्य लेखन उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही शुरू हुआ। हिंदी नाटक के विकास को हम निम्नलिखित ढंग से कालक्रमानुसार विभाजित कर सकते हैं :

i) भारतेन्दु युगीन हिंदी नाटक

ii) प्रसाद युगीन हिंदी नाटक

iii) प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

1.7.1 भारतेन्दु युगीन हिंदी नाटक

हिंदी नाटक की सशक्त परंपरा भारतेन्दु युग में शुरू हुई। इस काल के सभी प्रतिभा संपन्न रचनाकारों ने गद्य की विविध विधाओं में योगदान दिया किंतु केंद्रीय विधा नाटक ही रही। संस्कृत, बंगला, मराठी, अंग्रेजी नाटकों से प्रभाव ग्रहण करते हुए नाटक का नया ढाँचा निर्मित हुआ। मौलिक नाट्य लेखन के साथ साथ संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला से प्रचुर मात्रा में अनुवाद हुआ। भारतेन्दु न केवल आधुनिक हिंदी नाटक के जनक हैं बल्कि हिंदी नाट्य परंपरा में जागरण सुधार युग की संपूर्ण चेतना को प्रतिष्ठित करने

वाले अग्रदूत भी हैं। भारतेन्दु से पहले महाराज विश्वनाथ सिंह का 'आनंद रघुनंदन' और गोपाल का 'नहुष' नाटक मिलते हैं किन्तु ये दोनों ही बजभाषा में लिखित हैं और नाट्यकला की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। भारतेन्दु ने अपनी नवजागरणपरक चेतना तथा दृष्टि की आधुनिकता से नाट्यकला को जनप्रियता तथा कलात्मकता प्रदान की। उन्होंने मौलिक तथा अनूदित दोनों ही तरह के नाटक हिंदी को दिये। उनके 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'विषस्य विषमौषधम', 'चंद्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'सती प्रताप', 'अंधेर नगरी' तथा संस्कृत से अनुवादों में 'रत्नावली', 'पाखंड विडंबन', 'मुद्राक्षस', 'धनंजय विजय', 'कर्पूर मंजरी', बंगला अनुवादों में 'भारत जननी', 'विद्या सुंदर', 'सत्य हरिश्चंद्र' उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजी से अनुवादों में 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का 'दुर्लभ बंधु' नाम से अनुवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

नाटक के माध्यम से भारतेंदु ने अपने समय की समस्याओं को जन सामान्य के सामने रखा। समाज में व्याप्त बुराइयाँ, अधिकारी वर्ग के भ्रष्टाचार और शासकीय अत्याचार पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में नाटक और रंगमंच की भूमिका का बड़ा ही सार्थक उपयोग किया। वे रंगमंच की प्रभाव शक्ति को पहचानते थे। अपने नाटकों के माध्यम से उन्होंने अपने समय और समाज की अनेक समस्याओं को जाँचा–परखा तथा जन सामान्य को राष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख किया।

भारतेन्दु के नाटकों की प्रमुख विशेषता है **प्राचीन और नवीन का समन्वय**। उनके नाटक संस्कृत नाट्य शैली से काफी प्रभावित हैं किंतु पश्चिमी नाट्य शैली को भी उन्होंने दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया। आवश्यकतानुसार दोनों को अपनाया है। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक और श्रृंगारपरक नाटकों की रचना की है। वस्तु विन्यास में वे अर्थ प्रकृतियों, कार्यावस्थाओं और संधियों के बंधन में बँधकर नहीं चले हैं। पात्रों की सृष्टि में उन्होंने भारतीय आदर्शवाद और पश्चिमी यथार्थवाद दोनों का आश्रय लिया है। पात्र चरित्र विकास में उतार–चढ़ाव नहीं है। फिर भी किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र अपने आप में बड़े यथार्थ और जीवंत हैं। जैसे, उनके ब्राह्मण पात्र समाज को रूढ़ियों में जकड़ते हैं और अपने पेट का पालन ही सर्वोपरि समझते हैं। ऐसे पात्रों के द्वारा लेखक ने व्यंग्य की सृष्टि की है। 'अंधेर नगरी' का जात बेचने वाला ब्राह्मण इसका उदाहरण है। भारतेन्दु का महत्व इस बात में है कि उन्होंने विभिन्न वर्गों, व्यवसायों और जातियों के लोगों को उनकी प्रधान विशेषताओं के साथ पहली बार रंगमंच पर एक साथ प्रस्तुत किया है। उनके संवाद गद्य–पद्य दोनों में हैं। भाषा प्रयोग पात्रानुसार है। कविताओं और गीतों का खूब प्रयोग किया गया है।

भारतेन्दु के लेखन ने उनके समसामयिक रचनाकारों को प्रभावित किया। पंडित प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, शीतला प्रसाद त्रिपाठी, बालकृष्ण भट्ट आदि ने भारतेन्दु का अनुसरण किया और नाटक लेखन तथा प्रस्तुतिकरण की धूम सी मच गई। भारतेन्दु ने नाटक लेखन के अलावा नाट्य सिद्धांतों पर भी विचार किया तथा नाट्य मंडली की स्थापना की। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र और प्रेमघन भी अभिनय की व्यवस्था तो करते ही थे स्वयं अभिनय भी करते थे। इस तरह वे तत्कालीन पारसी रंगमंच की कुरीतियों के विरोध में जनरुचि का परिष्कार करने में भरसक संलग्न थे।

भारतेन्दु युगीन नाटककार

भारतेन्दु ने नाटक के क्षेत्र में जो पथ प्रदर्शन किया उसका सिलसिला जारी रहा। नाट्य दिशाएँ वे ही रहीं जिनकी शुरूआत भारतेन्दु ने की थी और इस युग में सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राष्ट्रीय चेतनापरक और व्यंग्यात्मक नाटकों के अलावा प्रेम प्रधान नाटक भी लिखे गये। इस युग के नाटकों का मूलस्वर नीतिपरक रहा। आगे हम इस युग के प्रमुख नाटककारों और उनके नाटकों के बारे में पढ़ेंगे।

पंडित बालकृष्ण भट्ट ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक नाटक तथा प्रहसन लिखे तथा बंगला के दो नाटकों का अनुवाद किया। इनके प्रमुख नाटक हैं – 'दमयंती स्वयंवर', 'वेणी संहार', किरातार्जुनीय 'वृहन्नला', 'जैसा काम वैसा परिणाम', 'नई रोशनी का विष' आदि। अपने नाटकों में भट्टजी ने प्रधानतया संस्कृत नाट्य प्रणाली को अपनाया है। उनके 'प्रहसन' तीखे हैं और सामाजिक कुरीतियों तथा पाखंड पर व्यंग्य करते हैं।

राधाकृष्णदास ने 'महाराणा प्रतापसिंह', 'महारानी पद्मावती' तथा 'दुःखिनी बाला रूपक' नामक नाटकों की रचना की। इनमें पहले दो ऐतिहासिक हैं। तीसरा नाटक दुखांत है। इसमें सामाजिक व्यंग्य को उभारा गया है।

पंडित प्रताप नारायण मिश्र लेखन में भारतेन्दु को अपना आदर्श मानते थे और अपनी विनोदप्रियता तथा व्यंग्य वक्रता के लिए प्रसिद्ध थे। 'हमीर हठ', 'गौ संकट नाटक', 'कलि कौतुक रूपक', 'जुआरी खुआरी प्रहसन' आदि उनके प्रमुख नाटक हैं। लाला श्री निवासदास ने 'रणधीर और प्रेम मोहिनी' नामक दुखांत नाटक की रचना की। यह उस समय काफी लोकप्रिय हुआ और कई बार मंच पर प्रस्तुत किया गया। इसके उर्दू और गुजराती अनुवाद भी हुए। उन्होंने 'संयोगिता स्वयंवर' तथा 'प्रहलाद चरित्र' नामक पौराणिक नाटक भी लिखे।

काशीनाथ खत्री ने एक अंक के लघु रूपकों की रचना की। इनमें 'ग्राम पाठशाला', 'निकृष्ट नौकरी', 'सिंधु देश की राजकुमारियाँ', 'गुन्नौ की रानी' प्रमुख हैं। खत्री जी स्वभाव से सुधारवादी थे। इसलिए उनकी रचनाओं में सुधार की प्रेरणा ही प्रमुख है। इनका 'बाल विधवा संताप' नाटक ईश्वरचंद्र विद्यासागर की प्रेरणा से लिखा गया था।

राधाचरण गोखामी ने 'अमरसिंह राठौर', 'श्रीदामा', 'तन मन धन गोसाईं के अर्पण' और 'बूढ़े मुँह मुहासे' नाटकों की रचना की। देवकीनंदन खत्री ने 'सीताहरण', 'रुक्मिणी हरण', 'कंस वध', 'बाल विवाह', 'स्त्री चरित्र' 'सैंकड़ों के दस–दस' आदि नाटक लिखे।

यहाँ हमने इस युग के कुछ प्रमुख नाटककारों के कुछ तत्वों का उल्लेख किया है। इनके अलावा भी नाटक लिखे गये। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु युग के सभी लेखकों ने नाटक लिखे। विषय तथा प्रवृत्ति की दृष्टि से इन नाटकों का उद्देश्य समाज का सुधार और परिष्कार तथा आदर्श की स्थापना था। पौराणिक विषयों तथा श्री राम और कृष्ण की लीलाओं पर लिखे नाटकों का उद्देश्य विस्मृत संस्कृति का स्मरण कराना था। ऐतिहासिक नाटकों का प्रमुख उद्देश्य भारतीय महापुरुषों के विस्मृतप्राय गौरव की याद दिलाकर जन जीवन में आत्म–गौरव की भावना जगाना था। सामाजिक व्यंग्यात्मक नाटकों द्वारा कुरीतियों, पाखंड और भ्रष्टाचार को दूर करने का प्रयास किया गया। यही कारण है कि अनेक नाटकों में बाल–विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह या स्त्रियों की दीन दशा, पर्दा प्रथा आदि के प्रश्न को उठाया गया है। देश–दुर्दशा संबंधी नाटकों द्वारा देश के प्रति कर्तव्य और राष्ट्रीयता की भावना को जगाने का प्रयास किया गया है। रोमानी प्रेम संबंधी नाटक उपदेश प्रधान होते हुए भी रीतिकालीन श्रृंगारिक प्रवृत्ति का ही विस्तार हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि इन नाटकों के सृजन के पीछे तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का विशेष योग था।

नाटकों के अनुवाद

मौलिक नाटक लेखन के साथ–साथ संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद की जो परंपरा भारतेन्दु ने शुरू की थी वह उनके बाद भी लंबे समय तक चलती रही। संस्कृत से 'रत्नावली', 'प्रबोध चंद्रोदय', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम', 'मालविकाग्निमित्र', 'मृच्छकटिकम', 'उत्तर रामचरित', 'मुद्राराक्षस', 'कर्पूर मंजरी' — आदि के अनुवाद हुए।

बंगला से माइकेल मधुसूदन दत्त के 'शर्मिष्ठा' और 'पद्मावती' का अनुवाद बालकृष्ण भट्ट ने किया। 'एई की सभ्यता बोले' का अनुवाद 'क्या इसी को सभ्यता कहते हैं' के नाम से ब्रजनाथ ने किया। लक्ष्मीनारायण चक्रवर्ती के नाटक 'नवाब सिराजुद्दौला' का अनुवाद शिवनंदन त्रिपाठी ने किया। ब्रहमनंदन सहाय ने 'सप्तम प्रतिभा' और 'बूढ़ा वर' का अनुवाद किया। जोसोफ एडीसन के 'केटो' नाटक का अनुवाद तोताराम ने केटो वृतांत नाम से किया।

अंग्रेजी से शेक्सपियर के 'किंगलियर', 'ओथेलो', 'मर्चेट ऑफ वेनिस', 'एज यू लाइक इट', 'रोमियो एंड ज्यूलियट' के अनुवाद किए गए। जोसोफ एडीसन के 'केटो' नाटक का अनुवाद तोताराम ने 'केटो वृतांत' नाम से किया।

प्रचुर मात्रा में अनुवादों ने हिंदी नाटक को विषय और शिल्प की विविधता से संपन्न किया। साथ ही बाद के हिंदी नाटककारों पर इन अनुवादों का प्रभाव भी कम नहीं पड़ा है।

1.7.2 प्रसाद युगीन हिंदी नाटक

हम चर्चा कर चुके हैं कि भारतेन्दु के बाद काफी समय तक हिंदी नाटक की दिशा वही रही जो भारतेन्दु ने निर्धारित कर दी थी। द्विवेदी युग में नाट्य कर्म की गति बहुत मंद रही। जयशंकर प्रसाद के आविर्भाव के साथ हिंदी नाटक के क्षेत्र में एक नए युग की शुरूआत होती है। भारतेन्दु के नाटकों में राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक नवजागरण की चेतना की जो झलक दिखाई देती है उसका समग्र, प्रखर और उत्कृष्ट रूप 'प्रसाद' के नाटकों में मिलता है। इतिहास, संस्कृति और दर्शन के गहन अध्ययन और विश्लेषण को आधार बनाते हुए, 'प्रसाद' ने उन्हें अपने साहित्य में नई अर्थवत्ता प्रदान की। इतिहास का 'प्रसाद' ने बृहत्तर उपयोग किया। अपने नाटक 'विशाख' की भूमिका में उन्होंने लिखा है ''इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संघटित करने में अत्यंत लाभदायक होता है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है।''

इस कथन को 'प्रसाद' की मनोभूमिका की संकल्पबद्ध घोषणा कहा जा सकता है। उनका नाट्य सृजन सन् 1910–11 में शुरू हो गया था। 'सज्जन', 'प्रायश्चित', 'कल्याणी परिणय', 'करुणालय', 'राज्यश्री' आदि वस्तुतः उनके प्रयोग काल की रचनाएँ हैं। सन् 1921 में 'विशाख' के प्रकाशन से हिंदी नाटक के क्षेत्र में नई उद्भावनाओं की शुरूआत होती है । इसके बाद सन् 1933 तक का समय 'प्रसाद' के नाट्य लेखन का उत्कर्ष काल है। इसमें 'अजात शत्रु' (1922), ''जनमेजय का नागयज्ञ'' (1923), 'कामना' (1923–24), 'स्कन्दगुप्त' (1928), 'एक घूँट' (1929), 'चंद्रगुप्त' (1931), 'ध्रुवस्वामिनी' (1933) की रचना हुई।

'प्रसाद' जी स्वच्छंदतावादी दृष्टि के नाटककार हैं। कथ्य, शिल्प, संवेदना और भाषा सभी क्षेत्रों में रूढ़ियों के प्रति विद्रोह उनके नाटकों का प्रधान स्वर है। पूर्वी और पश्चिमी नाट्य तत्वों का समन्वय करते हुए उन्होंने अपने लिए एक नयी नाट्य दृष्टि की तलाश की। अपने समय की हर धड़कन को पहचानते हुए उन्होंने सभी राष्ट्रीय–सांस्कृतिक जागरण सुधार आंदोलनों को अपने नाटकों में वाणी दी। देशभक्ति, राष्ट्र की भावना, साम्राज्यवादी शोषण का विरोध, समता की भावना, तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना उनके नाटकों का प्रबल स्वर है। उनके नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व मिला है। इनसे पहले के नाटकों में पात्रों का व्यक्तित्व नाटककार के व्यक्तित्व से स्वतंत्र नहीं हो पाया था। किंतु 'प्रसाद' के पात्रों का निजी व्यक्तित्व होते हुए भी विश्वसनीय है, क्योंकि उसे मनोवैज्ञानिक आधार मिला है।

भाषा और संवादों की दृष्टि से 'प्रसाद' ने हिंदी नाटक के क्षेत्र में नए प्रयोग किए हैं। ऐतिहासिक– सांस्कृतिक देशकाल से संबद्ध होने के कारण उनकी नाट्य भाषा प्रसंगानुकूल संस्कृतनिष्ठ है और कठिन होते हुए भी पात्रानुकूल। सभी पात्र गहन–गंभीर, बिंब प्रधान पात्रों की स्थिति और प्रतीकात्मक भाषा नहीं बोलते। पात्रों की स्थिति, मनोभूमिका और प्रसंग के अनुसार शैली कहीं भावप्रधान, कहीं व्याख्यापरक, कहीं विश्लेषणपरक और कहीं 'वार्तालाप' की रवानी लिए हुए है। संवादों पर प्रसाद के कवि–कथाकार व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। उनमें एक खास तरह का तार्किक पैनापन और साहित्यिक सुरुचिपूर्णता है।

अभिनेयता की दृष्टि से 'प्रसाद' के नाटक विवाद का विषय रहे हैं। उनकी भाषा, दृश्य विधान और रंगमंचीय परिकल्पना पर काफी प्रश्न चिह्न लगाए गए हैं। आरंभ में दो–चार बार प्रस्तुति के बाद लंबे समय तक इन नाटकों को प्रस्तुत नहीं किया गया क्योंकि हिंदी के पास अपना कोई रंगमंच नहीं था। किंतु आज यह स्थिति नहीं है। छठे दशक से हिंदी में रंग कर्म की पुनः शुरूआत हुई और आज नए रंगकर्मी यह मानने लगे हैं कि 'प्रसाद' के नाटकों में व्यापक रंग मंचीय संभावनाएँ हैं जिनकी तलाश के लिए निर्देशकों और अभिनेताओं की लगन और परिश्रम की आवश्यकता है। हिन्दी के प्रमुख निर्देशकों ने उनके कई नटकों की प्रस्तुतियाँ की हैं।

प्रसाद युगीन अन्य नाटककार

'प्रसाद' जी के समसामयिक हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने नाटकों में सांस्कृतिक अखंडता को नये ढंग से पर मध्यकालीन इतिहास से अपनी कथावस्तु चुनते हुए उन्होंने हिंदू–मुस्लिम एकता को केंद्र में रखा है। 'रक्षाबंधन' 'स्वप्न भंग', 'आहुति'. जैसे नाटकों की संवाद योजना तथा चरित्र योजना में राष्ट्रीय जागरण का स्वर प्रधान है। भाषा बोलचाल की भाषा के निकट है।

गीति नाट्य

गद्य नाटकों के अलावा 'प्रसाद' जी ने 'करुणालय' की रचना करके हिंदी गीति नाट्य परंपरा की भी शुरूआत की थी। इस युग में मैथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ' तथा उदय शंकर भट्ट ने 'विश्वामित्र', 'राधा', 'मत्स्यगंधा' आदि की तथा सियारामशरण गुप्त ने युद्ध की समस्या को लेकर 'उन्मुक्त' नामक श्रेष्ठ गीति नाट्य की रचना की।

समस्या नाटक

'प्रसाद' के समकालीन लेखकों में नए गद्य प्रयोग करने वालों में लक्ष्मीनारायण मिश्र का नाम प्रमुख है 'प्रसाद' की इतिहास दृष्टि और स्वच्छंदतावादी दृष्टि के विरुद्ध बगावत के स्वर में मिश्र जी ने यथार्थवादी बुद्धिवादी नाटकों पर जोर दिया और अंग्रेजी के 'Problem Play' के अनुकरण पर उन्होंने हिंदी में समस्या नाटकों की रचना की। उनके प्रमुख नाटक हैं, 'राक्षस का मंदिर', 'सिंदूर की होली', 'संन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य' आदि। समसामयिक समाज की किसी ज्वलंत समस्या को प्रस्तुत करने वाले इन नाटकों में भावुकतापरक रोमानी दृष्टि से बचने का भरपूर प्रयास है।

प्रसाद युग के अन्य नाटककारों में सुदर्शन, सेठ गोविंददास, बद्रीनाथ मिश्र, बलदेव प्रसाद मिश्र आदि का नाम लिया जा सकता है। रंगमंच तथा साहित्यिक महत्व के अभाव में इन नाटकों का ऐतिहासिक महत्व है।

अनुवाद

अनुवाद की भी इस युग में महत्वपूर्ण परंपरा बनी रही। संस्कृत नाटकों के अनुवादों के साथ–साथ एक ओर मालियर गाल्सवर्दी मेतरलिंक आदि के नाटकों के अनुवादों से

हिंदी नाट्य साहित्य समृद्ध हुआ और दूसरी ओर बंगला से जिला राय के नाटकों के अनुवादों की धूम रही। अनुवादकों में श्री सीताराम का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

बोध प्रश्न–5

क) भारतेन्दु को आधुनिक हिंदी नाटक का जनक क्यों कहा जाता है?

....

....

....

....

....

ख) भारतेन्दु तथा उनके युग के नाटककारों ने हिंदी नाटक को किस–किस दृष्टि से समृद्ध किया?

....

....

....

....

....

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति सही शब्द चुन कर कीजिए।

i) 'प्रसाद' जी ....दृष्टि के नाटककार हैं।
(स्वच्छंदतावादी / यथार्थवादी)

ii) उन्होंने .... को अपने नाटकों का आधार बनाया।
(इतिहास / धर्म)

iii) भाषा और संवादों की दृष्टि से उन्होंने .... किया।
(परंपरा का पालन / नया प्रयोग)

iv) उनके नाटकों की अभिनेयता .... रही है।
(निर्विवाद / विवाद का विषय)

1.7.3 प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

हम चर्चा कर चुके हैं कि प्रसाद जी ने जिस स्वच्छंदतावादी नाट्य परंपरा की शुरूआत की थी उसके विरुद्ध लक्ष्मीनारायण मिश्र ने बुद्धिवाद का नारा बुलंद किया। किंतु मिश्र जी अपने प्रयोग में बहुत सफल न हो सके और स्वयं पौराणिक नाटकों की ओर लौट पड़े।

प्रसादोत्तर हिंदी नाटकों में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है एकांकी लेखन की शुरूआत। एकांकीकारों में डा. रामकुमार वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, जगदीशचंद्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, भुवनेश्वर, उदयशंकर भट्ट आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। एकांकीकारों के बारे में विस्तृत जानकारी आप इस पाठ्यक्रम की इकाई संख्या 11 से प्राप्त कर सकते हैं।

हिंदी नाटक में अपेक्षाकृत सार्थक दौर चौथे दशक के अंतिम चरण में शुरू हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप जो सामाजिक, राजनीतिक, विचारपरक जागरूकता उत्पन्न हुई उससे देश के बौद्धिक मानसिक जीवन में व्यापक परिवर्तन हुआ। जीवन

और साहित्य के रिश्ते को नये ढंग से देखा–परखा गया, साथ ही नाटक और रंगमंच के संबंध को गहराई से महसूस किया गया। नाटक के विषय में इस बदलती हुई चेतना को अभिव्यक्ति उपेद्रनाथ अश्क के नाटकों में मिलती है। 'अंजोदीदी', 'स्वर्ग की झलक', 'छठा बेटा', 'कैद', 'उड़ान', 'अलग–अलग रास्ते' आदि में मध्य वर्ग की साधारण रोजमर्रा की जिंदगी की समस्याओं और चिन्ताओं को हास्य व्यंग्य के पैनेपन के साथ उभारा गया है। परिस्थिति की सूक्ष्म एका बोलचाल की जीवंत भाषा, रंगमंच पर सहज अभिनेयता आदि इनके नाटकों की विशेषताएँ हैं।

नाटक को रंगमंच से जोड़ने के अश्क जी के प्रयास को जगदीशचंद्र माथुर ने आगे बढ़ाया। उनका नाटक 'कोणार्क' हिंदी नाट्य साहित्य के विकास की एक महत्वपूर्ण मंजिल है। प्राचीन युग के माध्यम से समसामयिक भावों की अभिव्यक्ति करते हुए यहाँ लेखक ने घटनाओं, पात्रों और भाषा के अर्थ के लिए विविध स्तर और आयाम प्रदान किये हैं। उनके अगले नाटक ''शारदीया'' और ''पहला राजा'' भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर ही लिखे गये हैं।

इसी समय धर्मवीर भारती का काव्य नाटक 'अंधा युग' (1955) आया। कविता और नाटक के बीच गहरे रिश्ते को इसने पहली बार रंगमंच पर सिद्ध किया। 'अंधा युग' के अनेक सफल प्रदर्शन हुए। इसी से प्रेरित होकर दुष्यंत कुमार ने 'एक कंठ विषपायी' नामक काव्य नाटक लिखा। सुमित्रानंदन पंत ने भी कई काव्य नाटक लिखे जिसमें 'शिल्पी' अधिक प्रसिद्ध हुआ।

नाटक और रंगमंच के रिश्ते को पहचानते हुए सार्थक नाट्य सृजन करने वालों में प्रमुख नाम है, मोहन राकेश का। इतिहास, कविता और नाटक के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए गहन मानवीय भावों की सार्थक अभिव्यक्ति की जो परंपरा जयशंकर प्रसाद ने शुरू की थी तथा स्वाभाविकता और नाटकीयता, यथार्थपरकता और काव्यात्मकता का जो मिश्रण जगदीशचंद्र माथुर ने किया था उसका अगला चरण मोहन राकेश के नाटकों में मिलता है। 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों का राजहंस' तथा 'आधे अधूरे' ने हिंदी नाटक और रंगमंच को विस्तृत आयाम दिया। जीवन की गहन मार्मिक अनुभूतियों के तीखे बोध को अतीत और वर्तमान में एक साथ तलाश करने का सार्थक प्रयास हिंदी नाटक में पहली बार इतनी सफलतापूर्वक किया गया। समसामयिक जीवन स्थितियों की कशमकश को व्यक्त करने वाले उनके नाटक 'आधे अधूरे' ने हिंदी नाटक को नया मुहावरा देते हुए हिंदी रंगमंच को नया दर्शक वर्ग प्रदान किया।

इसी समय लक्ष्मीनारायण लाल ने नाट्य लेखन और नाट्य–संचालन (प्रदर्शन और प्रशिक्षण) के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका आरंभ की। भारतेन्दु के बाद एक बार फिर नाटक और रंग कर्म एक दूसरे से व्यावहारिक रूप में जुड़े। उनके नाटकों में 'अंधा कुआँ', 'तीन आँखों वाली मछली', 'मादा कैक्टस', 'तोता मैना', 'रातरानी', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'दर्पण' आदि प्रमुख हैं।

रंगमंच के इस नए आंदोलन ने विष्णु प्रभाकर को भी प्रभावित किया। मौलिक नाटक लेखन के अलावा उन्होंने विभिन्न महत्वपूर्ण उपन्यासों और कहानियों के नाट्य रूपांतर प्रस्तुत किए। इनमें प्रेमचंद के 'गबन' और 'गोदान' के नाट्य रूपांतर 'चंद्रहार' और 'होरी' तथा प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की बंगला कहानी 'देवी' का नाट्य रूपांतर 'देवी' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण नाटक लेखकों और उनकी प्रमुख कृतियों में विनोद रस्तोगी के 'नए हाथ', नरेश मेहता के 'सुबह के घंटे' और 'खंडित यात्राएं' लक्ष्मीकांत वर्मा का 'खाली कुर्सी की आत्मा', शिवप्रसाद सिंह के 'घाटियाँ गूंजती हैं' मन्नू भंडारी के 'बिना दीवारों का घर', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के 'बकरी' मुद्राराक्षस का 'तिलचट्टा'

शंकर शेष के 'एक और द्रोणाचार्य', भीष्म साहनी के 'हानुश' तथा 'कबिरा खड़ा बाजार में', सुरेंद्र वर्मा के 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', मणि मधुकर के 'रस गंधर्व' रेवतीशरण शर्मा का 'चिराग की लौ' ज्ञानदेव अग्निहोत्री के 'नेफा की एक शाम', प्रभात कुमार भट्टाचार्य के 'काठ महल', सुशील कुमार सिंह के 'सिंहासन खाली है', आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अनुवाद

आज हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में अनुवादों की महत्वपूर्ण भूमिका है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय तथा संगीत नाटक अकादमियों तथा विविध अव्यावसायिक संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत होने वाले नाटकों में बड़ी संख्या अनूदित नाटकों की होती है। बंगला, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, मलयालम आदि भारतीय भाषाओं के नाटक बड़ी संख्या में अनूदित होकर हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत होते हैं। भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी से भी प्रचुर मात्रा में अनुवाद होते रहते हैं। इस तरह हिंदी दर्शक को रवीन्द्रनाथ, शंभु मित्र, बादल सरकार, गिरीश कर्नाड, विजय तेंदुलकर, मॉलियर, टॉलस्टाय, ओ नील, इब्सन, चेखव, आयनेस्को, शेक्सपियर आदि रचनाकारों की कृतियाँ निरंतर उपलब्ध होती रहती हैं।

सन् 1960 के बाद नाटक और रंगमंच के इतिहास में नई उपलब्धियों का दौर शुरू हुआ। जीवन की गहन और बुनियादी समस्याओं को गहरे और व्यापक स्तर पर प्रस्तुत करने के अलावा स्त्री–पुरुष संबंधों का सूक्ष्म विश्लेषण–विवेचन और उनकी जाँच–पड़ताल की गई। नाटक को रंगमंच से ज्यादा से ज्यादा जोड़ने और नए–नए रंग प्रयोग करने के प्रयास किए गए हैं। कलकत्ता, मुंबई, दिल्ली, चेन्नई जैसे महानगरों में शुरू रंग आंदोलनों का विस्तार छोटे शहरों और कस्बों तक हुआ है। इब्राहीम अल्काजी, सत्यदेव दुबे, श्यामानंद जालान, प्रतिभा अग्रवाल, हबीब तनवीर, शीला भाटिया, ब.व. कारंत, ओम शिवपुरी, दीनानाथ, सई परांजपे, राम गोपाल बजाज, लक्ष्मीनारायण लाल, अमाल अल्लाना, बी.एम. शाह, बलराज पंडित आदि नाट्य निर्देशकों ने सफल प्रस्तुतियाँ की हैं। नाटक की परंपरागत शास्त्रीय पद्धतियों के साथ–साथ लोक नाट्य शैलियों में प्रस्तुति भी इन दिनों काफी लोकप्रिय हुई है। इन क्षेत्रों में पहल हबीब तनवीर ने की। उसके बाद छत्तीसगढ़ी नाचा शैली, राजस्थानी ख्याल शैली, कर्नाटक की यक्षगान शैली, उत्तर प्रदेश की नौटंकी शैली आदि में बहुत ही सफल प्रस्तुतियाँ हुई हैं।

हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत अनूदित नाटकों में गिरीश कर्नाड का 'तुगलक' और 'हयवदन', आद्य रंगाचार्य का 'सुनो जनमेजय', विजय तेंदुलकर का 'खामोश अदालत जारी है', 'घासी राम कोतवाल', 'सखाराम बाइंडर', बादल सरकार का 'जुलूस', ब्रेख्त का 'खड़िया का घेरा', टॉलस्टाय का 'पाप और प्रकाश', मालियर का 'कंजूस' और 'बीबियों का मदरसा', शेक्सपियर का 'वरनम वन' आदि विशेष रूप से चर्चित रहे हैं।

आज हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत होने वाले नाटकों में अनूदित नाटकों की संख्या मौलिक नाटकों के लगभग बराबर ही होती है। विविध भाषाओं के संस्कारों के इस सम्मिश्रण से हिंदी रंगमंच तथा नाटक के लिए नई दिशाओं की संभावनाएँ खुल रही हैं।

रंगशालाओं में नाट्य प्रस्तुति के अलावा अन्य प्रस्तुति माध्यम भी आज हिंदी में बहुत तेजी से सक्रिय तथा काफी हद तक लोकप्रिय हैं। इनमें नुक्कड़ नाटकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। जन सामान्य की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी समस्याओं को उठा कर जनचेतना जगाने वाले ये नाटक सभी तरह की साहित्यिक और रंगमंचीय रूढ़ियों से मुक्त हैं । गली, मोहल्ले या पार्क के किसी कोने में अनौपचारिक रूप में अभिनीत होने वाले इन नाटकों में लोक नाटकों की भाँति जन मानस की गहरी पकड़ होती है।

आज नाटक का अत्यधिक लोकप्रिय रूप टेलीविजन–सीरियलों (धारावाहिकों) तथा टेलीविजन नाटकों के रूप में मिलता है। केवल ध्वनि प्रभावों पर आधारित होने के कारण रेडियो नाटक भी आज दूरदर्शन सीरियलों से पीछे रह गए हैं। तकनीकी साधनों के प्रयोग ने यहाँ रंग प्रस्तुति की सभी सीमाओं को दूर कर दिया है। साथ ही इसके माध्यम से नाटक बहुत व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचा है। अब तक दर्शक को नाटक देखने जाना पड़ता था किंतु दूरदर्शन ने नाटक को दर्शक के घर तक पहुँचा दिया है। फर्क इतना है कि इस माध्यम में दर्शक और अभिनेता का जीवंत संपर्क समाप्त हो गया है। इस दृष्टि से नाटक सिनेमा के अधिक करीब हो गया है।

बोध प्रश्न–6

क) प्रसादोत्तर हिंदी रंगमंच की पाँच प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

ख) निम्नलिखित नाटकों के लेखकों के नाम बताइए :

i) अंजोदीदी

ii) कोणार्क

iii) आषाढ़ का एक दिन

iv) मादा कैक्टस

v) हानुश

ग) निम्नलिखित व्यक्ति किस कार्य के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं ?

i) रामकुमार वर्मा

ii) अब्राहिम अल्काजी

iii) ब. व. कारंत

iv) मोहन राकेश

घ) i) तीन लोक नाट्य शैलियों के नाम बताइए तथा यह भी बताइए कि वे किस प्रदेश से संबंधित हैं।

....

....

ii) भारतीय भाषाओं से हिंदी में अनूदित तीन नाटकों के नाम बताइए जो रंगमंच पर काफी लोकप्रिय हुए हों।

....

....

ङ) नुक्कड़ नाटक के बारे में चार पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

1.8 सारांश

इस इकाई में आपने नाट्य विधा की विशिष्टता के बारे में जानकारी प्राप्त की। अब आप जान गए हैं कि नाटक को आमने–सामने देखा जा सकता है। इस कारण इसका असर बहुत तेज होता है। इसमें बहुत से रंगकर्मियों का सहयोगी प्रयास अपेक्षित होता है तथा दर्शक भी इसे सामूहिक रूप से देखते हैं। इस तरह यह साहित्य की अन्य विधाओं से विशिष्ट है। रंगमंच और नाटक के अन्योन्याश्रित संबंध के बारे में भी आप जान गये हैं। नाटक के विभिन्न तत्वों के बारे में आपने पढ़ा है और अब आप समझ गये हैं कि प्राचीन भारतीय और पश्चिमी नाट्य सिद्धांतों से प्रभाव ग्रहण करने के बावजूद हिंदी नाटक का अपना स्वरूप है। इसके तत्वों–कथानक, पात्र, परिवेश, भाषा–शैली, संवाद, मंत्रीयता और प्रतिपाद्य के बारे में भी आप जानते हैं। हिंदी नाटक के विकास के विभिन्न चरणों से भी आपका परिचय हो गया है। अब आप बता सकते हैं कि कैसे भारतेन्दु ने हिंदी नाटक के क्षेत्र में एक नई शुरूआत की तथा अपने समय के लगभग सभी लेखकों को नाट्य रचना की ओर आकृष्ट किया। उसके बाद कैसे 'जयशंकर प्रसाद' ने हिंदी नाटक को नई दिशा दी। आजादी के बाद हिंदी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में हुए विभिन्न परिवर्तनों की चर्चा भी आप कर सकते हैं।

1.9 शब्दावली

अनायास : बिना कोई प्रयास किए।

आदि काव्य : महर्षि वाल्मीकि रचित ''रामायण''।

सघनता : गहनता और घनापन, प्रभाव का पूर्णतया व्यापक होना।

लोक सिद्ध : समाज द्वारा स्वीकृत।

तादात्म्य : अभिन्नता, परस्पर एक होने का भाव, साहित्य में रचनाकार या रचना को प्रस्तुत करने वाले के या दर्शक के भावों की अभिन्नता।

स्थापत्य कला : वास्तुकला, भवन निर्माण कला।

विरेचन (भाव परिष्कार) : अरस्तू के अनुसार भावों को शुद्ध करने की प्रक्रिया रस : भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार साहित्य में भाव के आस्वादन को रस कहते है।

विश्वजनीन : सबके लिए उपयुक्त, सबके लिए लाभदायक।

लोक नाट्य शैली : लोक नाटक उन नाटकों को कहते हैं जिनका प्रचलन समाज में लोक परंपरा जैसे – उत्तर प्रदेश में खेला जाने वाला लोक नाटक नौटंकी या रामलीला या रासलीला, बंगाल में जात्रा। इन नाटकों में किसी प्रकार का शास्त्रीय बंधन नहीं होता । प्रस्तुति के नियम भी रूढ़ नहीं होते।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। पहली श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं जिन्हें सुना या पढ़ा जा सके। दूसरी श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं जिन्हें पढ़ने और सुनने के साथ–साथ देखा भी जा सकता हो। नाटक दूसरी श्रेणी यानी दृश्य काव्य के अंतर्गत आता है।

ख) प्राचीन युग में यद्यपि नाटक को ''दृश्य काव्य'' कहा गया था किंतु आज यह गद्य के अंतर्गत आता है। हालाँकि पद्य नाटक भी लिखे जाते हैं किंतु मुख्यतः यह गद्य विधा ही है।

ग) नाटक को देखकर दर्शकों पर जो तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है उसका अभिनेताओं पर मनोवैज्ञानिक असर पड़ता है जो उनकी गतिविधियों और कला को प्रभावित करता है। इस तरह अभिनेताओं और दर्शकों के बीच स्थापित जीवंत संपर्क समग्र नाट्य प्रस्तुति पर प्रभाव डालता है।

बोध प्रश्न 2

क) i) घनिष्ठ संबंध, ii) बदलता, iii) गद्य

ख) i) उपन्यास का पाठक उसे कई बैठकों में समाप्त कर सकता है इसलिए यदि उसका आकार बड़ा हो तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता यदि इन बैठकों में समय का काफी अन्तराल हो तो वह पिछले पृष्ठों को पलट कर देख भी सकता है। नाटक का दर्शक उसे एक बार में ही देखता है। यदि कोई अंतराल होता भी है तो वह कुछ मिनटों का होता है। अतः नाटक का आकार इतना होना चाहिए कि उसे एक बैठक में सुविधापूर्वक देखा जा सके।

ii) नाटक को भाषा के लिखित रूप की बजाए मौखिक रूप प्रधान होता है क्योंकि नाटककार के शब्दों की पूर्ति अभिनय द्वारा होती है। किंतु उपन्यास का माध्यम लिखित भाषा होतती है। वहाँ संवाद लंबे हो सकते हैं। उनमें विवेचन विश्लेषण आदि की संभावना नाटक के संवादों की अपेक्षा ज्यादा होती है।

बोध प्रश्न 3

क) कथावस्तु दो प्रकार की होती है– आधिकारिक कथावस्तु और प्रासंगिक कथावस्तु। आधिकारिक प्रमुख कथावस्तु होती है जिसका संबंध नाटक की मूल घटनाओं और प्रधान पात्रों से होता है। प्रासंगिक कथावस्तु गौण कथावस्तु होती है। अन्य पात्रों से संबंधित होने के बावजूद यह आधिकारिक कथावस्तु से पूर्णतया स्वतंत्र नहीं होती, बल्कि उसे आगे बढ़ाने में सहायक होती है।

ख) नाटक की घटनाएँ दो तरह की होती हैं, दृश्य घटनाएँ और सूच्य घटनाएँ। जो घटनाएँ दशर्कों को रंगमंच पर प्रस्तुत करके दिखाई जाती हैं वे दृश्य घटनाएँ कहलाती हैं। जो घटनाएँ सामने घटित होती दिखाई नहीं जाती केवल सूचित की जाती हैं, वे सूच्य घटनाएँ कहलाती हैं। समग्र नाट्य–व्यापार दोनों तरह की घटनाओं से मिलकर बनता है।

ग) कथावस्तु की तीन स्थितियाँ होती हैं – आरंभ, विकास और परिणति। कार्य–व्यापार जहाँ शुरू की स्थिति है। कार्य आगे बढ़ने की प्रक्रिया विकास कहलाती है और अंत में कार्य जहाँ पहुँचता है यानी जो परिणाम मिलता है उसे परिणति कहते हैं।

बोध प्रश्न–4

क) i) नायक – नाटक का प्रधान पुरुष पात्र नायक कहलाता है।

ii) नायिका – नाटक की प्रधान स्त्री पात्र नायिका कहलाती है।

iii) खलनायक – नायक का विरोधी पात्र खलनायक होता है।

iv) विदूषक – विदूषक हास्य–व्यंग्य की सृष्टि करने वाला पात्र होता है।

ख) परिवेश की सृष्टि नाटक के कथ्य, घटनाओं, पात्रों के रूप, वेश–विन्यास, विचारधारा, भाषा, शैली, संवाद, मंच सज्जा आदि के माध्यम से की जाती है।

ग) नाटक में भाषा के लिखित रूप की बजाए मौखिक रूप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए उसमें बोलचाल की लय तथा तात्कालिक संप्रेषणीयता अपेक्षित होती है।

घ) i) भिन्न स्थितियों और अवसरों पर हमारे वार्तालाप का स्वरूप भिन्न–भिन्न होता है। परिवार, मित्र–मंडली, कार्यालय, विचार गोष्ठी आदि में हम अलग–अलग बातचीत और लहजे का इस्तेमाल करते हैं। ऐसी स्थिति में नाटक में भी संवाद, पात्र और परिस्थिति के अनुकूल होने चाहिए।

ii) जो संवाद मंच पर खड़े किसी अन्य पात्र के सुनने के लिए न होकर केवल दर्शकों के सुनने के लिए होता है उसे 'स्वगत कथन' कहते हैं।

ङ) अभिनय के चार प्रकार हैं –

1) आंगिक अभिनय – यानी शारीरिक चेष्टाओं द्वारा अभिनय

2) वाचिक अभिनय – वाणी द्वारा यानी संवाद बोलकर अभिनय

3) सात्विक अभिनय – विभिन्न भावनाओं की हाव–भाव पूर्ण अभिव्यक्ति

4) आहार्य अभिनय – वेशभूषा, श्रृंगार और साज–सज्जा द्वारा अभिनय

बोध प्रश्न–5

क) भारतेन्दु से पहले हिंदी में जो थोड़े बहुत नाटक मिलते हैं वे नाट्यकला की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, साथ ही वे ब्रजभाषा में लिखित हैं। भारतेन्दु ने पहली बार जागरण सुधार युग की संपूर्ण चेतना को नाटक में प्रतिष्ठित किया। नाटक को जनप्रियता और कलात्मकता प्रदान करते हुए उसे समाज सुधार और नव–जागरण की चेतना का वाहक बनाया।

ख) उन्होंने नाटक को प्राचीन भारतीय नाटक की परंपरा से जोड़ते हुए पश्चिमी नाट्य कला का भी समावेश किया। नाटक को रंगमंच से जोड़ा और रंग–प्रस्तुति के लिए नाट्य मंडलियाँ स्थापित कीं। पारसी नाटक की बुराइयों का विरोध करके जन रुचि का परिष्कार किया। मौलिक नाट्य लेखन के अलावा संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी से अनुवाद किए।

ग) i) स्वच्छंदतावादी ii) इतिहास iii) नया प्रयोग

iv) विवाद का विषय

घ) हरिकृष्ण प्रेमी और लक्ष्मीनारायण मिश्र।

बोध प्रश्न–6

क) 1) एकांकी लेखन की शुरूआत 2) नाटक को रंगमंच से जोड़ने का प्रयास 3) लोक नाट्य शैलियों की लोकप्रियता 4) नुक्कड़ नाटकों की शुरूआत 5) कहानियों उपन्यासों आदि के नाट्य रूपांतरों की प्रस्तुतियाँ।

ख) i) उपेन्द्रनाथ अश्क' ii) जगदीशचंद्र माथुर iii) मोहन राकेश
iv) लक्ष्मीनारायण लाल v) भीष्म साहनी

ग) i) एकांकी लेखन के लिए ii) नाट्य निर्देशन के लिए
iii) नाट्य निर्देशन के लिए iv) नाटककार के रूप में

घ) i) छत्तीसगढ़ की 'नाचा', राजस्थान की 'ख्याल' और कर्नाटक की 'यक्षगान'
ii) विजय तेंदुलकर का 'खामोश अदालत जारी है'
गिरीश कर्नाड का ''तुगलक''
बादल सरकार का ''जुलूस''

ङ) नुक्कड़ नाटकों के अभिनय के लिए किसी खास रंगमंच की जरूरत नहीं होती। गली मोहल्ले, पार्क आदि के किसी कोने में इनका अभिनय हो जाता है। ये नाटक जन सामान्य की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक समस्याओं को उठा कर जन चेतना जाग्रत करते हैं। इसलिए इनमें जन मानस की गहरी पकड़ होती है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2: भारतेन्दु की नाट्य दृष्टि और 'अंधेर नगरी'

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भारतेन्दु और विभिन्न नाट्य परम्पराएँ

2.3 भारतेन्दु की नाट्य संबंधी दृष्टि

2.3.1 भारतेन्दु की विशिष्टता

2.3.2 नाटकों का उद्देश्य

2.4 भारतेन्दु द्वारा रचित विभिन्न नाटक

2.5 'अंधेर नगरी' की विशेषता

2.6 सारांश

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस पाठ्यक्रम के पहले खण्ड में आपको भारतेन्दु के नाटक 'अंधेर नगरी' का अध्ययन करने का अवसर मिलेगा। इस खंड की यह दूसरी इकाई है और इसमें हम आपको भारतेन्दु हरिश्चंद्र की नाट्य दृष्टि और 'अंधेरी नगरी' नाटक से परिचित कराएँगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- भारतेन्दु युग और भारतेन्दु हरिश्चंद्र के साहित्यिक व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे;
- भारतेन्दु की नाट्य संबंधी दृष्टि का परिचय दे सकेंगे;
- भारतेन्दु द्वारा रचित नाटकों की विशेषताएँ बता सकेंगे; और
- 'अंधेर नगरी' की विशिष्टता से परिचित हो सकेंगे।

इकाई के अध्ययन से आपको उपर्युक्त सभी पक्षों को जानने और समझने का अवसर प्राप्त होगा। लेकिन हम आपसे अपेक्षा करते हैं कि इकाइयों का अध्ययन आरंभ करने से पूर्व आप 'अंधेर नगरी' का अध्ययन कर चुके होंगे। अगर आपने नाटक नहीं पढ़ा है तो उसे जरूर पढ़ें। जिससे आप इकाइयों में विश्लेषित बिन्दुओं को आसानी से समझ सकें।

2.1 प्रस्तावना

इस खंड में आप भारतेन्दु कृत 'अंधेर नगरी' नाटक में निहित सामाजिक यथार्थ और व्यंग्य, उसमें अभिव्यक्त विडम्बना, 'अंधेर नगरी' की भाषा, शिल्प और रंगमंचीय विशेषताओं का अध्ययन करेंगे इनको पढ़ने से पहले आपके लिए यह जानना जरूरी है कि भारतेन्दु के समय में हिंदी नाटकों की क्या स्थिति थी? भारतेन्दु का निजी व्यक्तित्व कैसा था? उन्हें कौन–कौन सी नाट्य परंपराएँ मिलीं और उन परंपराओं से उन्होंने क्या लिया और क्या स्वयं नया रचा? यह सब जानने से आप 'अंधेर नगरी' नाटक को अच्छी तरह समझने की ओर अग्रसर हो सकेंगे और उसका विश्लेषण और मूल्यांकन कर सकेंगे।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

हिन्दी नाटक का इतिहास बहुत पुराना है। हमारे यहाँ भारतीय नाट्यकला की बहुत लम्बी और समृद्ध परंपरा मिलती है– संस्कृत नाटक और लोक नाटक की। लेकिन हिन्दी में आधुनिक युग से पूर्व नाटक की परंपरा लगभग अनुपस्थित थी। हिंदी नाटक के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही माना जाता है। भारतेन्दु से ही हिंदी के आधुनिक युग की शुरूआत होती है। आधुनिक हिंदी गद्य के वही जन्मदाता हैं। वह हिंदी के प्रथम समर्थ नाटककार हैं। यद्यपि उनसे पूर्व भी कुछ छिटपुट नाटक लिखे गए। कुछ ब्रजभाषा में कुछ खड़ी बोली में। इनमें विश्वनाथ सिंहजू का 'आनंद घन', स्वयं भारतेन्दु के पिता गिरधर दास का 'नहुष' और 'अमानत' द्वारा रचित 'इन्दरसभा' विशेष उल्लेखनीय हैं। इन तीनों नाटकों में नाटक को मंच पर पेश किए जाने योग्य बनाने, उसके अनुरूप भाषा और शिल्प का निर्माण करने की कोशिश मिलती है। भारतेन्दु सही अर्थों में पूर्ण नाटककार थे। उन्होंने नाटक को राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जागरण का माध्यम बनाया। भारतेन्दु ने जब नाटक लिखना शुरू किया तब हिंदी में नाट्य विधा संबंधी किसी तरह की सोच उपलब्ध नहीं थी, और न ही हिदी का अपना रंगमंच था। पारसी थियेटर की शुरूआत जरूर हो चुकी थी, लेकिन उसको हिदी रंगमंच नहीं कहा जा सकता। पारसी हिंदी से ज्यादा उर्दू, गुजराती, मराठी आदि नाटक खेले गए। हाँ, आरंभिक हिंदी रंगमंच पर प्रभाव अवश्य दिखाई देता है। भारतेन्दु ने समग्र आंदोलन की तरह नाट्यविधा को लिया – नाटक लिखे, अनूदित किए, लिखवाये, उनकी समीक्षाएँ उस समय की पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित कीं, नाट्य मंडलियाँ बनाईं, उनके द्वारा जगह–जगह नाट्य–प्रदर्शन किए। भारतेन्दु ने यथार्थ चित्रण के लिए जिंदादिली और मनोरंजन को महत्वपूर्ण आधार बनाया ताकि नाटक जन मानस से जुड़ सकें। भारतेन्दु ने नए–नए प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि बदलते हुए लोक स्वभाव और युग की आवश्यकताओं के साथ नाटककाकर को भी नियमों में लचीलापन लाना चाहिए।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों में 'अंधेर नगरी' ऐसा नाटक है जिसकी सार्थकता और मूल्यवत्ता समय के साथ बढ़ती गई है। आपके लिए यह जानना जरुरी है कि नाटककार भारतेन्दु और उनके नाटक 'अंधेर नगरी' की ऐसी क्या मौलिकता और विशेषता है कि साहित्य और रंगमंच दोनों में यह नाटक अपने लघु आकार में भी कालजयी होता गया और नाट्य रचना एवं रंगमंच को क्रांतिकारी मोड़ देता गया। अगर हम भारतेन्दु की नाट्य दृष्टि और 'अंधेर नगरी' की रचनात्मकता को समझ जाते हैं तो आगे की इकाइयों में 'अंधेर नगरी' के यथार्थ, उसकी नाट्यभाषा और शिल्प, उस पर होने वाले विभिन्न रंगमंचीय प्रयोगों को समझना आसान हो जाएगा। इन बातों को ध्यान में रखते हुए हमने इस इकाई में चार बातों पर अपनी पाठ्य सामग्री को केन्द्रित किया है। 1. भारतेन्दु और विभिन्न नाट्य परंपराएँ, 2, भारतेन्दु की नाट्य संबंधी सोच, 3. भारतेन्दु द्वारा रचित विभिन्न नाटक और 4. 'अंधेर नगरी' एक नाट्यरचना के रूप में। इन चारों के अध्ययन से आपको यह आधार मिल सकेगा, जिसके परिप्रेक्ष्य में आप आगे की इकाइयों में 'अंधेर नगरी' का विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 भारतेन्दु और विभिन्न नाट्य परम्पराएँ

भारतवर्ष में नाटक की अत्यंत प्राचीन और समृद्ध लोक परम्परा और शास्त्रीय परंपराएँ रही हैं। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने नाटक को सर्वाधिक रमणीय और 'पंचमवेद' कहा है। भरतमुनि ने देश की पूर्व प्रचलित लोक परम्पराओं की पृष्ठभूमि में ही नाट्यशास्त्र रचकर नाटक को नियमबद्ध किया और उसकी सम्पूर्ण रचना–प्रक्रिया, सहयोगी कला रूप और रंगमंच पर प्रस्तुति, प्रेक्षागृह के स्वरूप, भेद, आकार पर प्रमाणित सामग्री प्रस्तुत की। संस्कृत के नाटक तत्कालीन कला–दृष्टि और रंगमंच को स्पष्ट करने वाले हैं। उसी प्रकार लोकनाटक अपनी–अपनी स्थानीय विशेषताओं के साथ,

लोकमंच और लोकपरम्पराओं के साथ चारों ओर मौजूद थे। अमानत की 'इन्द्रसभा' का स्वरूप भी इस समय के इतिहास, नाटक और रंगमंच की देन था। उसके संगीत, नृत्य, भाव, रस, गतियों – प्रकारों और लचीले शिल्प ने एक मौलिक पहचान बनाई। दुःख की बात है कि शास्त्र और लोक की यह सुदृढ़ परम्परा रहते हुए भी नाटक और रंगमंच हमारे जीवन से एकदम कटता गया। मध्ययुगीन सामंती पतनशीलता ने रंगमंच के प्रति उदासीनता का भाव पैदा किया। यद्यपि इस पूरे दौर में लोक नाट्य की परंपराएँ पहले की तरह गतिमान रहीं। अंग्रेजी शासन की स्थापना ने पश्चिम के नाटकों और रंगमंच से हमारा परिचय कराया। इस परिचय ने हमें प्रेरित किया कि हम अपनी नाट्य परंपरा की पुनः खोज करें। वर्षों तक पारसी नाटक कम्पनियों के व्यावसायिक और सतही मनोरंजक नाट्य प्रदर्शनों का बोलबाला रहा। इसका नतीजा यह हुआ कि रचनात्मक और साहित्यिक स्तर के नाटक लिखने की कोशिशें रंगमंच से दूर हटती गईं। समीक्षक नाटक का विभाजन दो खानों में करके देखने लगे – साहित्यिक नाटक और रंगमंचीय नाटक। हमारे नाटककार लम्बे समय तक रंगमंच से कटे रहकर, नाटक की विधागत मौलिकता और जटिलता से शून्य कोरी कल्पना द्वारा नाट्य रचना करते रहे और व्यावसायिक रंगमंचीय नाटकों की प्रतिक्रिया में शुद्ध साहित्यिक नाटक लिखते रहे।

हम देखते हैं कि इन्हीं परिस्थितियों के बीच भारतेन्दु हरिश्चंद्र का युगांतरकारी व्यक्तित्व उभरता है जिन्होंने बड़ी तीव्रता से नाटक की माध्यमगत और कलागत विशेषताओं को पूरी तरह समझा ही नहीं बल्कि उसके लिए सामूहिक और योजनाबद्ध ढंग से काम किया। उनके सामने बहुत से कार्यभार मौजूद थे – नाट्य लेखन, अनुवाद, प्रदर्शन, राष्ट्रीय चेतना का विकास, लोकरुचि का परिष्कार, व्यावसायिक थियेटर के विरुद्ध संघर्ष आदि। वह हिंदी की अपनी नाट्य परंपरा, नाट्य शिल्प और रंगमंच के विकास लिए संघर्षशील रहे। भारतेन्दु हिन्दी के अकेले ऐसे प्रथम नाटककार हैं जिन्होंने अपनी मौलिकता और चिन्तन को नाटक निबंध और अपने नाट्य लेखन में प्रयुक्त नये प्रयोगों द्वारा प्रस्तुत किया। नाटक निबंध को बिना पढ़े आप भारतेन्दु की मौलिकता और हिंदी नाट्यशास्त्र के विषय में उनके चिंतन को नहीं समझ सकते। वह परम्परा और आधुनिक दोनों स्रोतों प्राप्त रंग–दृष्टियों को आत्मसात् करते हुए हिंदी की अपनी रंग दृष्टि और नाट्य परंपरा का विकास करना चाहते थे। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को उन्होंने नकारा नहीं है लेकिन उसका ज्यों का त्यों अनुसरण वह हिंदी के लिए उपयुक्त नहीं मानते।

इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिंदी नाट्य परंपरा के विकास के लिए एक ओर भारत की प्राचीन संस्कृत नाट्य परंपरा से सीखा, तो दूसरी ओर उन्होंने भारत के विभिन्न प्रांतों में मौजूद लोक नाटकों की परंपरा को अंगीकार करने में भी संकोच नहीं किया। इसके बावजूद उनका नाट्य चिंतन पश्चिम की नाट्य परंपरा से प्रेरित था, जिसने भारत में आधुनिक नाट्य परंपरा के विकास का आधार बनने का काम किया था। पारसी थियेटर इसी नाट्य परंपरा का भारतीय, व्यावसायिक और लोकप्रिय स्वरूप था। इन विभिन्न परंपराओं के परिप्रेक्ष्य में ही भारतेन्दु की रंग दृष्टि और रंग–सृष्टि को समझ सकते हैं।

अतः कह सकते हैं कि भारतेन्दु की नाट्य दृष्टि भारतीय और आधुनिक है, रूढ़िबद्ध नहीं। भारतेन्दु मूलतः लोकधर्मी चेतना के नाटककार हैं लेकिन वह संस्कृत के शास्त्रीय विधान, पारसी नाटक और पश्चिम की नाट्यकला के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नहीं है। 'अंधेर नगरी' नाटक के अध्ययन से ही आप जान पायँगे कि इस छोटे से नाटक में सभी परंपराओं का प्रभाव है।

2.3 भारतेन्दु की नाट्य संबंधी दृष्टि

भारतेन्दु के लिए साहित्य की रचना सोद्देश्यपूर्ण थी, यद्यपि उन पर अपनी पूर्व की काव्य परंपरा का गहरा प्रभाव था, लेकिन गद्य लेखन, विशेषकर नाट्य लेखन में उनकी चिंताएँ

आधुनिक थीं। अपने समय और समाज से प्रेरित थीं। वे नाट्य लेखन को सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय जागरण का माध्यम बनाना चाहते थे। वे यह भी चाहते थे कि हिंदी का साहित्य–संसार भी आधुनिक, उच्चकोटि का और समृद्ध हो। इसके लिए उन्होंने जो प्रयत्न किये, वह एक आंदोलन की तरह थे। भारतेन्दु के नाटक लेखन में उनका बेधड़क, जिंदादिल व्यक्तित्व और उनकी प्रगतिशील चेतना का असर आप देख सकते हैं। प्रेमचंद के यथार्थवाद और निराला की क्रांतिकारिता, विद्रोह और जागरण की ज़मीन भारतेन्दु ने ही तैयार की थी। वह स्वयं अभिनेता, रंगकर्मी, निर्देशक और समीक्षक थे। वे सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय नवजागरण के लिए नाटक को सबसे सशक्त माध्यम मानते थे। नाटक में दृश्यात्मक और काव्यत्व को और उसके प्रत्यक्ष सौंदर्य को उन्होंने सबसे अधिक महत्व दिया जिसका प्रभाव उनके नाटकों के पूरे संरचनात्मक पक्ष पर पड़ा है। उन्होंने अपने कुछ नाटकों में अभिनय भी किया था। 'जानकीमंगल' नाटक, जो बनारस थियेटर में खेला गया था, (1868 ई.) में उन्होंने अभिनय किया। 'नीलदेवी' में पागल की भूमिका निभाई और बलिया में 'सत्य हरिश्चंद्र' में हरिश्चंद्र के रूप में वृहद् जनसमूह को भाव–विभोर कर दिया। वह प्रायः 'स्वांग' करते थे। कवितावर्धिनी सभा का निर्माण, पैनी रीडिंग क्लब की योजना आदि ऐसे कार्य थे जिनसे गतिशील रंगकर्म का ज्ञान होता है। भारतेन्दु ने अपने संरक्षण में काशी में नेशनल थियेटर की स्थापना की। उनके मंडल के लेखकों ने काशी, प्रयाग, बिहार आदि में अनेक नाट्य मंडलियाँ स्थापित कीं। अभिनय के साथ–साथ उनका उद्देश्य चारों ओर एक सजग, रचनात्मक और कलात्मक वातावरण बनाने तथा नाटकों के प्रति स्तरीय अभिरुचि विकसित करने का था।

2.3.1 भारतेन्दु की विशिष्टता

नाटक के सृजन को भारतेन्दु ने युग की आलोचना और भविष्य की रचना के अर्थ में लिया। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने नाटकों की रचना ही नहीं की, वरन् नाटक संबंधी विस्तृत लेख लिखकर उन्होंने नाटक के बारे में अपने सुस्पष्ट विचार भी प्रस्तुत किए। 'नाटक' नाम से यह लेख पुस्तक रूप में सन् 1883 में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने यह पुस्तक नाटक लिखने वालों की सहायता के लिए लिखी थी। इस पुस्तक में उन्होंने नाट्यशास्त्र, साहित्य दर्पण, काव्य प्रकाश आदि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के आधार पर नाटक के विभिन्न पक्षों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही उन्होंने आधुनिक नाटकों की विशेषताओं का भी उल्लेख किया है। हिंदी के नाटककारों के लिए कौन–सी पद्धति सही है, इस पर भी उन्होंने विचार किया है। भारतेन्दु की नाट्य दृष्टि को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि उनकी दृष्टि में नाटक का लेखन और मंचन क्यों किया जाना चाहिए तथा हिंदी नाट्य परंपरा के विकास के लिए किस परंपरा का अनुपालन करना चाहिए। नाटकों की जिस नवीन परंपरा का वे उल्लेख करते हैं, उसे वे पश्चिम की यूरोपीय नाट्य परंपरा और बंगला नाटकों पर उसके प्रभाव से जोड़ते हैं। वे लिखते हैं, ''आजकल यूरोप के नाटकों की छाया पर जो नाटक लिखे जाते हैं और बंगदेश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं, वह सब नवीन भेद में परिगणित है।'' इन नवीन भेद के नाटकों के वे दो मुख्य भेद मानते हैं– 'एक नाटक, दूसरा गीतिरूपक'। वे आगे लिखते हैं ''जिनमें कथाभाग विशेष और गीति न्यून हो वह नाटक और जिसमें गीति विशेष हों वह गीतिरूपक।'' इस व्याख्या से साफ है कि भारतेन्दु ऐसे नाटकों की कल्पना नहीं कर पाए थे, जिनमें गीत या पद्य का बिल्कुल प्रयोग न किया गया हो।

संस्कृत नाट्य परंपरा, जिसे वे प्राचीन रीति की नाट्य परंपरा के रूप में प्रस्तुत करते हैं, उसकी उपयोगिता को वे न तो पूरी तरह से अस्वीकार करते हैं और न ही वे उसके अनुकरण की बात स्वीकारते हैं। वे कहते हैं, ''नाटकादि दृश्यकाव्यप्रणयत करना हो तो प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग करे यह आवश्यक नहीं है क्योंकि जो सब प्राचीन

रीति वा पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मतपोषिका होंगी वह सब अवश्य ग्रहण होंगी।'' भारतेन्दु के इस कथन से साफ है कि वे प्राचीन नाट्य रीतियों को तब ही स्वीकार करने को तैयार हैं जब वे आधुनिक युग की जरूरतों के अनुरूप हों। अपनी इस बात को स्पष्ट करते हुए वे आगे लिखते हैं कि ''नाट्यकला कौशल दिखलाने को देश, काल और पात्रगण के प्रति विशेष रूप से दृष्टि रखनी उचित है। पूर्वकाल में लोकातीत असंभव कार्य अवतारणा सभ्यगण को जैसी हृदयहारिणी होती थी। वर्तमान काल में नहीं होती।'' ध्यान देने की बात है कि यहाँ भारतेन्दु प्राचीन और नवीन में जिस बिंदु को विभाजक बनाते हैं, वह है यथार्थ के प्रति दृष्टिकोण। जो लोकातीत है और जो असंभव है, वर्तमान काल में वह लोगों को स्वीकार नहीं हो सकता। यह नाटकों में यथार्थ आधारित लौकिक दृष्टि के समावेश का प्रयास है। भारतेंदु अपने इस यथार्थवादी दृष्टिकोण को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं, ''अब नाटकादि दृश्यकाव्य में अस्वाभाविक सामग्री परिपोषक काव्य सहृदय सभ्य मंडली को नितांत अरुचिकर है, इसलिए स्वाभाविक रचना ही इस काल के सभ्यगण की हृदय ग्राहिणी है, इससे अब अलौकिक विषय का आश्रय करके नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना उचित नहीं है।''

यहाँ भारतेन्दु द्वारा प्राचीन का पूरी तरह अस्वीकार नहीं, लेकिन नवीन को ही आधार के रूप में स्वीकार करना, यह बताता है कि भारतेन्दु नाटकों की रचना के लिए विवेकपूर्ण आधुनिक दृष्टिकोण अपनाने के पक्षधर थे। उनका आधुनिक दृष्टिकोण नाटकों के उद्देश्य में भी दिखाई देता है।

2.3.2 नाटकों के उद्देश्य

नाटकों के उद्देश्य की चर्चा वे नाटकों के नवीन भेदों के अंतर्गत करते हैं। प्राचीन संस्कृत नाटकों के बारे में चर्चा करते हुए वे उद्देश्य के बारे में कुछ नहीं कहते। लेकिन नवीन नाटकों की चर्चा करते हुए वे नाटकों के पाँच उद्देश्यों का उल्लेख करते हैं : 1. शृंगार, 2. हास्य, 3. कौतुक, 4. समाज संस्कार और 5 देशवत्सलता। नाटक के ये पाँच उद्देश्य इस बात के द्योतक हैं कि किस प्रकार भारतेन्दु रीतिवादी दृष्टिकोण से आधुनिक दृष्टिकोण की ओर उन्मुख हो रहे थे। देशवत्सलता को उद्देश्यों में शामिल करना इस बात को भी बताता है कि वे नाटकों का उपयोग लोगों में देशभक्ति की भावना जाग्रत करने के लिए भी करना चाहते थे। भारतेन्दु का दौर नवजागरण का दौर था इसलिए देश और समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध नाटकों के द्वारा लोगों में जागृति पैदा करना उन्हें जरूरी काम लगता था। उनका और उनके समकालीन रचनाकारों का लेखन इस सोच का प्रमाण भी है। इसी प्रकार पाँचवें उद्देश्य 'देशवत्सलता' की चर्चा भी अपने समय के दबाव का ही परिणाम है। अंग्रेजी दासता के अधीन रहते हुए तत्कालीन दौर के बुद्धिजीवी यह अनुभव करने लगे थे कि लोगों में यदि अपने देश के प्रति प्रेम का भाव जाग्रत किया जाए तो इससे देशोन्नति का भाव भी उत्पन्न होगा। यही कारण है कि उन्होंने लिखा कि ''देशवत्सल नाटकों का उद्देश्य पढ़ने वालों या देखने वालों के हृदय में स्वदेशानुराग उत्पन्न करना है।'' समाज–संस्कार और देशवत्सलता दोनों उद्देश्यों से प्रेरित कुछ समकालीन नाटकों का उल्लेख भी उन्होंने किया। कुछ स्वयं उनके द्वारा लिखे हुए और कुछ उनके समकालीन अन्य नाटककारों के द्वारा लिखे हुए। अपने नाटकों में से 'भारत जननी', 'नील देवी' और 'भारत दुर्दशा' नाटकों की गणना उन्होंने देश प्रेम या वत्सलता के उद्देश्य से लिखे गए नाटकों में की है। इन नाटकों को यदि पढ़ें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु ने देश के प्रति अनुराग के भाव को अमूर्त रूप में ग्रहण नहीं किया था। वे भारत की तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति लोगों को जागरूक करना चाहते थे। केवल प्रेम के लिए प्रेम नहीं वरन् देश दुर्दशा को समाप्त करने और उसे उन्नति की राह पर ले जाने के लिए वे देशवत्सलता की बात करते हैं। यही कारण है कि अपने नाटक 'भारत दुर्दशा' के आरंभ में ही लिखते हैं :

अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै, अति ख्वारी।
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा। भारत दुर्दशा न देखी जाई।

'अंधेर नगरी' नाटक की गणना भी हम उपर्युक्त श्रेणी के नाटकों में कर सकते हैं।

आप उनके नाटकों के अध्ययन से समझ पाएँगे कि किस प्रकार अपनी इस सोच को उन्होंने नाटकों में अभिव्यक्त किया है। भारतेन्दु द्वारा बताए गए उद्‌देश्यों से स्पष्ट है कि वे मनोरंजन के विरोधी नहीं हैं, न हास्य को हल्की–फुल्की नगण्य चीज मानते हैं बल्कि जन–जागरण और लोकरुचि के लिए उन्हें अनिवार्य मानते हैं। उन्होंने नाटक को खेल, तमाशा, दिल्लगी, क्रीड़ा, कौतुक कहा है। बड़ी से बड़ी समस्या को हास्य और तीखे व्यंग्य में कहकर वह नाटक की मंचीय प्रकृति को उजागर करते हैं। नाटक के चमत्कार और उसके प्रभाव को वह समझते थे। इसके लिए वह जनता की स्थानीय बोलियों के प्रयोग, मुहावरे, टोन, लय, उनके गीत, द्वंद्व, उनकी लोकसंस्कृति, आचार, व्यवहार ग्रहण करते हैं और इसे आप 'प्रेम जोगिनी', 'अंधेर नगरी' में देख सकते हैं। भारतेन्दु नाटक की प्रकृति के साथ जनता की प्रकृति और राष्ट्र की आवश्यकताओं को पहचानते चलते हैं। उनके लिए साहित्यिकता कोई आरोपित पक्ष नहीं है, न रंगमंचीयता अलग से कोई लादा गया बाह्य तत्व। दोनों की सूक्ष्म आंतरिक संगति का सर्वोत्तम उदाहरण आप भारतेन्दु के नाटकों में देखेंगे।

बोध प्रश्न–1

1. उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   क) नाटक' नाम से भारतेन्दु का लेख पुस्तक रूप में सन् .... में प्रकाशित हुआ।

   ख) 'प्रेम जोगिनी' के रचयिता .... हैं।

   ग) 'सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में भारतेन्दु .... की भूमिका निभाई।

   घ) भरतमुनि ने नाटक को सर्वाधिक रमणीय और .... कहा है।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो से तीन पंक्तियों में दीजिए :

   क) भारतेन्दु मूलतः किस चेतना के नाटककार हैं।

   ....

   ....

   ....

   ख) 'नाटक' नामक लेख में भारतेन्दु ने किन पक्षों पर विचार किया।

   ....

   ....

   ....

ग) 'नवीन' नाटकों की चर्चा करते हुए वे नाटकों के कौन से उद्देश्यों का उल्लेख करते हैं।

....

....

....

2.4 भारतेन्दु द्वारा रचित विभिन्न नाटक

इस भाग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाट्य साहित्य का परिचय दिया जा रह है जैसा कि हमने पहले भी बताया कि भारतेन्दु मौलिक नाटक लेखन के साथ–साथ नाटकों का अनुवाद भी किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लिए नाट्य रचना कर्मक्षेत्र में जुटने जैसी थी। उन्होंने नाटक लिखकर न सिर्फ साहित्य की सेवा की बल्कि हिंदी भाषा को उन्नत करने तथा हिंदी नाट्य–कला और रंगमंच का विकास करने का ऐतिहासिक कार्य किया। उन्होंने युग की आवश्यकताओं को पहचान कर नाटक लिखे। अपने बहुमुखी व्यक्तित्व के साथ भारतेन्दु ने नाट्य रचना के क्षेत्र में अद्भुत सृजनशीलता और गम्भीरता का परिचय दिया है। कविता, निबंध आदि विधाओं में लिखते हुए भी नाट्य विधा की ओर उनका विशेष झुकाव दिखाई देता है। भारतेन्दु नाटकों के द्वारा जनता को नवजागरण की दिशा में संस्कारित करना चाहते थे। वे जानते थे कि दृश्य काव्य होने की वजह से नाटक जनता को जागृत करने का सशक्त माध्यम हो सकता है। वे स्वयं अभिनेता और निर्देशक भी थे इसलिए नाटकों का इस दृष्टि से उपयोग करने में अधिक सक्षम थे। नाटकों के लेखन में उन्होंने अपनी जागरूक चेतना और आधुनिक दृष्टि का परिचय दिया है। शिल्प और शैली के विविध प्रयोगों और साथ ही भाषा की बनावट और शक्ति के प्रति भी वह सजग थे। उनके सभी नाटकों में उनकी मौलिकता और विशिष्टता दिखाई देती है। भारतेन्दु ने निम्नलिखित नाटकों की रचना की हैः

मौलिक नाटक

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873), विषस्य विषमौषधम् (1875), प्रेमजोगिनी (1875), सत्य हरिश्चन्द्र (1875), चन्द्रावली (1876), भारत जननी (1877), नीलदेवी (1880), अंधेर नगरी (1881), और सती प्रताप (1884)।

छायानुवाद

विद्यासुन्दर (1868, बंगला से)

अनूदित

रत्नावली (1868), पाखंड विडम्बन (1872), धनंजय विजय (1873), मुद्राराक्षस (1875) कर्पूरमंजरी (1876) और दुर्लभबन्धु (1880)

भारतेन्दु के नाटकों के अध्ययन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन्होंने नाटकों के कथानक, चरित्र, भाषा, शिल्प और रंगमंच के बारे में गहन रूप से विचार किया था। वह हिंदी नाटक के स्वरूप को भी विकसित कर रहे थे और अपने समय से भी उसे जोड़ रहे थे। पुरानी रूढ़ियों, अंधविश्वासों को तोड़ते हुए उनके सभी नाटक प्राचीन प्रचलित रीतियों के अन्धानुकरण का विरोध करते हैं। वस्तुतः वह नाटक का जातीय रूप विकसित कर रहे थे और अपने समय से भी उसे जोड़ रहे थे। पुरानी रूढ़ियों, अंधविश्वासों को तोड़ते हुए उनके सभी नाटक प्राचीन प्रचलित रीतियों के अन्धानुकरण का विरोध करते हैं। वस्तुतः वह नाटक का जातीय रूप विकसित करना चाहते थे इसीलिए आप देखेंगे कि उनके नाटकों की विषयवस्तु यथार्थवाद के नजदीक है। उन्होंने निबंध के साथ ही नाटकों में भी प्रहसन को आवश्यक माना है।

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' एक प्रहसन है। इस नाटक का उद्देश्य यथार्थ के उद्घाटन और व्यंग्य द्वारा जीवन में आई विकृतियों के प्रति जनता को सचेत करना है। अपने लघु आकार में भी यह प्रहसन पूर्ण नाटक की विशेषताओं से युक्त है। सभी पात्र प्रतीकात्मक और व्यंग्य–चरित्र हैं।

विषस्य विषमौषधम्– यह संस्कृत की भाषा शैली में लिखा गया एक–पात्रीय नाटक है। भारतेन्दु अपने समय के राजाओं की व्यभिचार–लीला और प्रजा शोषण देख रहे थे। ये राजा ही देश की परतंत्रता के कारण बने। भारतेन्दु ने सामंत वर्ग की स्वार्थ लोलुपता और अंग्रेजों की कूटनीति को एक साथ पहचाना है और एक–पात्रीय नाटक की एकरसता को कहावतों, चुटकुलों, मुहावरों, पदों, श्लोकों, व्यंग्य, हास्य से मनोरंजक बनाया है।

प्रेमजोगिनी– यह नाटक भी यथार्थवादी नाटक है। यह काशी के बहाने सामंती संस्कृति के पतन का नाटक है। यह काशी के पाखंड भरे रूप को उद्घाटित करता है। यह नाटक के क्षेत्र में भारतेन्दु का नया प्रयोग है। हर अंक में नए पात्र आते हैं, अतः एक ही पात्र के कई बार अभिनय करने की संभावनाएँ बनती हैं।

सत्य हरिश्चन्द्र– यह नाटक रीतिकालीन श्रृंगार रस के प्रति असंतोष से उपजा है। इस नाटक को नवयुवकों में चरित्र और आदर्श स्थापित करने के उद्देश्य से लिखा गया। 'सत्य हरिश्चन्द्र' क्षेमेश्वर के 'चण्डकौशिक' नाटक के आधार पर लिखा गया है। यद्यपि उसका रूप, उसकी भाषा की सरसता और भावात्मकता, उसके सरस पद्य सब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के हैं। 'सत्य हरिश्चन्द्र' की रचना के माध्यम से वे देश का जन–मानस गर्व से भरना चाहते थे, उसे चारित्रिक उत्थान का माध्यम बनाना चाहते थे। इस नाटक के शिल्पविन्यास में भी पाश्चात्य शैली के प्रभाव के साथ ही भारतेन्दु की मौलिकता भी दिखाई देती है। यह नाटक भारतीय जनता के धैर्य और अथाह करुणा का प्रतीक है।

चन्द्रावली– यह प्रेम और और भक्ति की स्त्री पात्र प्रधान नाटिका है। इसमें सूर, मीरा, रसखान जैसे कवियों के भक्तिकाव्य का सा आनंद मिलता है। 'चन्द्रावली' को रासलीला के लोकनाट्य के रूप में लिखा गया है। राधा–कृष्ण की युगल मूर्ति के उपासक भारतेन्दु का अखण्ड परमानन्द 'चन्द्रावली' के अनन्य प्रेम और भक्ति के द्वारा अभिव्यक्त हुआ है।

भारत दुर्दशा– इस नाटक के द्वारा अंग्रेजी राज्य की अप्रत्यक्ष आलोचना की गई है और साथ ही यह नाटक भारतेन्दु की देश–भक्ति और निर्भीकता का, सहृदयता और वीरता का प्रमाण है। उनकी राजनीतिक सूझबूझ, प्रहसन–कला, करुणा, व्यंग्य और यथार्थ का सजीव चित्रण इसमें मिलता है। प्रतीकात्मक पात्रों के द्वारा उन्होंने अपनी बात कहने की सफल कोशिश की है। लोकधर्मी चेतना और प्रयोगशीलता के कारण 'भारत दुर्दशा' आज भी प्रासंगिक है। यह लचीले शिल्प का नाटक है। उसमें पारसी रंगमंच और नौटंकी लोक नाट्य रूप का अद्भुत मिश्रण है।

भारत जननी– यह नाटक भी भारतवर्ष की तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर लिखा गया काव्य–नाटक है। 'चन्द्रावली' और 'भारत जननी' में गीतिनाट्य का सूत्रपात देखा जा सकता है।

'भारत दुर्दशा' के तुरन्त बाद लिखा गया **'नीलदेवी'** नाटक भी स्त्री प्रधान और पहला दुखान्त नाटक है। भारतेन्दु देश में फैले इस भ्रम को दूर करना चाहते थे कि भारत में स्त्रियों की दशा बहुत खराब रही है। 'नीलदेवी' के महत्वपूर्ण गुण हैं– उसके सरस, मधुर गीत और भारतेन्दु के प्रहसन, जिंदादिली और तीव्र अभिनयात्मकता की शैली। 'नीलदेवी' के गीत आधुनिक दृष्टि से 'नाट्यसंगीत' और 'नाट्यगीत का सुन्दर उदाहरण हैं।

अंधेर नगरी – इस नाटक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की नाट्यकला का चरमोत्कर्ष हुआ है। प्रहसन और व्यंग्य–कला का इतना चुटीला और सजीव रूप उनकी सजगता और मानव जीवन में उनकी गहरी पैठ का परिणाम है। जन–प्रचलित एक छोटी सी लोकोक्ति के आधार पर रचित यह छोटा नाटक अपने भीतर समग्र वर्तमान सन्दर्भ छिपाये हुए है। एक लोककथा को नया जीवन प्रदान करना तथा लोकजीवन और राजनीतिक चेतना को एक–दूसरे के करीब लाते हुए उनमें निहित यथार्थ को व्यंग्य के द्वारा व्यक्त करना भारतेन्दु की मौलिकता है। 'अंधेर नगरी' भारतेन्दु के समय का ही नहीं हमारे समय का भी यथार्थ है। इस नाटक के मूल्यांकन के विशिष्ट बिन्दुओं का अध्ययन आप इकाई 3 एवं 4 में करेंगे।

सती प्रताप – इस नाटक में सती सावित्री के कथानक को लेकर भारतीय नारी की चेतना और आदर्श को प्रस्तुत किया गया है ताकि पुरुषों में नवीन जागरण उत्पन्न हो सके। भारतेन्दु इसके केवल चार दृश्य ही लिख पाए थे। बाद में बाबू राधाकृष्णदास ने इसे पूरा किया था।

अनूदित नाटकों में भी भारतेन्दु का निश्चित लक्ष्य था। हर्षकृत संस्कृत नाटिका 'रत्नावली' का हिंदी अनुवाद उनका प्रथम अनुवाद था, उसे वह शाकुन्तलम् के बाद श्रेष्ठ पठनीय कृति मानते थे। इस अनुवाद में मूल संस्कृत छंदों के साथ स्वयं उन्होंने भी छंद बनाए थे। 'पाखण्ड विडम्बन' कवि कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तीसरे अंक का अुनवाद है। एक अंक की कथावस्तु को नया नाम देकर एक स्वतंत्र रचना के रूप में अनुवाद करना भारतेन्दु की मौलिक दृष्टि का परिचायक है। इसके प्रतीकात्मक पात्र 'भारत दुर्दशा' का ही आरंभिक रूप हैं। इस की भाषा अनुवाद की सी नहीं लगती। प्रहसन के द्वारा भारतेन्दु अपने सब लक्ष्य पूरे करते हैं। 'धनंजय विजय' वीर–रस प्रधान ओजपूर्ण नाटक है। इसके भरत–वाक्य में वह कजरी, ठुमरी आदि की रूढ़िवादी लीक को छोड़कर नये साहित्य और कविता की राह पर चलने को कहते हैं।

मुद्राराक्षस– संस्कृत के नाटककार विशाखदत्त का यह एक राजनीतिक नाटक है। नायक–नायिकाओं की श्रृंगार लीलाओं से हटकर प्राचीन और नवीन परम्पराओं के समन्वय के द्वारा इस नाटक से भारतेन्दु प्रमाणित करना चाहते थे कि श्रृंगार रस के बिना भी विचारोत्तेजक महान नाटक की रचना की जा सकती है। आज के सांस्कृतिक जीवन में भी 'मुद्राराक्षस' का महत्व है। इसमें चाणक्य की कूटनीतिक दृढ़ता और नैतिकता दर्शनीय है। घटनाओं और पात्रों के अर्न्तद्वन्द्व का चित्रण और सम्पूर्ण कथा का संयोजन बहुत सुन्दर हुआ है। इस नाटक का अनुवाद और भी अधिक जीवन्त एवं मौलिक है। देखा जाए तो एक प्रकार से यह अनुवाद की भाषा और स्वरूप का मौलिक उदाहरण है। इसमें संस्कृत और पाश्चात्य नाटक–कला का समन्वय कर भारतेन्दु हिंदी नाटक कला का स्वरूप निर्माण करने की चेष्टा करते भी दृष्टिगत होते है।

कर्पूर–मंजरी– कवि राजशेखर द्वारा प्राकृत भाषा में रचित 'कर्पूरमंजरी' का अनुवाद है। इसमें राजदरबार का सुन्दर व्यंग्यात्मक चित्र है। श्रृंगार रस के लिए मूल गीतों के स्थान पर हिंदी के रीतिकालीन कवियों के श्रृंगार प्रधान गीतों का प्रयोग भारतेन्दु की मौलिकता है। 'दुर्लभबन्धु' शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक 'मरचेन्ट ऑफ वेनिस' का अनुवाद है। भारतेन्दु ने पात्रों के नाम, स्थान, कथा, संवाद आदि में परिवर्तन करके उसका भारतीयकरण किया है। इस नाटक द्वारा सच्ची मित्रता और धनिकों के हृदय की क्रूरता दिखाना उनका उद्देश्य है।

विद्यासागर – यह यतीन्द्र मोहन ठाकुर के बंगला नाटक का अनुवाद है। यह एक प्रेमकथा है। कथा–विन्यास और चरित्र–चित्रण में मानसिक अर्न्तद्वन्द्व भी अभिव्यक्त हुआ है और घटनाओं का उतार–चढ़ाव भी दिखाई देता है। इस प्रकार पाश्चात्य शैली का प्रभाव

इस नाटक से सामने आता है। यह एक रोमांटिक नाटक है जिसमें रोमियो–जूलियट प्रेम में असफल होने के कारण प्राण नहीं देते, बल्कि अंत में मिल जाते हैं।

सभी अनूदित नाटकों को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु नाटकों का चयन सोच–समझ से करते थे। वे अपनी परम्परा, अपने युग, हिंदी की नाट्यकला और भाषा का संस्कार करने में अनुवादों का महत्व समझ रहे थे। अनुवाद क्षेत्र भी उनके व्यक्तित्व और व्यापक मानवीय संवेदना तथा कला–कौशल का प्रतीक है।

2.5 'अंधेर नगरी' की विशेषता

'अंधेर नगरी', अपने संक्षिप्त कलेवर में गंभीर, सांकेतिक, मनोरंजक और कालजयी नाटक है। उसके कथा–स्रोतों पर आलोचक कई प्रकार के विचार प्रकट करते रहे हैं। 'अंधेर नगरी' की कथा कोई नई नहीं है। श्री रामदीन सिंह ने उसकी प्रस्तावना में कहा है कि दक्षिण में पारसी और मराठी नाटक वाले अंधेर नगरी का प्रहसन खेला करते थे। कुछ विद्वान इस कथा को लोकप्रसिद्ध कथा भी कहते हैं। (देखें, भारतीय नाट्यसाहित्य : सं. डॉ. नगेन्द्र, भारतेन्दु के नाटक : डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 285–286) यह भी कहा गया है कि यह नाटक 1881 ई. में किसी ज़मींदार को लक्षित करके नेशनल थियेटर के लिए एक ही बैठक में लिखा गया था। ब्रजरत्न दास का मत है कि बिहार प्रांत के किसी ज़मींदार के अन्यायों को लक्ष्य करके उसे सुधारने के लिए तथा नेशनल थियेटर में अभिनीत किए जाने के लिए इस नाटक की रचना हुई थी। एक ही रात में भारतेन्दु ने लोकोक्ति 'अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा' को इतना व्यंग्यात्मक और सृजनात्मक अर्थ दे दिया। रंगमंडली के अनुरोध पर लिखा गया यह नाटक भारतेन्दु के नाट्य लेखन की तीव्रता और गंभीरता को दिखाता है। साथ ही, यह भी सोचने के लिए विवश करता है कि साहित्य, रंगमंच और सामाजिक संदर्भों का कैसे इतना गहरा और अंतरंग रिश्ता बन जाता है।

भारतेन्दु के इस नाटक में भविष्य की रचनाओं के सर्वोत्कृष्ट सूत्र नजर आते हैं। यह भारतेन्दु के कथा विन्यास, संयोजन, संरचना, जीवंतता और भाषा की रवानगी का सौंदर्य है। 'अंधेर नगरी' संक्षिप्त कथा प्रसंगों का, नाटकीय स्थितियों का और दृश्यों की रचना और उनके कुशल संयोजन का समकालीन नाटक है। इसमें रोचकता और जिज्ञासा तत्व भी बना रहता है और व्यंजनाओं की गंभीरता और तीखापन भी।

रचना के 'समर्पण' में जब भारतेन्दु कहते हैं ''मान्य योग्य नहिं होत कोऊ कोरो पद पाए'' तो वह अपना जीवन–दर्शन व्यक्त करते हैं। 'समर्पण' के बाद भारतेन्दु का संस्कृत श्लोक भी बेहद व्यंजक है। नाटक को पढ़ने की प्रक्रिया में आप देखेंगे कि इस श्लोक में मानों 'अंधेर नगरी' की कथा का सूत्र छिपा हुआ है। युग–दृष्टि और व्यंग्यात्मकता भारतेन्दु के लेखन की केंद्रीय विशेषता है, जिसने 'अंधेर नगरी' को प्रहसन होते हुए भी प्रहसन मात्र नहीं बनने दिया बल्कि प्रहसन के बहाने उन्होंने अपने समय के यथार्थ का बिडंबनात्मक रूप प्रस्तुत किया है। इस नाटक में तत्कालीन राजसत्ता के दमनकारी चरित्र की सांकेतिक अभिव्यक्ति है और सामान्य जनता की शक्ति का चित्रण भी। भारतेन्दु 'भारत दुर्दशा' और 'अंधेर नगरी' के द्वारा सुधारवाद का कार्य ही नहीं करते, न यथार्थ–चित्रण करके मुक्त हो जाते हैं बल्कि उन्होंने एक आशावादी दृष्टि से मोहग्रस्त, रूढ़िग्रस्त, आपसी फूट से खंडित, प्रसुप्त देशवासियों को जागृत करने का काम किया है। यह रचना व्यापक स्तर पर उदासीनता और जड़ता को तोड़ने और मुक्ति की मानसिकता तैयार करने का काम करती है। 'अंधेर नगरी' में जनचेतना की अभिव्यक्ति है, उनकी संघर्ष–क्षमता है ठोस यथार्थ का व्यंजक–मनोरंजक रूप है, पर उसे हम न सुधारवादी कहेंगे, न पुनरुत्थानवादी, न किसी विचारधारा के तहत लिखा गया नाटक। परिवर्तन की जरूरत को ध्यान में रखते हुए भारतेन्दु जनता तक प्रभावशाली रूप में

पहुँच सकने वाली विधा, नाटक द्वारा साहित्य को ठोस–सक्रिय दिशा देने चाहते थे। यह नाट्य रचना, नाट्य विधा की सामाजिकता और सामूहिकता का प्रमाण है।

आप नाटक को पढ़ने की प्रक्रिया में यह भी देखेंगे कि इस नाटक में राजव्यवस्था और उसके दो महत्वपूर्ण स्तंभों –नौकरशाही और न्याय व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। 'अंधेर नगरी' का चौपट राजा यहाँ अविवेकपूर्ण राजसत्ता का प्रतीक है।

बोध प्रश्न– 2

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 4–5 पंक्तियों में दीजिए।

क) 'विद्यासागर' नाटक का कथ्य बताइए।

....

....

....

....

ख) 'मुद्राराक्षस' की विशेषता बताइए।

....

....

....

....

ग) भारतेन्दु द्वारा अनूदित नाटकों का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

2.6 सारांश

'भारतेन्दु की नाट्य दृष्टि और अंधेर नगरी' नामक इस इकाई में आपने देखा कि किस तरह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक के दृश्यात्मक पक्ष और लोकपक्ष को समझते हुए नाटकों की रचना की। उनके लिए नाटक साहित्य भी था और रंगमंच भी। वह नाटक को समाज और राष्ट्र के जागरण और युग–परिवर्तन का सशक्त माध्यम मानते थे। आपने यह भी जाना कि भारतेन्दु को पूर्वप्रचलित और अपने युग की विभिन्न नाट्य परंपराएँ मिलीं जिनका प्रभाव उनके लेखन पर दिखाई देता है। पश्चिम की नाट्य रचना का आधार लेते हुए उन्होंने मुख्य रूप से लोकधर्मी चेतना को अपनाया। आप यह भी जान चुके हैं कि भारतेन्दु ने अनेक मौलिक नाटक भी लिखे और भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद भी किये। उनकी रचनाओं से आपको स्पष्ट हो गया होगा कि वे स्वाधीन चेतना के नाटककार थे। भारतीय नाट्य परंपरा हो या पाश्चात्य, उनका अनुसरण करना मात्र उनका उद्देश्य नहीं था। वह बदलते युग और रुचि के अनुसार हिंदी नाट्यकला का विस्तार करना चाहते थे। अपनी यह दृष्टि उनके नाटक निबंध में दिखाई देती है। भारतेन्दु के लिए नाटक सोद्देश्य था। उन्होंने मनोरंजन पक्ष और रंगमंचीय पक्ष को कभी हेय नहीं माना। 'अंधेर नगरी' अपने अपने संक्षिप्त कलेवर में प्रहसन होते हुए भी, अपनी व्यापक अर्थवत्ता की वजह से कालजयी नाटक है। लोकोक्ति

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

के आधार पर लिखा गया यह नाटक अपनी कथावस्तु, भाषा, संरचना, जीवन्तता और जिंदादिली में कितना अद्‌भुत है, इन पर आगामी इकाइयों में विचार किया जाएगा।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क) 1883, ख) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र,

   ग) सत्य हरिश्चंद्र घ) पंचमवेद

2. क) भारतेन्दु मूलतः लोकधर्मी चेतना के नाटककार है लेकिन साथ ही उन पर संस्कृत के शास्त्रीय विधान और पारसी नाटक भी प्रभाव देखा जा सकता है।

   ख) उत्तर के लिए देखिए 2.3

   ग) उत्तर के लिए देखिए 2.3.2

3. क, ख एवं ग के उत्तरों के लिए 2.4 का पुनः अध्ययन कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3: 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु का विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु के स्रोत

3.3 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु का सार

3.4 नाटक की कथावस्तु का विकास

3.5 नाटक की कथावस्तु की विशेषताएँ

3.6 संकलन–त्रय का निर्वाह

3.7 'अंधेर नगरी' की कथावस्तु में व्यंग्य–विधान

3.8 सारांश

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप नाटककार भारतेन्दु हरिश्चंद्र के नाटक 'अंधेर नगरी' की कथावस्तु का परिचय पढ़ने जा रहे हैं। इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु से परिचित हो सकेंगे;
- इस नाटक की कथावस्तु के स्रोत को जान पाएँगे;
- इस नाटक की कथावस्तु की प्रमुख विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे;
- 'संकलन–त्रय' की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु का अध्ययन करेंगे;
- प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु के विकास को समझ पाएँगे; और
- इस नाटक की कथावस्तु में निहित व्यंग्य–विधान को जान पाएँगे।

3.1 प्रस्तावना

कथावस्तु नाटक का सर्वप्रमुख तत्व है। किसी भी नाटक की कथावस्तु इतिहास, कल्पना, अनुमान, जनश्रुति, जीवन और जगत की विभिन्न घटनाओं, भावानुभवों, विचार–विमर्शों व समस्याओं पर आधारित हो सकती है। 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु लोक–प्रचलित कथा पर केन्द्रित है। सजग और युगचेता नाटककार भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने नाटकीय सूझ–बूझ और उत्प्रेरक कल्पना–शक्ति द्वारा इस संक्षिप्त कथा को तत्कालीन समय की आवश्यकताओं के अनुरूप बड़ी कुशलता से ढाला है। विदेशी संस्कृति की चमक–दमक के समक्ष अपनी भारतीय संस्कृति और उसके महत् मूल्यों को बचाये रखने का सन्देश भारतेन्दु जी ने बड़े रोचक और व्यंग्यात्मक ढंग से इस नाटक के माध्यम से दिया है। इस रूप में 'अंधेर नगरी' एक प्रहसन है। प्रस्तुत इकाई में आप 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु के स्वरूप, उसके विविध आयामों और विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

3.2 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु के स्रोत

'अंधेर नगरी' नाटक की रचना एक प्रसिद्ध लोक–उक्ति 'अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा' को आधार बना कर की गई है। यह लोकोक्ति है, जिसमें

अज्ञानी राजा की विवेकशून्यता के चलते नगर में उपजने वाली घोर अराजकता की ओर संकेत किया गया है। थोड़े–बहुत हेर–फेर के साथ यह लोकोक्ति और इससे सम्बन्धित कथा समूचे उत्तर भारत में प्रचलित है। डॉ. बच्चन सिंह 'अंधेर नगरी' नाटक की रचना के कारणों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं– "इस नाटक के लिखे जाने की अपनी कहानी है। इसे उन्होंने बनारस की एक नाट्य–संस्था 'द इंडियन नेशनल थियेटर' के लिए लिखा था। इस थियेटर से वे सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे। इसके रंगकर्मियों की इच्छा हुई कि वे भी पारसी और महाराष्ट्रीय नाटक मंडलियों की तरह अंधेर नगरी जैसा लोकप्रिय प्रहसन खेलें। पर भारतेन्दु उन मंडलियों की 'अंधेर नगरी' खेलने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने उसे नया संस्कार दिया और तत्कालीन परिवेश से जोड़कर एक नई अंधेर नगरी बना डाली। यह 'अंधेर नगरी' मुख्यतः अंग्रेजी राज्य–व्यवस्था के प्रति गहरा व्यंग्य है। अंग्रेजों के प्रकोप से बचने के लिए प्रचारित किया गया कि यह बिहार के एक राजा के सुधार के लिए लिखा गया है।" (हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह) 'अंधेर नगरी' के अंतिम दृश्य के स्रोत के सम्बन्ध में डॉ. बच्चन सिंह लिखते हैं – "... फाँसी वाला समूचा प्रसंग बंगाल में प्रचलित एक लोककथा पर आधारित है। यह कथा उन्हें मल्लिका द्वारा प्राप्त हुई थी।" –इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु का स्रोत लोक–कथा है किन्तु भारतेन्दु ने उसमें समसामयिकता का संस्पर्श देते हुए इस नाटक का स्तर प्रहसन–मात्र से ऊपर उठाकर व्यापक देश–हित तक पहुँचा दिया। नाटक के आरम्भ में भारतेन्दु द्वारा रचित पद्यात्मक समर्पण और उद्धृत किया गया श्लोक भी कथावस्तु के कथ्य की ओर संकेत करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक–प्रचलित कथा का परिष्कार करते हुए भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु को निर्मित किया।

3.3 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु का सार

'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु अत्यंत संक्षिप्त है। यह छह दृश्यों में विभाजित है, जिसका सार इस प्रकार है :

प्रथम दृश्य में नगर के बाह्य प्रांत में एक महंत अपने दो चेलों– नारायणदास और गोबर्धनदास के साथ 'राम भजो राम भजो राम भजो भाई' भजन के अंतर्गत राम नाम की महिमा का गान करते हुए आते हैं। दूर से ही दिखती नगर की सुन्दरता उन्हें आकर्षित करती है और वे उसी नगर से भिक्षा लेकर ठाकुर जी को भोग लगाने का निर्णय करते हैं। नगर की चकाचौंध से नारायणदास को भिक्षा–प्राप्ति में संदेह होता है। महंत जी नारायणदास को पूर्व की ओर तथा गोबर्धनदास को पश्चिम की ओर से भिक्षा लेने भेजते हैं। यहाँ के लोगों को मालवर देख गोबर्धनदास गुरु जी को बहुत–सी भिक्षा लाने के लिए आश्वस्त करता है किन्तु गुरु जी अधिक लोभ न करने की चेतावनी देते हैं फिर सब गाते हुए चले जाते हैं।

दूसरा दृश्य बाजार का है जिसमें अलग–अलग तरह के व्यापारी अपना माल बेचने के लिए अलग–अलग तरह से ग्राहकों को आकृष्ट करने का प्रयास करते हैं। इस बाजार में आटा, चावल, दाल, नमक, मसाला, लकड़ी, मिठाई, मछली, कबाब, चना, चूरन, नारंगी, साग–सब्जियाँ, सूखे मेवे आदि सब कुछ टके का सेर बिक रहा है। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि यहाँ जाति का व्यापार भी हो रहा है। गोवर्धनदास सब कुछ टके सेर बिकने वाली इस नगरी और इसके राजा का नाम जानना चाहता है। हलवाई बताता है कि यह अंधेर नगरी है और यहाँ के राजा का नाम चौपटट् है। गोबर्धनदास को भिक्षा में सात पैसे मिलते हैं जिससे वो साढ़े तीन सेर मिठाई खरीद कर अंधेर नगरी का गीत गाते हुए जंगल की ओर चल पड़ता है।

तीसरा दृश्य जंगल का है जिसमें एक ओर से महंत और नारायणदास राम–भजो का गीत गाते हुए आते है और दूसरी ओर से गोबर्धनदास अंधेर नगरी का गीत गाते हुए

आता है। उसकी भारी गठरी में बहुत सारी मिठाई देखकर गुरु जी पूछते हैं कि क्या किसी धर्मात्मा से भेट हुई है ? फिर गोबर्धनदास बाजार का पूरा वृत्तांत बताता है कि इस नगरी में सब वस्तुएँ टके सेर मिलती हैं। महंत जी ऐसी नगरी में न रहने की सलाह देते है और वहाँ से तुरंत चलने के लिए कहते हैं। लेकिन गोबर्धनदास पेट भरने के लोभवश उस नगर का मोह नहीं छोड़ पाता। महंत उसे सचेत करते हैं कि ऐसी नगरी में रहोगे तो बाद में पछताओगे। लेकिन गोबर्धनदास नहीं मानता। महंत संकट समय में स्मरण करने की बात कहकर नारायणदास के साथ वहाँ से प्रस्थान कर जाते हैं और गोबर्धनदास बैठकर मिठाई खाता रह जाता है।

चौथा दृश्य अंधेर नगरी के चौपटट् राजा की राजसभा का है जिसमें राजा, मंत्री और नौकर यथास्थान बैठे हैं। राजसभा की कार्यवाही के दौरान ही शराब का सेवन करने वाला चौपटट् राजा भाषा, आचार–व्यवहार और सामान्य समझ के आधार पर वास्तव में अपने नाम को चरितार्थ कर रहा है। राजा के दो नौकर एक फरियादी को पकड़ कर लाते हैं। फरियादी राजा से न्याय की गुहार लगाते हुए बताता है कि मेरी बकरी के ऊपर कल्लू बनिया की दीवार गिर पड़ी जिससे बकरी मर गयी। चौपटट् राजा फरियादी को विश्वास दिलाता है कि तुम्हें ऐसा न्याय मिलेगा जैसा यम के यहाँ भी नहीं होता। न्याय की प्रक्रिया के दौरान एक–के–बाद–एक कल्लू बनिया, कारीगर, चूने वाला, भिश्ती, कस्साई, गड़ेरिया और अंत में कोतवाल साहब को राजसभा में प्रस्तुत किया जाता है। बकरी के मरने का जिम्मेदार कोतवाल को ठहराकर और उसे फाँसी की सजा सुनाकर राजा दरबार को बरखास्त कर देता है।

पाँचवाँ दृश्य आरण्य का है जिसकी शुरूआत में गोबर्धनदास 'अंधेर नगरी अनबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा' गीत गाते हुए अंधेर नगरी की विशेषताओं का बखान करता है और फिर बैठकर आनंद से मिठाई खाता है। तभी चार प्यादे चारों ओर से आकर उसे पकड़ लेते हैं। गोबर्धनदास द्वारा कारण पूछे जाने पर वे बताते हैं कि कल चौपटट् राजा द्वारा कोतवाल को फाँसी की सजा सुनाई गयी थी, आज जब कोतवाल साहब को फाँसी चढ़ाने के लिए लेकर गए तो कोतवाल साहब की गर्दन पतली होने के कारण फाँसी का फंदा बड़ा लगा। यह बात जब चौपटट् राजा को बताई गयी तो उन्होंने किसी भी मोटे आदमी को पकड़कर फाँसी देने का हुक्म दिया। प्यादे गोबर्धनदास को बताते हैं कि अंधेर नगरी में राजा के डर से कोई मोटा नहीं होता और इस राज में साधू–महात्मा की दुर्दशा है –इस दृष्टि से तुम ही सबसे मोटे लगे इसलिए अब हम तुम्हें ही फाँसी पर चढ़ा देंगे। गोबर्धनदास इस अंधेरगर्दी से प्राण बचाने के लिए अपने गुरु जी की गुहार लगाता है, चिल्लाता है किन्तु प्यादे उसे पकड़कर ले जाते हैं।

छठा दृश्य श्मशान का है, जिसमें गोबर्धनदास को पकड़े हुए चार सिपाहियों का प्रवेश होता है। गोबर्धनदास अपने को छुड़ाने की नाकाम कोशिश करते हुए गुरु जी को याद करके रोता है और पछताता है कि उसने गुरु जी का कहना क्यों नहीं माना? तभी गुरु जी और नारायणदास आते हैं। गोबर्धनदास उनके पैर पकड़कर रोते हुए क्षमा मांगता है और बचाने की गुहार लगाता है। गुरु जी सिपाहियों को कहते हैं कि वह अपने शिष्य को अंतिम उपदेश देना चाहता है। सिपाहियों के हट जाने पर गुरु जी गोबर्धनदास के कान में कुछ समझाते हैं जिसे सुनकर गोबर्धनदास और महंत दोनों में फाँसी चढ़ने को लेकर बहस होने लगती है जिसे देखकर सिपाही चकित होते हैं। तभी राजा, कोतवाल और मंत्री भी आ जाते हैं। महंत जी सबको बताते हैं कि अभी ऐसा शुभ मुहूर्त है कि इस समय जो मरेगा उसे सीधे बैकुंठ में स्थान मिलेगा। यह सुनते ही मंत्री, कोतवाल और गोबर्धनदास फाँसी चढ़ने के लिए बहस करने लगते हैं। चौपटट् राजा सबको चुप करवाता है और कहता है कि राजा के होते और कोई बैकुंठ नहीं जा सकता। राजा को फाँसी की टिकठी पर खड़ा कर दिया जाता है। यहीं पर नाटक समाप्त हो जाता है।

3.4 कथावस्तु का विकास

'अंधेर नगरी' नाटक एक लघु–प्रहसन है, अतः इसमें हमें कथावस्तु के विकास से संबंधित नाट्यशास्त्रीय अवस्थाएँ स्पष्टतः दिखलाई नहीं पड़ती हैं तथापि आरम्भ, विकास, संघर्ष की चरम स्थिति और अंत को इंगित किया जा सकता है– प्रस्तुत नाटक का आरम्भ समर्पण से होता है जिसमें भारतेन्दु ने संकेत किया है कि मान्यवर मनुष्य वह नहीं है जिसे बड़ा पद प्राप्त है, बल्कि वह है है जो दूसरों के हित के लिए उदारतापूर्वक कार्य करता है–

"मान्य योग्य नहिं होत कोऊ कोरो पद पाए।
मान्य योग्य नर ते, जे केवल परहित जाए।।
जे स्वारथ रत धूर्त हंस से काक–चरित–रत।
ते औरन हति बंचि प्रभुहिं नित होहिं समुन्नत ।।
जदपि लोक की रीति यही पै अंत धर्म्म जय।
जौ नाहीं यह लोक तदपि छलियन अति जम भय।।
नरसरीर में रत्न वही जो परदुख साथी।
खात पियत अरु स्वसत स्वान मंडुक अरु भाथी।।
तासों अब लौं करो, करो सो, पै अब जागिय।
गो श्रुति भारत देस समुन्नति मैं नित लागिय।।
साँच नाम निज करिय कपट तजि अंत बनाइय।
नृप तारक हरि पद भजि साँच बड़ाई पाइय।।"

यह समर्पण पाठक / दर्शक में नाटक के आगे आने वाले घटना–व्यापार और उसमें वर्णित भाव–बोध का आभास करवाने में सफल होता है कि दोहरे चरित्र वाले कुछ समय के लिए अवश्य सफल हो जाते हैं किन्तु अंततः धर्म और सत्य की ही जय होती है। इसके तुरंत बाद महंत का अपने चेलों के साथ राम नाम भजते हुए आना समर्पण में संकेतित बात से जुड़ जाता है। पहले दृश्य में महंत द्वारा अपने चेलों को अधिक लोभ न करने की सीख के बाद नाटक आरम्भ हो जाता है।

दूसरा, तीसरा और चौथा दृश्य विकास के अंतर्गत गिना जा सकता है। बाजार वाले दृश्य से ही इस नाटक की कथा विकास की ओर बढ़ती है। यह दृश्य अनेक अर्थों को संकेतित करता है। आकर्षक लहजे में ऊँची–ऊँची आवाज लगाकर अपना सामान बेचने वाले दुकानदारों को देखकर गोबर्धनदास बाजार के गहरे प्रभाव में आ जाता है। यह असर इतना गहरा है कि तीसरे दृश्य में महंत द्वारा समझाए जाने पर भी वह भरपेट स्वादिष्ट मिठाई और भोजन के लालच में अंधेर नगरी में ही रहने का निर्णय लेता है। चौथे दृश्य में राजसभा का दृश्य है जो सीधे सीधे गोबर्धनदास से नहीं जुड़ता किन्तु पाँचवें दृश्य में जब प्यादे गोबर्धनदास को फाँसी देने के लिए पकड़कर ले जाते हैं तब बाजार, राजसभा और गोबर्धनदास का संबंध साफ–साफ समझ आने लगता है। राजसभा वाले दृश्य में चौपट्ट राजा की विवेकशून्य और दिखावटी न्याय–प्रक्रिया एक तरफ हास्य की सृष्टि करती है तो दूसरी तरफ न्यायालयों में होने वाली विलंबित प्रक्रिया पर करारा व्यंग्य भी करती है। पाँचवें दृश्य में कथावस्तु में संघर्ष चरम पर पहुँचता है। जब चौपट्ट राजा के सैनिक गोबर्धनदास को उसके मोटापे के कारण फाँसी चढ़ाने के लिए पकड़कर ले जाते हैं तब दर्शक की जिज्ञासा चरम पर पहुँचती है कि केवल अपना पेट भरने की ही सोचने वाले और 'अंधेर नगरी' के गलत चलन पर ध्यान न देकर अपने–आप में ही मग्न रहने वाले गोबर्धनदास का अब क्या होगा ? छठे और

आखिरी दृश्य में गोबर्धनदास की पुकार पर महंत के आने से नाटक का संघर्ष धीरे–धीरे उतार पर आता है और महंत की सूझ–बूझ से चौपट्ट राजा के अंत का संकेत करते हुए भारतेन्दु नाटक का सुचिंतित अंत करते हैं। "किसी अनुशासनहीन, संस्कारविहीन दुरावस्था को प्राप्त समाज की, जिसमें सज्जनों–सुजानों का आदर नहीं होता, प्रजा के अहित की योजनाएँ बनाई जाती हैं, दुर्गति होती है और ऐसे राज्य के अधिकारी का हश्र भी बुरा ही होता है, यह नाटक ऐसा संकेत देकर विराम लेता है।" (अंधेर नगरी : सृजन–विश्लेषण और पाठ, रमेश गौतम) नाटक के इस प्रभावशाली अंत के साथ दर्शक/पाठक निश्चित रूप से चौपट्ट राजा के अंत के कारणों और महंत की सूझ–बूझ पर भी विचार करता है। नाटक पढ़ने की प्रक्रिया में आप देखेंगे कि 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु धीरे–धीरे विकसित होकर अंत तक पहुँचती है और पाठक/दर्शक को परितोष प्रदान करती है।

3.5 नाटक की कथावस्तु की विशेषताएँ

जैसाकि आप पूर्व में जान चुके हैं कि 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु का आधार एक लोक–प्रचलित कथा है। लोक से जुड़ी हुई कोई भी वस्तु सहज प्रवाहित होती है– यह बात हमें 'अंधेर नगरी' की कथावस्तु में भी देखने को मिलती है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र 'नाटक' नामक निबंध में कथावस्तु की विशेषताएँ बताते हुए लिखते हैं – "नाटक की कथा की रचना ऐसी विचित्र और पूर्वापर बद्ध होनी चाहिए कि जब तक अन्तिम अंक न पढ़ै किम्बा न देखै यह न प्रकट हो कि खेल कैसे समाप्त होगा।" स्पष्ट है कि यहाँ भारतेन्दु कथावस्तु में उपस्थित तत्वों – जिज्ञासा, रोचकता और सुसम्बद्धता की ओर संकेत कर रहे हैं। इस दृष्टि से हम 'अंधेर नगरी' को देखें तो पाएँगे कि अंतिम दृश्य को छोड़कर इस नाटक की कथावस्तु के प्रत्येक दृश्य का अंत पाठक/दर्शक के मन में कोई–न–कोई जिज्ञासा छोड़ कर जाता है, अंतिम दृश्य पाठक/दर्शक को एक आत्मिक संतुष्टि का भाव देता है कि अंधेर नगरी के चौपट्ट राजा का अंत ऐसा ही होना चाहिए जैसा प्रस्तुत नाटक में दिखलाया गया है। पहले दृश्य का अंत गोबर्धनदास द्वारा बहुत–सी भिक्षा लाने पर महंत द्वारा बहुत अधिक लोभ न करने की शिक्षा पर होता है–यहाँ दर्शक को आगे की घटना जानने की सहज जिज्ञासा होती है कि क्या महंत जी के शिष्य उनकी शिक्षा का पालन करेंगे? दूसरा दृश्य तो 'टके सेर' की बाजारी चकाचौंध से भरपूर है, जिसमें प्रत्येक सामान बेचनेवाला अपनी हाँक से दर्शक को आश्चर्यचकित करता है। दर्शक में जिज्ञासा पैदा होती है कि अंधेर नगरी के प्रति आकर्षित होने वाले और गठरी में साढ़े तीन सेर मिठाई लेकर आनंदपूर्वक 'अंधेर नगरी' का गीत गाते हुए आने वाले गोबर्धनदास के व्यवहार पर महंत जी की प्रतिक्रिया कैसी रहेगी ? तीसरे दृश्य के अंत में महंत का चेले नारायणदास के साथ अंधेर नगरी छोड़कर चले जाना और खाने के लोभ में गोबर्धनदास का इसी नगरी में रहने वाला निर्णय नाटक की रोचकता को और बढ़ाता है। राजसभा वाला चौथा दृश्य प्रस्तुत नाटक में हास्य की सृष्टि करता है और प्रकारांतर से विवेकहीन व्यवस्था की पोल खोलता है। इस दृश्य के तुरंत बाद पाँचवें दृश्य में न्याय की खानापूर्ति के लिए गोबर्धनदास को दी जाने वाली फाँसी की सूचना से जिज्ञासा चरम पर पहुँच जाती है, जो छठे दृश्य में भी बनी रहती है। अंततः महंत की सूझ–बूझ से चौपट्ट राजा के अंत से पाठक/दर्शक को नाटक का संतुष्टिजनक अंत प्राप्त होता है।

'अंधेर नगरी' के ये सारे दृश्य एक–दूसरे से भली–भाँति जुड़े हुए हैं, ये सभी दृश्य दर्शक के भीतर रोचकता और जिज्ञासा पैदा करते हुए उसे अंतिम दृश्य तक बाँधे रखते हैं। नाटक की कथावस्तु में गतिशीलता का गुण भी है। सभी दृश्यों में वर्णित घटनाएँ त्वरित गति से घटित होकर एक–दूसरे से जुड़ जाती हैं और दर्शक/पाठक को नाटक से लगातार जोड़े रखती हैं। नाटक का अंत भी अत्यंत प्रभावशाली और शिक्षाप्रद है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रोचकता, पूर्वापरसम्बद्धता, एकसूत्रता आदि नाटक की कथावस्तु की जो विशेषताएँ मानी जाती हैं, वे सभी 'अंधेर नगरी' नाटक में पूर्ण रूप से देखने को मिलती हैं।

बोध प्रश्न 1

(क) 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु का सार अपने शब्दों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

(ख) 'अंधेर नगरी' की कथावस्तु की विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3.6 संकलन–त्रय का निर्वाह

नाटक की कथावस्तु में समय, स्थान और कार्य की एकता का काफी महत्त्व होता है। नाटक की भाषा में इसे 'संकलन–त्रय' अर्थात् 'कथावस्तु के तीन तत्वों – समय, स्थान और कार्य का समुचित समन्वय' भी कहा जाता है। यह समन्वय या संकलन नाटक में वर्णित घटना–प्रसंगों को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए आवश्यक माना जाता है। कथावस्तु में आये प्रसंगों के समय, स्थान और घटित होने वाले कार्य, सभी दृश्यों में एक–दूसरे से जुड़े होने चाहिए। इस सन्दर्भ में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'नाटक' नामक निबंध में लिखा है कि "अति दीर्घकाल संपाद्य घटना सकल नाटक में अल्पकाल के मध्य में वर्णन करना यद्यपि दूषणावह नहीं है तथापि नाटक में देशगत और कालगत वैलक्षण्य वर्णन करना अतिशय अनुचित है।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि कथावस्तु में आयी घटनाओं में समय और स्थान की दूरी यदि अधिक हो तो वह नाटक के कार्य–व्यापार के लिए सहज नहीं होता। अतः नाटककार को इस स्थिति से बचना चाहिए।

'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु लोक–कथा से प्रेरित है। लोक–कथाओं में आम जन के साथ अक्सर राजाओं–महाराजाओं के किस्से–कहानियाँ ही होते हैं जिनका अधिकांश कपोल–कल्पित ही होता है। काल्पनिक प्रसंगों में स्थान–समय का तारतम्य होना जरूरी भी नहीं होता। किन्तु, नाटक एक निश्चित अवधि में प्रदर्शित होने वाली विधा है, इसमें यदि कथावस्तु लोक–कथा पर केन्द्रित हो तो भी प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से विभिन्न दृश्यों में वर्णित घटना–व्यापार में स्थान और समय का तालमेल होना आवश्यक हो जाता है। यह नाटककार की कुशलता पर निर्भर करता है कि वह संकलन–त्रय का निर्वाह कैसे करता है। संकलन–त्रय की दृष्टि से हम 'अंधेर नगरी' को देखें तो पाएँगे कि भारतेन्दु ने इस नाटक की कथावस्तु में समय, स्थान और कार्य की एकता को खंडित नहीं होने दिया है। प्रस्तुत नाटक में दृश्यों का घटनास्थल नगर का बाहरी प्रांत, बाजार, राजसभा, श्मशान, आरण्य है– ये घटना–स्थल किसी भी समय और किसी भी काल के हो सकते हैं। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपनी नाटकीय सूझ–बूझ से इन्हें अपने समय की परिस्थितियों से जोड़कर इस नाटक की प्रासंगिकता को सार्वकालिक बना दिया है। इन सभी दृश्यों को एक के बाद एक मंच पर अत्यंत सुगमता से प्रस्तुत किया जा सकता है। गोबर्धनदास से संबंधित कार्य–व्यापार को बाजार से, बाजार को चौपट्ट राजा की विवेकशून्यता से और राजा की विवेकशून्यता को पुनः गोबर्धनदास से जोड़ते हुए भारतेन्दु ने संकलन–त्रय की दृष्टि से कथावस्तु का संयोजन अत्यंत कुशलतापूर्वक किया है। समय और स्थान के अनुरूप घटनाएँ होने के कारण किसी प्रकार की बाधा का अनुभव इस नाटक को पढ़ते या देखते समय नहीं होता। इस रूप में संकलन–त्रय की दृष्टि से 'अंधेर नगरी' एक सफल और सशक्त नाटक है।

3.7 अंधेर नगरी' की कथावस्तु में व्यंग्य–विधान

प्रहसन नाट्य–रूप में लोक कथा का सहारा लेते हुए भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के आलोक में 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु को कुशलता से संयोजित किया है। नाटक का वाचन करते समय आप देखेंगे कि मात्र छह दृश्यों में विभाजित अत्यंत संक्षिप्त–सी दिखने वाली इस कथावस्तु में निहित व्यंग्य–विधान उत्कृष्ट है। प्रस्तुत नाटक में वर्णित घटनाओं के मुख्य रूप से दो बिंदु हैं–पहला, गोबर्धनदास की लालची दृष्टि और दूसरा चौपट्ट राजा की विवेकहीन दृष्टि –इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने के लिए भारतेन्दु ने बाजार की युक्ति को अपनाया है और व्यंग्य के माध्यम से व्यापक उद्देश्यों को साधा है। गोबर्धनदास की लालची दृष्टि को उभारने के लिए पहले तीन दृश्यों की परिकल्पना भारतेन्दु ने की है। यहाँ गोबर्धनदास उस साधारण जन के रूप में है जिसकी कथनी और करनी में काफी अंतर है। कहने को वह साधु है, किन्तु 'टके सेर' वाले बाजार में उसकी जीभ मिठाई खाने के लिए लपलपा उठती है। अपने गुरु द्वारा दी गई अधिक लोभ न करने की चेतावनी के बावजूद वह अंधेर नगरी के बाजार की 'सब कुछ टके सेर' की अनोखी नीति के आकर्षण में फँस जाता है। वह यही समझता है कि अंधेर नगरी की इस अनोखी नीति का उस पर व्यक्तिगत रूप से कोई असर नहीं पड़ेगा बल्कि उसे इसके कारण भरपेट और स्वादिष्ट भोजन मिलेगा। इसीलिए वह कहता है कि–

"गुरु जी हमको नाहक यहाँ रहने को मन किया था। माना कि देस बहुत बुरा है पर अपना क्या? अपने किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज मिठाई चाभना, मजे में आनंद से राम भजन करना।"

इस रूप में गोबर्धनदास उन सभी भारतीय युवाओं का भी प्रतिनिधित्व करता है जो पश्चिमी सभ्यता की भोगवादी दृष्टि और उसके झूठे प्रपंचों की तरफ शीघ्र ही आकर्षित हो जाते हैं। एक आम मनुष्य इसी प्रकार की अदूरदर्शी और संकीर्ण सोच के कारण किस प्रकार अपने प्राणों पर संकट को बुला लेता है यह बात गोबर्धनदास के चरित्र

में कुशलता से व्यंजित की गई है। गोबर्धनदास द्वारा केवल अपने ही बारे में सोचने, अंधेर नगरी की कुनीतियों पर कोई प्रतिक्रिया न देने और अंततः उन्हीं कुनीतियों में फँस जाने की घटना के माध्यम से भारतेन्दु ने स्पष्टतः संकेत कर दिया है कि गलत कार्य के प्रति तटस्थ या उदासीन हो जाना भी एक प्रकार का अपराध ही है जिसका परिणाम हमें भुगतना ही पड़ता है।

व्यंग्य–विधान की दृष्टि से बाजार वाला दृश्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस दृश्य में भारतेन्दु ने बाजार में अलग–अलग सामान बेचने वाले विक्रेताओं के माध्यम से तत्कालीन ब्रिटिश राज की कुव्यवस्था के साथ ही हिन्दुस्तानी की कमजोरियों को उजागर किया है। इस रूप में बाजार तत्कालीन भारत की राजनीतिक–सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है। सूखे मेवे बेचने वाले मुगल द्वारा हिन्दुस्तानी आदमी की कमजोरियों का जिक्र करना, नाटक में उल्लिखित 'कुजड़िन' का सब्जियाँ बेचते–बेचते 'ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर' कहना –उन कमजोरियों की ओर इशारा करता है जिनके कारण भारत अंग्रेजों का गुलाम बना। महान संस्कृति वाले भारत में पैसे के लिए अपने मान–मूल्य किस प्रकार भुला दिये गये हैं– इसकी ओर व्यंग्यात्मक संकेत जातवाले ब्राह्मण के कथन में किया गया है, जो धर्मावलम्बियों पर तीखा व्यंग्य है। ब्राह्मण टके सेर में जात बेच रहा हैः

"जात ले जात, टके सेर जात स एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाय और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिंदू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचौं, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानैं, टके के वास्ते नीच को पितामह बनावैं। वेद धर्मम् कुल मरजादा सचाई बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल ले टके सेर।"

बाजार वाले दृश्य में पाचकवाले का कथन **ब्रिटिश व्यवस्था की स्वार्थान्ध और अत्याचारपूर्ण नीतियों** पर तीखा प्रहार करता है। भारतीय उद्योग–धंधों का दोहन करते हुए ब्रिटेन में धन भेजना, हिन्दुस्तान का धन और बल घटाना, कर्मचारियों द्वारा रिश्वत लेना, पुलिस विभाग द्वारा गैर–कानूनी काम करना आदि को हास्य–व्यंग्यात्मक अंदाज में भारतेन्दु ने प्रकट किया है। इसी कथन में नाटक करने वालों, अखबार के संपादकों की शैली पर भी भारतेन्दु ने व्यंग्य किया है –

"हिंदू चूरन इसका नाम। विलायत पूरण इस का काम।।
चूरन जब से हिंद में आया। इसका धन बल सभी घटाया।।

× × ×

चूरन नाटक वाले खाते । इसकी नकल पचाकर लाते।।
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।।
चूरन खाते लाला लोग। जिन को अकिल अजीरण रोग।।
चूरन खावैं एडिटर जात। जिन के पेट पचौ नहिं बात।।
चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता।।
चूरन पूलिसवाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।।
ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेर।।"

राजसभा वाले दृश्य का व्यंग्य–विधान **अविवेकपूर्ण शासन पद्धति** पर केन्द्रित है। इस दृश्य के आरम्भ में ही राजा की मूर्खता पर मंत्रियों की जी–हजूरी साफ दिखाई देती है। एक फरियादी को 'न्याय' दिलाने के लिए भ्रष्ट, सुस्त शासन–व्यवस्था जिस प्रकार की न्याय–प्रक्रिया अपनाती है– वह अपने आप में अत्यंत हास्यास्पद और व्यंग्यात्मक है। विवेकहीन, भोग–विलास में लिप्त रहने वाले राजा की मूर्खता अंत में उसे ही ले डूबती है। अंध न्याय–व्यवस्था और अपनी बुद्धिहीनता के कारण न्याय करने में अक्षम राजा की दृढ़ धारणा है कि राजा का कर्तव्य न्याय–प्रक्रिया को होते हुए 'दिखाना' है, भले ही वह अन्याय के रूप में परिणत हो जाए। इस नाटक में चौपट्ट राजा, भारतेन्दु कालीन समय के शासकों –ब्रिटिश भी और भारतीय रजवाड़े भी – के अशालीन व अमर्यादित आचरण और विवेकहीन नीतियों की पोल खोलता है। वर्तमान समय में भी हमें नेताओं के चरित्र में इस प्रकार के तत्व गाहे–बगाहे देखने को मिल जाते हैं। इस दृश्य में आये मंत्री और सैनिक उस चतुर–चालाक नौकरशाही को संकेतित करते हैं जो जानबूझकर विवेकहीन नीतियों को तब तक लागू होने देते हैं जब तक कि स्वयं उन पर आँच न आ जाए। नौकरशाही और अफसरशाही की मिलीभगत से किस प्रकार आम जनता को न्याय के नाम पर मूर्ख बनाया जा सकता है और किस प्रकार निर्दोष लोगों पर अभियोग चलाया जा सकता है– इसका जीवंत उदाहरण पाँचवें दृश्य में उस समय देखने को मिलता है जब चौपट्ट राजा के सैनिक साधू गोबर्धनदास को बिना किसी अपराध के बलपूर्वक पकड़कर फाँसी चढ़ाने के लिए ले जाते हैं और कारण पूछने पर कहते हैं–

"1 प्यादा– इसमें दो बात हैं –एक तो नगर भर में राजा के न्याव के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़े तो वह न जानै क्या बात बनावै कि हमी लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर इस राज में साधू–महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इस से तुम्हीं को फाँसी देंगे।"

भोग में लिप्त गोबर्धनदास को अंधेर नगरी की वास्तविकता का पता तभी चलता है जब उसके प्राणों पर संकट आ खड़ा होता है। संकट के समय में उसके गुरु ही तारणहार बनते हैं। नाटक का यह प्रकरण प्रकारांतर से इसी बात को संकेतित करता है कि हमें कोई भी निर्णय भली–भाँति सोच–समझकर लेना चाहिए। क्षणिक सुख की चाह में व्यापक जीवन–मूल्यों से समझौता नहीं करना चाहिए।

'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु में मौजूद इस व्यंग्य–विधान के माध्यम से भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने निराश भारतीय जनता को जागरूक करते हुए संकेत किया है कि बुद्धि और विवेक के बल पर ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों, अन्याय और शोषण पर आधारित व्यवस्था का अंत किया जा सकता है। साथ ही, भारतीय संस्कृति के मूल्यों में विश्वास रखते हुए उन्हें व्यवहार में लाकर भोगवाद और अपसंस्कृतिकरण से बचा जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'अंधेर नगरी चौपट राजा टका सेर भाजी टका सेर खाजा' लोकोक्ति और इससे सम्बन्धित कथा को भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी' की कथावस्तु में बड़े ही रोचक और हास्य–व्यंग्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है। इस नाटक की कथावस्तु में वर्णित घटनाओं और पात्रों के माध्यम से किया जाने वाला व्यंग्य–प्रहार किसी एक समाज या समय के सन्दर्भ में न होकर सार्वकालिक है।

बोध प्रश्न–2

क) निम्नलिखित वैकल्पिक प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. 'अंधेर नगरी' नाटक में कौन सा पात्र अधिक भिक्षा लेकर आता है?

   क) गोबर्धनदास

   ख) नारायणदास

   ग) महंत

   घ) घासीराम

2. निम्न से किस पात्र के स्वेच्छा से फाँसी पर चढ़ने के संकेत के साथ 'अंधेर नगरी' नाटक का अंत होता है?

   क) भिश्ती

   ख) राजा

   ग) नारायणदास

   घ) हलवाई

3. किसकी सूझ–बूझ से गोबर्धनदास फाँसी चढ़ने से बच जाता है?

   क) नारायणदास

   ख) महंत

   ग) राजा

   घ) कोतवाल

ख) निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. 'अंधेर नगरी' नाटक एक .... कथा पर आधारित है।
2. गोबर्धनदास अंधेर नगरी के बाजार से .... मिठाई लेकर आता है।
3. अंधेर ..... चौपट ... । टके सेर .... । टके सेर .... ।

ग) निम्नलिखित दीर्घ उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. 'अंधेर नगरी' नाटक में निहित व्यंग्य–विधान को स्पष्ट कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

2. 'अंधेर नगरी' नाटक के बाजार वाले दृश्य का विश्लेषण कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3.8 सारांश

कथावस्तु नाटक का महत्वपूर्ण एवं आधारभूत तत्व है जो इतिहास, कल्पना, अनुमान, जनश्रुति, जीव–जगत की विभिन्न घटनाओं और समस्याओं पर केन्द्रित हो सकती है। 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु लोक–प्रचलित कथा पर आधारित है जिसे नाटककार भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपनी उर्वर कल्पना–शक्ति द्वारा तत्कालीन समय की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला है। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की महत्ता और ब्रिटिश सरकार की विवेकांध नीतियों को भारतेन्दु जी ने बड़े रोचक और व्यंग्यात्मक ढंग से इस नाटक के माध्यम से दिया है। 'अंधेर नगरी' को प्रहसन कहा जाता है, किन्तु भारतेन्दु ने समसामयिकता का संस्पर्श देते हुए प्रस्तुत नाटक का स्तर प्रहसन–मात्र से ऊपर

उठाकर व्यापक देश–हित तक पहुँचा दिया है। 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु में विकास की सभी स्थितियाँ –आरम्भ, विकास, चरम और अंत– स्पष्टतः देखी जा सकती हैं : प्रस्तुत नाटक के सभी दृश्य एक–दूसरे से भली–भाँति जुड़े हुए हैं और दर्शक के भीतर रोचकता और जिज्ञासा पैदा करते हुए उसे अंतिम दृश्य तक बाँधे रखते हैं। साथ ही, गतिशीलता का गुण होने के कारण दृश्यों में वर्णित घटनाएँ त्वरित गति से घटित होती हैं। रोचकता, पूर्वापरसम्बद्धता, एकसूत्रता आदि सभी विशेषताएँ 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु में पूर्ण रूप से देखने को मिलती हैं। भारतेन्दु ने इस नाटक की कथावस्तु में समय, स्थान और कार्य की एकता को सशक्त ढंग से बनाए रखा है। प्रस्तुत नाटक के दृश्यों में आये घटनास्थल– नगर का बाहरी प्रांत, बाजार, राजसभा, श्मशान, आरण्य– किसी भी समय और किसी भी काल के हो सकते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी नाटकीय सूझ–बूझ से इन्हें अपने समय की परिस्थितियों से जोड़कर इस नाटक की प्रासंगिकता को सार्वकालिक बना दिया है। इन सभी दृश्यों को मंच पर अत्यंत सुगमता से प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रहसन नाट्य–रूप के अंतर्गत लोक कथा का सहारा लेते हुए तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के आलोक में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु को कुशलता से संयोजित किया है। मात्र छह दृश्यों में विभाजित अत्यंत संक्षिप्त–सी दिखने वाली इस कथावस्तु में निहित व्यंग्य–विधान अत्यंत मारक है। इस नाटक की कथावस्तु में वर्णित घटनाओं और पात्रों के माध्यम से किया जाने वाला व्यंग्य–प्रहार वास्तव में किसी एक समाज या समय के सन्दर्भ में न होकर सार्वकालिक है। इसी वजह से यह नाटक आज भी प्रासंगिक है।

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

क) उत्तर के लिए देखिए 3.3

ख) उत्तर के लिए 3.3 एवं 3.4 का पुनः अध्ययन कीजिए।

बोध प्रश्न 2

क) 1. गोबर्धनदास, 2. राजा, 3. महंत।

ख) 1. लोक, 2. साढ़े तीन सेर,

3. नगरी, राजा, भाजी, खाजा

ग) 1. उत्तर के लिए देखिए 3.7

2. उत्तर के लिए देखिए 3.4

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 4: 'अंधेर नगरी' का नाट्य–शिल्प

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 कथावस्तु

4.3 पात्र

4.3.1 महंत

4.3.1 गोबर्धनदास

4.3.1 चौपट्ट राजा

4.3.1 नारायण दास

4.3.1 अन्य पात्र

4.4 संवाद और भाषा

4.5 देश–काल और वातावरण

4.6 रंगमंचीयता

4.7 उद्देश्य

4.8 नाट्य–रूपः प्रहसन

4.9 सारांश

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप नाटककार भारतेन्दु हरिश्चंद्र के नाटक 'अंधेर नगरी' के नाट्य–शिल्प से परिचित होने जा रहे हैं। इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- नाट्य–शिल्प की दृष्टि से 'अंधेर नगरी' का विश्लेषण कर सकेंगे;
- इस नाटक में आये प्रमुख पात्रों और उनकी चारित्रिक विशेषताओं को जान पाएँगे;
- 'अंधेर नगरी' नाटक की संवाद–योजना और भाषा से परिचित होंगे;
- इस नाटक के देश–काल–वातावरण से परिचित हो सकेंगे;
- प्रस्तुत नाटक के उद्देश्य का विश्लेषण कर पाएँगे; और
- रंगमंच की दृष्टि से 'अंधेर नगरी' नाटक का विश्लेषण कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

'अंधेर नगरी' भारतेन्दु के लोकप्रिय और श्रेष्ठ नाटकों में से एक है। यह नाटक जन–प्रचलित कथा पर आधारित है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपनी नाट्य–कल्पना के चलते एक रात में ही इस नाटक की रचना कर दी थी और अगले दिन ही इस नाटक का मंचन भी हो गया था। ऐसा इसलिए संभव हो पाया क्योंकि भारतेन्दु हरिश्चंद्र को नाटक के विधागत तत्वों की पूरी जानकारी थी। वे इस बात से भली प्रकार से परिचित थे कि नाटक रंगमंच पर खेलने के लिए ही लिखा जाता है। भारतेन्दु के 'नाटक' नामक निबंध से हमें उनकी नाट्य–शक्ति का सहज ही आभास मिल जाता है। उन्हें न केवल भारत में नाटक के इतिहास का पूर्ण ज्ञान था, बल्कि तत्कालीन समय के नाटकों पर भी उनकी पैनी नजर थी। पुराने और नये नाटकगत तत्वों का अध्ययन करते हुए ही

उन्होंने अत्यंत सजगतापूर्वक 'अंधेर नगरी' नाटक की रचना की है। सजग और युगचेता नाटककार भारतेन्दु ने नाटकीय सूझ–बूझ और उत्प्रेरक कल्पना–शक्ति का प्रयोग करते हुए जन प्रचलित कथा को तत्कालीन समय की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला है। 'अंधेर नगरी' को भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने प्रहसन कहा है। प्रस्तुत इकाई में हम 'अंधेर नगरी' नाटक के शिल्प का अध्ययन करने जा रहे हैं।

4.2 कथावस्तु

कथावस्तु नाटक का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण और आधारभूत तत्व है। 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु का आधार भारतीय समाज में प्रचलित एक लोक–कथा है। भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी' नाटक में लोक प्रचलित कथा के साथ अपनी नाटकीय सूझ–बूझ से काल्पनिक प्रसंगों का संयोजन करते हुए अपने समय के आतंककारी अंग्रेजी प्रशासन और व्यवस्था की क्रूरता को सामने लाने का प्रयास किया है। मात्र छह दृश्यों में विभाजित 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु और इसकी विशेषताओं का विस्तृत परिचय आप इकाई–3 के अंतर्गत पढ़ चुके हैं। अतः इस इकाई में प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु का विस्तृत परिचय नहीं दिया जा रहा है।

4.3 पात्र

पात्र नाटक के महत्वपूर्ण अंग होते हैं। पात्रों के माध्यम से ही नाटककार अपने मंतव्य को पाठक/दर्शक तक पहुँचाता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'नाटक' नामक निबंध में नाटक के चरित्रों को जीवन के अधिकाधिक निकट, विश्वसनीय और प्रभावशाली बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों और आचार–विचार वाले मनुष्यों के व्यवहार का सूक्ष्म अवलोकन करने की बात नाट्य–रचनाकारों के लिए कही है–"... नाटकरचयिता को सूक्ष्मरूप से ओतप्रोत भाव में मनुष्य प्रकृति की आलोचना करनी चाहिए। मानवप्रकृति की समालोचना करनी हो तो नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करैं। तथा नाना प्रकार के समाज के ग्रन्थ अध्ययन करें, वरंच समय में अश्वरक्षक, गोरक्षक, दास, दासी, ग्रामीण, दस्यु प्रभृति नीच प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करैं। यह न करने से मानवप्रकृति समालोचित नहीं होती। मनुष्य लोगों की मानसिक वृत्ति परस्पर जिस प्रकार अदृश्य है उन लोगों के हृदयस्थभाव भी उसी रूप अप्रत्यक्ष हैं। केवल बुद्धि वृत्ति की परिचालना द्वारा तथा जगत के कतिपय बाह्य कार्य पर सूक्ष्म दृष्टि रखकर उस के अनुशीलन में प्रवृत्त होना होता है।" स्पष्ट है कि भारतेन्दु का मंतव्य नाटक के पात्रों को सहज–स्वाभाविक और जीवंत रखना है। नाटक में दिखाए गए पात्र जीवन और जगत से सहज रूप में जुड़ें हों, नाटक के विभिन्न घटना–प्रसंगों में उनका आचरण और व्यवहार दर्शक के लिए सहज कल्पनीय हो। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने स्वरचित नाटकों में उपर्युक्त बिन्दुओं का विशेष ध्यान रखते हुए पात्रों के माध्यम से युगानुकूल उद्देश्य की अभिव्यंजना की है। उनके नाटकों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि वे पात्र–संरचना में प्रतीकात्मकता का प्रयोग भी करते हैं। 'अंधेर नगरी' नाटक की पात्र–परिकल्पना भी भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने सुनियोजित, सोद्देश्यपूर्ण और युक्तियुक्त ढंग से की है। इस नाटक के सभी पात्र निश्चित उद्देश्य को ध्यान में रखकर परिकल्पित किए गए हैं, इसीलिए ये पात्र प्रतीक पात्र अधिक हैं। 'अंधेर नगरी' में पात्रों की संख्या काफी है। बाजार और राजसभा वाले दृश्य के कारण भारतेन्दु को पात्रों की अधिक संख्या परिकल्पित करनी पड़ी है, जो नाटक के कथ्य के अनुरूप सटीक है और खटकती भी नहीं है। महंत, गोबर्धनदास, राजा आदि इस नाटक के मुख्य पात्र कहे जा सकते हैं जिनकी चारित्रिक विशेषताओं और नाटकीय सन्दर्भ में उनके महत्त्व को हम यहाँ विश्लेषित करेंगे।

4.3.1 महंत

महंत 'अंधेर नगरी' नाटक का महत्वपूर्ण पात्र है। नाटक के प्रथम, द्वितीय और अंतिम दृश्य में महंत की उपस्थिति एक प्रभावशाली चिन्तक के रूप में दिखलाई पड़ती है।

गुरु के रूप में

'अंधेर नगरी' में महंत गुरु के रूप में चित्रित हैं, एक ऐसे गुरु जो अपने शिष्य के भले–बुरे का ध्यान रखते हुए उसे लोभी और संकुचित मनोवृत्ति से ऊपर उठाने का प्रयास करते हैं –

"लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।

लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान।।"

अंधेर नगरी की चकाचौंध से प्रभावित अपने शिष्य गोबर्धनदास को वे कई दृष्टान्तों के माध्यम से समझाने का भरपूर प्रयास करते हैं–

"सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।

ऐसे देस कुदेस में, कबहूँ न कीजै बास।।

कोकिल बायस एक सम, पण्डित मूरख एक।।

इन्द्रायन दाड़िम विषय, जहाँ न नेकु विवेक।।

बसिए ऐसे देस नहिं, कनक वृष्टि जो होय।।

रही तो दुःख पाइये, प्रान दीजिए रोय।।

दूरदर्शी और विवेकी दृष्टि से सम्पन्न

महंत भारत की उस प्रज्ञा और मेधा शक्ति का प्रतीक है जो विकट परिस्थितियों के भीतर भी सुचिंतित समाधान खोज निकालती है। महंत द्वारा अधिक लोभ न करने की सलाह को न मानने वाले और अंधेर नगरी में रहने का निर्णय करने वाले निर्दोष गोबर्धनदास के मोटापे के कारण राजा के प्यादे उसको फाँसी देने के लिए पकड़ कर ले जाते हैं, तब गोबर्धनदास को अपने गुरु जी की सीख और उसके मूल्य का अहसास होता है।

भारतीय संस्कृति के महत् मूल्यों का प्रतिनिधि

महंत का चरित्र किसी भी प्रकार के लालच या आकर्षित करने वाली स्थिति में पड़कर अपने सिद्धांतों और जीवन मूल्यों से समझौता न करने का पाठ सिखाता है। महंत स्थितप्रज्ञ हैं– शिष्य गोबर्धनदास द्वारा सीख न मानने पर भी महंत उससे क्षुब्ध नहीं होते बल्कि आपद समय में स्मरण करने की बात कहकर अपने गुरु–कर्तव्य का निर्वाह करते हैं और संकट के समय में चरितार्थ भी करते हैं।

व्यावहारिक सूझ–बूझ से सम्पन्न

सिद्धांतों के साथ ही महंत का चरित्र व्यावहारिक सूझ–बूझ से भी संपन्न दिखाया गया है। सादा जीवन और उच्च विचार रखने वाले भारतीय चिन्तक ही अपनी कूटनीति से ब्रिटिश सरकार की अंधेर नगरी के कुशासन से छुटकारा दिलवा सकते हैं– यह बात भारतेन्दु ने बड़ी सहजता से इस नाटक में संप्रेषित कर दी है। नाटक के अंत में महंत कहते हैं–

"जहाँ न धर्म्म न बुद्धि नाह, नीति न सुजन समाज।

ते ऐसहि आपुहि नसे, जैसे चौपटराज।।"

'अंधेर नगरी' नाटक की प्रासंगिकता की दृष्टि से महंत का चरित्र आज के उन तथाकथित गुरुओं की वास्तविकता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है जो अपने चारित्रिक व्याभिचार से भोली–भाली जनता का शोषण करते हैं और उसे गुमराह भी करते हैं।

4.3.2 गोबर्धनदास

गोबर्धनदास भी अंधेर नगरी का महत्वपूर्ण चरित्र है। प्रस्तुत नाटक के एक दृश्य को छोड़कर वह अन्य सभी में उपस्थित है। इस चरित्र में कई उतार–चढ़ाव भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने दिखलाये हैं।

लालची और लोभी

लालची और लोभी प्रवृति के कारण गोबर्धनदास सामान्य मनुष्य का प्रतीक है जो नए–नए स्वादों से केवल अपना पेट भरने की फिराक में ही लगा रहता है। इस रूप में यह चरित्र भारत की रुढ़िवादी जनता का प्रतीक है जो अंधविश्वासों में जकड़ी हुई है और जो अपने छोटे–छोटे स्वार्थ साधने के लिए अपनी ही मूर्खता, आलस्य और निकम्मेपन के कारण शोषक सत्ता के चंगुल में फंसकर अपना दोहन करवा रही है।

संकीर्ण मनोवृत्ति

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने इस चरित्र की परिकल्पना में पाश्चात्य सभ्यता के 'केवल अपने ही बारे में सोचने' की प्रवृत्ति को भी रूपायित किया है। इस मनोवृत्ति के चलते वह ऐसी व्यवस्था की खामियों के संदर्भ में सोच ही नहीं पाता। टके सेर में सब कुछ बेचने वाले अंधेर नगरी के बाजार की चकाचौंध से वह अत्यधिक आकर्षित हो जाता है –

"गुरु जी, ऐसा तो संसार भर में कोई देस नहीं है। दो पैसा पास रहने ही से मजे में पेट भरता है। मैं तो इस नगर को छोड़कर नहीं जाऊँगा। और जगह दिन–भर मांगो तो भी पेट नहीं भरता। वरंच बाजे बाजे दिन उपास करना पड़ता है। सो मैं तो यहीं रहूँगा।"

आत्म–केन्द्रित

गोबर्धनदास केवल अपने ही बारे में सोचने की मानसिकता से इतना अधिक ग्रस्त है कि गुरु जी द्वारा दी गयी चेतावनी का भी कोई असर नहीं होता। आवश्यकता से अधिक पकवान खाने के लालच से वह निकल नहीं पाता और अंधेर नगरी के विवेकशून्य चलन का ज्ञान होने के बावजूद वहीं रहता है –

"गुरु जी हमको नाहक यहाँ रहने को मन किया था। माना कि देस बहुत बुरा है पर अपना क्या? अपने किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज मिठाई चाभना, मजे में आनंद से राम भजन करना।"

पश्चाताप के माध्यम से सोच में परिवर्तन

नाटक के अंत में गोबर्धनदास द्वारा विपत्ति के समय में अपनी भूल पर पश्चाताप व्यक्त करने और गुरु जी को याद करने के क्षणों में भारतेन्दु जी ने भारतीय संस्कृति के अपरिग्रह और सजग–सचेत रहने के गुणों को व्यक्त कर दिया है।

4.3.3 चौपट्ट राजा

अंधी न्याय–व्यवस्था का प्रतीक

'अंधेर नगरी' नाटक का चौपट्ट राजा उस अंधी हो चुकी न्याय व्यवस्था का प्रतीक है जो तत्कालीन भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीयों पर थोपी जा रही थी। इस व्यवस्था में असहाय और विपन्न भारतीय जनता के प्रति किसी भी प्रकार की सहानुभूति का भाव नहीं था। नाटक के राजा को केवल लंबित न्याय–प्रक्रिया दिखानी भर है, फरियादी को न्याय मिले, चाहे न मिले – इससे राजा को कोई वास्ता नहीं है।

निम्न स्तर का आचरण

राजा हर दृष्टि से चौपट्ट ही है –हमेशा मदिरा के नशे में चूर रहने वाला, उसमें न किसी बात को पूरा सुनने का धैर्य है और न ही अपनी बात को सम्पूर्णता में संप्रेषित करने का बोध। उसके द्वारा प्रयुक्त की गई भाषा और उसका आचरण हर दृष्टि से राजा के पद की मर्यादा और गरिमा के विपरीत हैं–

"सेवक – (चिल्लाकर) पान खाइए महाराज।

राजा – (पीनक में चौंक के घबड़ाकर उठता है) क्या कहा? सुपनखा आई ए महाराज। (भागता है)।

मंत्री – (राजा का हाथ पकड़कर) नहीं–नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज।

राजा – दुष्ट लुच्चा पाजी! नाहक हमको डरा दिया। मंत्री, इसको सौ कौड़े लगैं।

मंत्री – महाराज! इसका क्या दोष है? न तमोली पान लगाकर देता, न यह पुकारता।

राजा – अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगैं।

मंत्री – पर महाराज, आप पान खाइए सुनकर थोड़े ही डरे हैं, आप तो सुपनखा के नाम से डरे हैं, सुपनखा की सजा हो।

राजा – (घबड़ाकर) फिर वही नाम? मंत्री, तुम बड़े खराब आदमी हौ। हम रानी से कह देंगे कि मंत्री बेर–बेर तुमको सौत बुलाने चाहता है। नौकर! नौकर! शराब।"

विवेकहीन और अन्धविश्वासी

विवेकसम्पन्नता का चौपट्ट राजा से दूर–दूर तक कोई संबंध दिखाई नहीं पड़ता। वह अन्धविश्वासी है, इसीलिए महंत द्वारा अपने शिष्य को बचाने के लिए चतुराईपूर्वक कही गयी बात – 'स्वर्ग में जाने की सायत' के चंगुल में फँसकर अपने प्राणों से हाथ धो बैठता है। भारतेंदु ने महंत की सूझ–बूझ से चौपट्ट राजा का अंत करवाने का संकेत देकर यह स्पष्ट कर दिया है कि ऐसे चौपट्ट राजाओं के कारण ही भारत में अंधेरगर्दी मची है और उसका समाधान सुचिंतित कूटनीति के द्वारा ही हो सकता है।

4.3.4 नारायणदास

महंत का दूसरा चेला नारायणदास, गोबर्धनदास के विपरीत स्वभाव वाला है। अंधेर नगरी में वह भी भिक्षाटन के लिए जाता है किन्तु बाजार की चकाचौंध से प्रभावित नहीं होता। उसे भारतीय मूल्यों के प्रतीक अपने गुरु की शिक्षा पर पूर्ण विश्वास है, इसलिए गुरु के सानिध्य में उसका जीवन निश्चिन्त और सुरक्षित रह पाता है। धीर, गंभीर प्रवृत्ति वाला नारायणदास नाटक में उन भारतीय युवकों का प्रतीक बनकर उभरता है जो न तो अंग्रेजी शासन के प्रलोभन का शिकार ही हुए, न ही उस शासन की कठोरता के आगे झुके और न ही अपने लक्ष्य से भटके।

4.3.5 अन्य पात्र

नाटक के अन्य पात्र जैसे राजा के मंत्री, अमले और प्यादे ब्रिटिश शासन–व्यवस्था में कार्यरत उन भारतीय नागरिकों के प्रतीक हैं जो अंग्रेजी शासन की क्रूर और अमानवीय नीतियों की वास्तविकता से परिचित होने के बावजूद उसी शासन के पोषण का काम करते हैं। ये सभी अंधी व्यवस्था के अन्धेपन को बरकरार रखने में पूरा सहयोग देते हैं। मंत्री को एक चतुर–चालाक नौकरशाह के रूप में भी देखा जा सकता है। न्याय–प्रक्रिया के दौरान जब सभी अपना दोष दूसरे पर मढ़ते जाते हैं और अंततः दोष कोतवाल की सवारी पर आ टिकता है – उस समय मंत्री की चतुरता देखने को मिलती है–

"राजा – अच्छा, इसको निकालो, कोतवाल को अभी सरबमुहर पकड़ लाओ।

(गड़ेरिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा जाता है)

क्यौं बे कोतवाल! तैंने सवारी ऐसी धूम से क्यौं निकाली कि गड़ेरिये ने घबड़ा कर बड़ी भेड़ बेचा, जिससे बकरी गिरकर कल्लू बनियां दब गया?

कोतवाल – महाराज महाराज! मैंने तो कोई कसूर नहीं किया, मैं तो शहर के इंतजाम के वास्ते जाता था।

मंत्री – (आप ही आप) यह तो बड़ा गजब हुआ, ऐसा न हो कि बेवकूफ इस बात पर सारे नगर को फूँक दे या फाँसी दे।

(कोतवाल से) यह नहीं, तुम ने ऐसे धूम से सवारी क्यौं निकाली?

राजा – हाँ, हाँ, यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यौं निकाली कि उसकी बकरी दबी?

कोतवाल – महाराज महाराज–

राजा – कुछ नहीं, महाराज महाराज ले जाओ, कोतवाल को अभी फाँसी दो। दरबार बरखास्त।

(लोग एक तरफ से कोतवाल को पकड़ कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मंत्री को पकड़कर राजा जाते हैं)"

इस प्रकरण में मंत्री अपनी चालाकी से शहर का अनर्थ होने से तो बचा लेता है किन्तु निर्दोष कोतवाल को फाँसी की सजा दिलवा देता है। इस रूप में मंत्री उन नौकरशाहों का प्रतीक लगता है जो राजसेवकों को अपनी इच्छानुसार चलाने का दम रखते हैं।

बाजार वाले दृश्य में आए सभी पात्र बाजारवादी मनोवृत्ति के प्रतीक हैं जिनका लक्ष्य येन–केन–प्रकारेण अपना माल बेचना है। इन पात्रों के चारित्रिक विकास की नाटक में कोई गुंजाइश भी नहीं है। ये सभी पात्र, चाहे इनके नाम और बेचा जाने वाला माल अलग हैं– सभी बाजार के ही अंग हैं। इस रूप में बाजार अपने आप में एक पात्र है। हालाँकि कई पात्रों के संवादों में भारतेन्दु ने व्यंजना भरी है जो अंग्रेजी शासन की विद्रूपताओं की ओर इशारा करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'अंधेर नगरी' नाटक के सभी पात्रों की परिकल्पना भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने विशिष्ट उद्देश्यों को व्यक्त करने के लिए की है। ये सभी पात्र स्वतंत्र रूप से विकसित न होकर नाटक के व्यंग्य–विधान का पोषण करने वाले हैं। साथ ही, सभी पात्र तत्कालीन समय के साथ वर्तमान समय की भी व्यवस्थागत और मानवीय प्रवृत्तियों के प्रतीक बनकर उभरे हैं।

बोध प्रश्न 1

(क) उपयुक्त विकल्प का चयन कीजिए:

1. 'अंधेर नगरी' नाटक में बाजार से प्रभावित होने वाले पात्र का क्या नाम है?

   क) महंत   ख) नारायणदास

   ग) गोबर्धनदास   घ) राजा

2. किसके स्थान पर फाँसी देने के लिए प्यादे गोबर्धनदास को पकड़कर ले जाते हैं?

   क) कोतवाल   ख) मंत्री

   ग) भिश्ती   घ) फरियादी

(ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. महंत गोबर्धनदास को .... दिशा में तथा नारायणदास को .... दिशा में भिक्षा माँगने के लिए भेजते हैं।
2. दीवार के गिर जाने से, उसके नीचे ..... के दबकर मरने के कारण फरियादी राजसभा में न्याय की प्रार्थना लेकर आता है।

4.4 संवाद और भाषा

नाटक की प्रवृत्ति संवादात्मक होती है। पात्रों द्वारा बोले गये संवादों के माध्यम से ही नाटककार अपना मंतव्य दर्शक/पाठक तक पहुँचाने का प्रयास करता है। इसी कारण

नाटक में संवाद और उन संवादों में प्रयुक्त भाषा का महत्त्व अत्यधिक हो जाता है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र नाट्य–भाषा की प्रभावकारिता को भली–भाँति समझते थे। इसीलिए उनका मानना था कि नाटक की भाषा में कम शब्दों में अधिक कहने का गुण होना चाहिए और वह नाटक की प्रकृति, स्वरूप, वातावरण और उद्देश्य के अनुरूप होनी चाहिए –"ग्रन्थकर्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्रगण की बातचीत रचना करै कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो वैसी ही बात भी विरचित हो। नाटक में वाचाल पात्र की मितभाषिता, मितभाषी की वाचालता, मूर्ख की वाक्पटुता और पण्डित का मौनीभाव विडम्बनामात्र है। पात्र की बात सुनकर उसके स्वभाव का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग है।" भारतेन्दु हरिश्चंद्र के ये विचार उनके नाटकों पर भी चरितार्थ होते हैं। 'अंधेर नगरी' उनका सर्वाधिक लोकप्रिय नाटक है, जिसका एक कारण इस नाटक की भाषा है। भाषा के युक्तियुक्त इस्तेमाल के कारण ही प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य दर्शक/पाठक तक सम्पूर्णता में संप्रेषित हो सका है।

लोक–प्रचलित कथा से प्रेरित 'अंधेर नगरी' नाटक की भाषा में लोकभाषा के समस्त तत्व देखने को मिलते हैं। सामान्य लोक–व्यवहार की भाषा में लिखे गए इस नाटक की भाषा का अर्थ–विस्तार काफी गहरा और व्यापक है। गद्य और पद्य के समुचित तालमेल से नाटक की लोकधर्मिता और अधिक मुखरित हुई है–

"महंत – बच्चा, बहुत लोभ मत करणा। देखना, हाँ –

लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।

लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान।।"

प्रस्तुत नाटक में भारतेन्दु जी का **शब्द चयन** उनकी नाटकीय सूझ–बूझ का परिचायक है। खड़ी बोली हिन्दी के साथ ब्रजभाषा के शब्द, तत्सम, अरबी–फारसी और एकाध अंग्रेजी शब्दों के तालमेल से 'अंधेर नगरी' नाटक की भाषा की प्रभावोत्पादकता बढ़ गयी है। 'साइत','आछत', नाहक, वास्ते, 'न्याव', 'तमोली', 'लुच्चा', 'पचलोना','मसखरी' 'सेर', 'छन', 'बणिये, कितणे, 'बोदा', 'जादे' आदि शब्दों के साथ कुछ संवादों में लोक भाषा की ही वाक्य–संरचना ने इस नाटक की भाषा को चुस्त बनाया है – 'कुछ भिच्छा–उच्छा मिलै तो ठाकुर जी को भोग लगै', 'बाजे–बाजे दिन उपास करना पड़ता है', 'रोज मिठाई चाभना' आदि कथ्य के अनुरूप नाट्य–भाषा के सटीक उदाहरण हैं। प्रस्तुत नाटक की भाषा में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने **लोकोक्तियों और लोक–प्रचलित मुहावरों** को भी सुनियोजित ढंग से अनुस्यूत किया है ''खाय सो होठ चाटैं, न खाय सो जीभ काटै', 'जो खाय सो भी पछताय जो न खाय सो भी पछताय', 'जैसे काजी वैसे पाजी', जैसी लोकोक्तियों के साथ 'हाथ मलते रह जाना', 'दांत खट्टा करना', 'रुपया खराब करना', 'पेट में बात नहीं पचना', 'रूप–जाल में फँसना', 'अनमोल माल लुट जाना', 'सिर चढ़कर बोलना' आदि मुहावरों के प्रयोग ने भाषा में लाक्षणिकता का गुण भरा है। इसके साथ ही, बैकुंठ, समर्थ, नारायण, नित्य, स्मरण, प्रणाम, दुष्ट, पितामह, प्रतिष्ठा जैसे तत्सम शब्दों और बेफाइदा, बेशक, माजरा, फकीर, बेकसूर, गरीब, अर्ज, हुकुम, हुक्मी बंदे, गजब, इन्तजाम, आशना, हजम, खयाल जैसे अरबी–फारसी शब्दों के उपयुक्त प्रयोग से प्रस्तुत नाटक के संवाद प्रभावशाली बन पड़े हैं। शब्दों की पुनरावृति –भिच्छा–उच्छा, 'बाजे–बाजे' – द्वारा भी इस नाटक की भाषा में जीवन्तता, नाटकीयता, प्रवाहशीलता की सृष्टि हुई है। यह सत्य है कि केवल शब्द–चयन से बात नहीं बनती, उन शब्दों का सटीक प्रयोग ही नाटक की संप्रेषणीयता को बढ़ाता है। इस दृष्टि से 'अंधेर नगरी' एक सफल नाटक है। उपयुक्त शब्द–चयन से बनी विशिष्ट भाषा ने 'अंधेर नगरी' के संवाद चुस्त, चुटीले और जीवंत बना दिये हैं।

'अंधेर नगरी' के संवादों में **लयात्मकता** का गुण देखने को मिलता है। विशेष रूप से, बाजार वाले दृश्य में हर पात्र के पद्यात्मक संवाद में टके सेर की तुकान्त ने नाटकीय

भाषा को विशिष्ट लय प्रदान की है। समर्पण के अलावा, गुरु चेलों का राम नाम भजने वाले गीत में भी यही गुण है।

भाषा–प्रयोग की दृष्टि से बाजार का दृश्य बहुत मारक बन पड़ा है। इस दृश्य में एक ओर **ठेठ बाजारू भाषा** का प्रयोग भारतेन्दु ने किया है। कबाबवाला, मछलीवाली, नारंगीवाली इत्यादि द्वारा प्रयुक्त लच्छेदार भाषा किसी भी बाजार के दृश्य को जीवंत कर देती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यापारियों की भाषा में व्यंजना का गुण भरते हुए भारतेन्दु ने बाजारवादी विज्ञापनी संस्कृति से उपजी अतिभौतिक मानसिकता को उजागर करने का सफल प्रयास किया है। उदाहरण के लिए देखिए:

"जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जायं और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था कर दें। टके के वास्ते झूठ को सच करैं। टके के वास्ते धर्म्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचौं, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुन्य मानैं, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावैं। वेद धर्म्म कुल मरजादा सचाई बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल ले टके सेर।"

प्रस्तुत व्यंजनात्मक संवाद में ब्राह्मण द्वारा यह कहना कि 'टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था कर दें'– केवल उसकी नहीं बल्कि समूची व्यवस्था के भ्रष्टाचार की पोल खोल देता है।

सब्जी बेचने वाली जब सब्जियाँ बेचते बेचते 'जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर' की हाँक लगती है तो पाठक/दर्शक सहसा सचेत होकर उसकी हाँक के गूढ़ार्थ समझने की कोशिश करता है। इसी प्रकार मुगल सूखे मेवे बेचने की हाँक लगाते–लगाते तत्कालीन राजनीति परिदृश्य और भारतीयों की मानसिकता की ओर संकेत करने लगता है – "आमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंगरेज का भी दाँत कट्टा ओ गेया। नाहक को रुपया खराब किया। हिन्दोस्तान का आदमी लक लक हमारे यहाँ का आदमी बुंबक–बुंबक लो सब मेवा टके सेर।" इसी प्रकार पाचकवाले के लयात्मक संवाद में हिन्दुस्तानी समाज की मनोवृत्ति के साथ क्रूर ब्रिटिश व्यवस्था के विभिन्न अंगों पर भारतेन्दु ने तीखा कटाक्ष किया है –

"हिंदू चूरन इसका नाम । विलायत पूरण इस का काम।।
चूरन जब से हिंद में आया । इसका धन बल सभी घटाया।।

× × ×

चूरन खाते लाला लोग । जिन को अकिल अजीरण रोग ।।
चूरन खावैं एडिटर जात । जिन के पेट पचौ नहिं बात ।।
चूरन साहेब लोग जो खाता । सारा हिंद हजम कर जाता ।।
चूरन पूलिसवाले खाते । सब कानून हजम कर जाते ।।
ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेर ।।"

प्रस्तुत नाटक के संवादों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। महंत साधु हैं। वे भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों के प्रतीक रूप में नाटक में प्रस्तुत हुए हैं। उनके संवादों की भाषा भी उसी के अनुरूप है। राजा के संवादों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने एब्सर्ड शैली का प्रयोग किया है। भ्रष्ट व्यवस्था की विद्रूपता को उभारने के लिए यह जरूरी भी था। नशे में चूर राजा द्वारा अटपटे शब्दों का प्रयोग हास्यास्पद होने के साथ ही व्यंजनापूर्ण भी है। इसी प्रकार, प्यादों की भाषा में अंधी व्यवस्था के गैर–कानूनों को किसी–न–किसी प्रकार से लागू करवाने का मद झलकता है।

प्रस्तुत नाटक में एकमात्र स्वगत कथन या एकालाप का विशिष्ट प्रयोग भारतेन्दु ने किया है, जिसमें पाँचवें दृश्य के आरम्भ में गोबर्धनदास द्वारा राग काफी में गाया गया गीत और संक्षिप्त गद्यात्मक अंश सम्मिलित है–

"अंधेरनगरी अनबूझ राजा । टका सेर भाजी टका सेर खाजा ।।
नीच ऊँच सब एकहि ऐसे । जैसे भडुए पंडित तैसे ।।
कुल मरजाद न मान बड़ाई । सबै एक से लोग लुगाई ।।

× × ×

साँचे मारे मारे डोलैं । छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं ।।
प्रगट सभ्य अन्तर छलधारी। सोई राजसभा बलभारी ।।
साँच कहैं ते पनही खावैं। झूठे बहुविधि पदवी पावैं ।।

× × ×

भीतर स्वाहा बाहर सादे । राज करहिं अमले अरु प्यादे ।।
अन्धाधुन्ध मच्यौ सब देसा । मानहुँ राजा रहत बिदेसा ।।
गो द्विज श्रुति आदर नहिं होई । मानहुं नृपति बिधर्म्मी कोई ।।
ऊँच नीच सब एकहि सारा । मानहुँ ब्रह्म ज्ञान बिस्तारा ।।
अंधेर नगरी अनबूझ राजा । टका सेर भाजी टका सेर खाजा ।।"

गोबर्धनदास के उपर्युक्त संवाद में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अंधेर नगरी के साथ तत्कालीन ब्रिटिश शासन के आचार–व्यवहार, कुनीतियों और व्यवस्थागत भ्रष्टाचार का सटीक चित्र खींचा है।

प्रस्तुत नाटक में संवादों का आकार सामान्यतः छोटा ही है। छोटे संवाद अक्सर चुस्त होते हैं जिनके माध्यम से नाटक का क्रिया–व्यापार तेजी से घटित होता है और पाठक/दर्शक नाटक से जुड़ा रहता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

गोबर्धनदास – क्यों भाई बणिये, आटा कितणे सेर?

बनिया – टके सेर।

गोबर्धनदास –औ चावल ?

बनिया –टके सेर।

गोबर्धनदास – औ चीनी ?

बनिया – टके सेर।

गोबर्धनदास –और घी ?

बनिया –टके सेर।

गोबर्धनदास –सब टके सेर। शच मुच।

बनिया –हाँ महाराज, क्या झूठ बोलूँगा ?

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक की संवाद–रचना अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ी है। वस्तुतः भारतेन्दु ने बड़ी चतुराई से ऊपर से साधारण और मनोरंजक दिखने वाली बाजार की भाषा को गहरे अर्थों से भरते हुए 'अंधेर नगरी' नाटक के संवादों को प्रभावशाली बना दिया है।

4.5 देश–काल और वातावरण

देश–काल–वातावरण किसी भी नाटक में पृष्ठभूमि का कार्य करते हुए नाटकगत घटनाओं को विश्वसनीयता प्रदान करते हैं। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने देश–काल के विषय में लिखा है कि "अति दीर्घकाल संपाद्य घटना सकल नाटक में अल्पकाल के मध्य में वर्णन करना यद्यपि दूषणावह नहीं है तथापि नाटक में देशगत और कालगत वैलक्षण्य वर्णन करना अतिशय अनुचित है।" –यहाँ भारतेन्दु स्पष्ट संकेत कर रहे हैं कि नाटक में लम्बी अवधि और अलग–अलग काल की घटनाओं का समावेश हो तो सकता है लेकिन नाट्य–व्यापार की दृष्टि से वह अधिक संगत नहीं होता। वस्तुतः नाटक एक सीमित और निश्चित अवधि में प्रदर्शित होने वाली विधा है, उसकी सहज संप्रेषणीयता के लिए अक्सर नाटककार दीर्घ या लंबी अवधि के घटना–प्रसंगों से बचते हैं। इसीलिए जो घटनाएँ या प्रसंग नाटक में दिखाए जाते हैं उनमें देश–काल और वातावरण की दृष्टि से पारस्परिक संतुलन होना सफल नाट्य–प्रस्तुति के लिए आवश्यक होता है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने जिस समय 'अंधेर नगरी' नाटक की रचना की, वह समय ब्रिटिश शासन की क्रूरता का काल था। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की विफलता के बाद ब्रिटिश सरकार ईस्ट इंडिया कंपनी से शासन की बागडोर अपने हाथों में ले चुकी थी। अंग्रेजी सरकार की व्यावसायिक और साम्राज्यवादी नीतियों का आतंक बढ़ता जा रहा था, जिसके विरोध में उस समय कोई भी आवाज नहीं उठा पा रहा था। सामान्य जनता अत्यंत निराश और डरी हुई थी। 1857 के बाद ब्रिटिश सरकार नए–नए कठोर कानून बनाने और लागू करने में लगी थी जिनके आगे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय बौद्धिक वर्ग तक चुप रहने के लिए विवश था। सही बात रखने वाले लोगों को राष्ट्र–दोह का आरोपी बना दिया जाता था। 'वर्नाक्युलर एक्ट' भी लागू कर दिया गया था जिसकी आड़ में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ और जनता के हित की बात लिखने और छापने वाले पत्र–पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रसार पर तुरंत रोक लगा दी जाती थी। नाट्य–प्रदर्शन के लिए कलेक्टर की मंजूरी को अनिवार्य कर दिया गया था। ब्रिटिश हितों को बढ़ावा देने के लिए भारत के पारंपरिक उद्योग–धंधों को ठप्प किया जा रहा था, जिनसे जनता गरीब होती जा रही थी। उसकी सुनवाई कहीं नहीं हो रही थी। प्रशासन और न्याय व्यवस्था में भ्रष्टाचार निरंतर बढ़ता जा रहा था। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति को अवैज्ञानिक और अव्यावहारिक घोषित किया जा रहा था। भारतीय जनता में एक वर्ग ऐसा भी था जो था तो भारतीय किन्तु अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के बाद उसने पाश्चात्य रहन–सहन और संस्कृति को पूर्ण रूप से अपना लिया था– यह वर्ग आम भारतीय से स्वयं को विशिष्ट समझता था और ब्रिटिश हितों का पोषण करता था– तत्कालीन समय में कई ऐसे राजघराने थे जो अत्याचारी, दंभी और भोग–विलासी थे। प्रजा के हित से उनका कोई लेना–देना नहीं था। इन विपरीत परिस्थितियों के बीच समाज–सुधार के कई आन्दोलन चल रहे थे, जो अनेक प्रकार की रूढ़ियों से ग्रस्त भारतीय जनता को जागृत और संस्कारित करने के प्रयास में जुटे थे। इन सारी परिस्थितियों के आलोक में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने लोक–कथा पर आधारित प्रहसन के रूप में 'अंधेर नगरी' के माध्यम से अपने समय की विद्रूपताओं को उजागर करने का साहसिक प्रयास किया।

'अंधेर नगरी' लोक–कथा से प्रेरित होकर रचा गया नाटक है। ध्यातव्य है कि लोक–कथाओं में वर्णित राजाओं–महाराजाओं की कहानियाँ किसी भी देश और काल से सम्बन्धित हो सकती हैं। यह नाटककार की कुशलता पर निर्भर करता है कि वह अपने समय की परिस्थितियों को लोक–कथा में वर्णित स्थितियों से कैसे जोड़ता है। इस दृष्टि से देखें तो 'अंधेर नगरी' नाटक में वर्णित देश–काल इतने विश्वसनीय हैं कि किसी भी देश और किसी भी युग से सम्बन्धित हो सकते हैं। प्रस्तुत नाटक की सार्वकालिकता के सन्दर्भ में गिरीश रस्तोगी लिखती हैं– "'अंधेर नगरी' समसामयिक

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

संदर्भों का जीवन्त नाटक है। कुछ रचनायें अपनी प्रासंगिकता हमेशा सिद्ध करती रहती हैं और कभी भी पुरानी या बासी नहीं पड़तीं। बदलते हुए परिवेश, बदलती परिस्थितियों में उनके नये–नये अर्थ प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। इस अर्थ में 'अंधेर नगरी' का सम्बन्ध न एक देश से है, न ब्रिटिश शासन मात्र से, न एक काल सीमा से। चाहे स्वतंत्र भारत के बदलते शासन की परम्परा का लंबा इतिहास हो, चाहे विश्व के किसी भी कोने का, 'अंधेर नगरी' हर काल, हर स्थान का यथार्थ है।" विवेकशून्य प्रशासक और कुव्यवस्था के सन्दर्भ में 'अंधेर नगरी' इतिहास, वर्तमान और भविष्य के भी किसी भी दौर पर सटीक बैठ सकता है।

देशकालगत विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए भारतेन्दु ने बड़ी सूक्ष्मता से कुछ बातों को नाटक में शामिल किया है। जैसे – बाजार वाले दृश्य में घासीराम चनावाला अपने चनों की खासियत बताते हुए कहता है –

चना खावै तौकी मैना । बोलै अच्छा बना चबैना ।।

चना खायं गफूरन मुन्ना । बोलै और नहीं कुछ सुन्ना ।

उपर्युक्त पंक्तियों में भारतेन्दु ने तौकी, मैना, गफूरन आदि का जिक्र किया है, जिनके विषय में कहा जाता है कि ये तत्कालीन बनारस में प्रसिद्ध थीं। नाटक में इनके उल्लेख से एक ओर रोचकता की सृष्टि हुई है। इसी प्रकार चूरन वाले के संवाद में ब्रिटिशराज में प्रचलित रिश्वतखोरी, महाजनों द्वारा की जाने वाली सूदखोरी, कानून लागू करने में पुलिस की विफलता, ब्रिटिश सरकार द्वारा ब्रिटेन का भरण–पोषण और भारत का शोषण करने वाली नीतियों के उल्लेख से भारतेन्दु ने तत्कालीन राजनीतिक–सामाजिक परिस्थितियों की झलक पेश की है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने वातावरण–निर्माण के लिए प्रस्तुत नाटक में राजसभा, बाजार, श्मशान, जंगल आदि के दृश्यों की परिकल्पना की है। राजसभा, बाजार और श्मशान वाले दृश्य वातावरण की दृष्टि से इतने प्रभावशाली बन पड़े हैं कि समूचे नाटक का आधार प्रतीत होते हैं। "अंधेर नगरी का वातावरण यथार्थ जीवन का ही प्रतिबिम्ब है। उसके बाजार में कबाबवाला, चने जोर गरमवाला, नारंगीवाला, हलवाई, कुंजड़िन, मेवा बेचने वाला पठान, चूरनवाला आदि–आदि उत्तर भारत के किसी शहर से मानो सीधे अंधेर नगरी चले आए हैं।" (भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, रामविलास शर्मा) बाजार के दृश्य के माध्यम से भारतेन्दु ने अपने युग की विकृत प्रवृत्तियों को प्रकट किया है। राजसभा का दृश्य हास्य–व्यंग्य के साथ कुशासन की विभिन्न परतों को खोलता चलता है जिनमें न्याय–प्रक्रिया की विडंबना को दर्शाया गया है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'अंधेर नगरी' में आये देश, काल और वातावरण सर्वव्यापी हैं और नाटक की प्रभावोत्पादकता बढ़ाने में पूरा योग देते हैं।

4.6 रंगमंचीयता

भारतेन्दु हरिश्चंद्र रंगमंच की प्रकृति से पूर्णतः परिचित नाटककार थे। वे स्वयं भी नाटकों में अभिनय किया करते थे। जैसाकि हमने पहले भी बताया कि कहा जाता है कि 'अंधेर नगरी' नाटक की रचना उन्होंने खेलने के लिए मात्र एक रात में कर दी थी। प्रहसन शैली में होने के बावजूद यह नाटक अपने रचना–काल से लेकर अब तक रंगकर्मियों को अपने कथ्य के प्रति आकर्षित करता रहा है। संक्षिप्त और चुस्त कथावस्तु के अनुरूप सीमित दृश्य–विधान, पात्रों एवं भाषा की जीवन्तता, दृश्य–बंध और रंग–सामग्री का सुविधानुसार प्रयोग इस नाटक की रंगमंचीयता को एक सरल लचीलापन प्रदान करते हैं जिससे रंगकर्मी अपनी दृष्टि के अनुरूप सुविधाजनक तरीके से प्रस्तुत कर सकते हैं। प्रस्तुत नाटक में भारतेन्दु ने अभिनय संबंधी, दृश्य–स्थान

संबंधी, पात्रों के प्रवेश–प्रस्थान, पटाक्षेप संबंधी छोटे–छोटे रंग–संकेत कोष्ठकों में दिये हैं, जैसे –प्रथम दृश्य की शुरूआत में 'महंत जी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं' और इसी दृश्य के अंत में 'गाते हुए सब जाते हैं' –यहाँ भारतेन्दु जी ने गाने का संकेत दिया है, जिसके लिए रंगकर्मी अपनी कल्पनाशीलता के अनुरूप किसी भी प्रकार के संगीत और गायन शैली को अपना सकते हैं। सभी दृश्यों के दृश्य–स्थल को भारतेन्दु ने एक–एक शब्द में ही संकेतित कर दिया है – पहले दृश्य से लेकर छठे दृश्य तक का स्थल क्रमशः बाह्य प्रांत, बाजार, जंगल, राजसभा, आरण्य और श्मशान है –इन दृश्य स्थलों का केवल नाम लिखकर छोड़ देने के पीछे भारतेन्दु का मंतव्य निश्चित रूप से नाट्य–दलों को उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप दृश्य–बंध जुटाने की छूट देना रहा होगा। पात्रों के अभिनय संकेत भी भारतेन्दु ने अधिक नहीं दिये हैं। पात्र–विशेष के चरित्र को उभारने के लिए उन्होंने कहीं–कहीं इस प्रकार के रंग–संकेत दिए हैं। जैसे गोबर्धनदास की लालची दृष्टि को उभारने के लिए उन्होंने कोष्ठक में लिखा है –''बाबा जी का चेला गोबर्धनदास आता है और सब बेचने वालों की आवाज सुन सुन कर खाने के आनंद में बड़ा प्रसन्न होता है'। इसी प्रकार चौपट्ट राजा के हास्यास्पद चरित्र को दर्शाने के लिए राजसभा वाले दृश्य में 'चिल्लाकर', 'घबड़ाकर', 'मुँह बनाकर पीता है' आदि अभिनय संबंधी संकेत कोष्ठकों में हैं। पात्रों के प्रवेश–प्रस्थान सम्बन्धी संकेत राजसभा वाले दृश्य में सर्वाधिक आए हैं। फरियादी की गुहार सुनकर उसको 'न्याव' दिलाने के लिए चौपट्ट राजा की न्याय–प्रक्रिया के दौरान एक–एक करके कल्लू बनिया, भिश्ती, कारीगर, चूने वाला, कस्साई, गड़ेरिया लाए जाते हैं –जिनके लिए भारतेन्दु ने कोष्ठकों में संकेत दिये हैं, जैसे 'कारीगर निकाला जाता है, चूनेवाला पकड़कर लाया जाता है', 'लोग भिश्ती को निकालते हैं और कस्साई को लाते हैं', 'लोग एक तरफ से कोतवाल को पकड़ कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मंत्री को पकड़कर राजा जाते हैं' आदि। ये सभी प्रकार के रंग–संकेत इस बात के सूचक हैं कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र 'अंधेर नगरी' नाटक को किसी विशिष्ट शैली में बद्ध नहीं करना चाहते थे। उन्होंने रंगकर्मियों की परिकल्पना को पर्याप्त अवसर प्रदान किया है।

'अंधेर नगरी' नाटक अपने रचना–समय से लेकर वर्तमान समय तक अनेक बार अनेक रंग–शैलियों में अपनी रंगमंचीय सार्थकता सिद्ध कर चुका है। कहा जाता है कि 'अंधेर नगरी' का सर्वप्रथम मंचन काशी के हिन्दू नेशनल थिएटर ने किया। इसके बाद प्रताप नारायण मिश्र के प्रयासों से सन् 1882 में इसकी प्रस्तुति कानपुर में हुई। हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'अंधेर नगरी' के सन् 1884 में बलिया में मंचित होने का उल्लेख किया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में 1978 में ब.व. कारंत ने यक्षगान शैली में इस नाटक का मंचन किया। गिरीश रस्तोगी ने अपनी संस्था 'रूपांतर' के अंतर्गत इसे नौटंकी शैली में प्रस्तुत किया। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के मुक्ताकाशी मंच पर कारंत के ही निर्देशन में 'अंधेर नगरी' के बाजार वाले दृश्य में सामान बेचने वाले पात्र अलग–अलग भाषाओं – मराठी, तमिल, बंगाली इत्यादि में अपना सामान बेचते हैं। इस दृश्य ने भारत की 'विभिन्नता में एकता' को विशिष्ट रंगत के साथ प्रस्तुत किया। इसके अलावा, 'अंधेर नगरी' सत्यव्रत सिन्हा, अलखनंदन, जावेद अख्तर, आलोक उत्पल जैसे देश–भर के विभिन्न निर्देशकों के निर्देशन में, अलग–अलग शैलियों में, हिन्दी के साथ ही भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं में खूब मंचित हुआ है। 'अंधेर नगरी' के संबंध में यह बात भी उल्लेखनीय है कि भारत–भर के स्कूल–कॉलेजों में भी इस नाटक को बड़े चाव से प्रस्तुत किया जाता रहा है।

4.7 उद्देश्य

भारतेन्दु अत्यंत सूक्ष्म पर्यवेक्षण क्षमता से संपन्न नाटककार थे। अपने युग की विकट परिस्थितियों और उसके कारणों को वे ध्यानपूर्वक समझ रहे थे। युगीन परिस्थितियों में सहृदय–सामाजिक को सुचिंतित दिशा देने का काम वे अपने साहित्य, विशेष रूप

से नाटकों के माध्यम से दे रहे थे। उनके सभी नाटक सोद्देश्य हैं। भारतेन्दु का मानना था कि नाटक का उद्देश्य युगानुरूप होना चाहिए – "जिस समय में जैसे सहृदय जन्म ग्रहण करें और देशीय रीति नीति का प्रवाह जिस रूप से चलता रहे उस समय में उक्त हृदय सहृदय गन के अन्तःकरण की वृत्ति और सामाजिक रीति पद्धति इन दोनों विषयों की समीचीन समालोचना करके नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना योग्य है।" स्पष्ट है कि जब तक नाटक का उद्देश्य युगीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों और आचरण–व्यवहार से नहीं जुड़ेगा, तब तक दर्शक/पाठक भी उसमें न तो रुचि दिखाएगा और न ही स्वयं को जोड़ पाएगा। नाटक के संबंध में तो कहा भी जाता है कि वह लिखा किसी भी काल में जाए, खेला हमेशा वर्तमान में जाता है। कल्पनाशील रंगकर्मी प्राचीन काल के नाटकों के प्रस्तुतिकरण में भी अपने समय की प्रवृत्तियों का संस्पर्श देते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'नाटक' नामक निबंध में नवीन नाटकों की रचना के जो उद्देश्य बतलाए हैं, वे इस प्रकार हैं – श्रृंगार, हास्य, कौतुक, समाज संस्कार और देशवत्सलता– इस दृष्टि से हम 'अंधेर नगरी' के उद्देश्य पर विचार करें तो पाएँगे कि यह नाटक समाज संस्कार के साथ देश वत्सलता के उद्देश्य को लेकर चला है। भारतेन्दु लिखते हैं – "समाज संस्कार के नाटकों में देश की कुरीतियों का दिखलाना मुख्य कर्तव्य कर्म है। यथा शिक्षा की उन्नति विवाह संबंधी कुरीतिनिवारण अथवा धर्म सम्बन्धी अन्यान्य विषयों में संशोधन इत्यादि। किसी प्राचीन कथाभाग का इस बुद्धि संगठन कि देश की उससे कुछ उन्नति हो, इसी प्रकार के अंतर्गत है।"

भारतेन्दु के उपर्युक्त विचार 'अंधेर नगरी' पर शब्दशः लागू होते दिखलाई पड़ते हैं। भारतेन्दु द्वारा उल्लिखित उद्देश्यों की दृष्टि से देखें तो 'अंधेर नगरी' नाटक का उद्देश्य समाज संस्कार और देशवत्सलता प्रतीत होता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत नाटक में भारतेन्दु ने लोक–प्रचलित कथा का सहारा लेते हुए तद्युगीन ब्रिटिश शासन की अत्याचारपूर्ण नीति और कानून–व्यवस्था के पतन को प्रस्तुत किया किया है। ब्रिटिश सरकार की कुनीतियों की ओर निम्न पंक्तियों में संकेत किया गया है–

हिन्दू चूरन इसका नाम । विलायत पूरन इसका काम ।।
चूरन जब से हिंद में आया । इसका धन बल सभी घटाया ।।

× × ×

चूरन साहब लोग जो खाता । सारा हिंद हजम कर जाता ।।
चूरन पूलिसवाले खाते । सब कानून हजम कर जाते ।।

भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी' और 'चौपट्ट राजा' की कथा में हास्य के साथ व्यंग्य का सहारा लेते हुए पाठक/दर्शक के भीतर यह बोध भरने का प्रयास किया है कि विवेकशून्य अनीतिकारी शासन अधिक दिन तक नहीं टिकता। भोली–भाली जनता पर शासन करने वाले, उन पर अंधे कानून थोपने वाले, न्याय के नाम अन्याय करने वाले शक्ति–सम्पन्न, सत्ता के मद में चूर दुराचारी राजनीतिज्ञ अपने साथ पूरे समाज और देश को डुबा सकते हैं – इस दृष्टिकोण से 'अंधेर नगरी' का उद्देश्य आज भी प्रासंगिक है।

सब कुछ टके सेर बेचने वाली 'माल बिकाऊ' प्रवृत्ति की होड़ दिखाकर भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने पाश्चात्य सभ्यता की दिखावाप्रधान विज्ञापनी संस्कृति की वास्तविकता और उसके दुष्परिणामों के प्रति सचेत करने का भी प्रयास किया है। भोगवादी संस्कृति के आकर्षण में शाश्वत मूल्यों को खो देनेवाला स्वार्थ, लोभ, लालच से घिरा और 'मुझे क्या' के दृष्टिकोण से ग्रस्त गोबर्धनदास रूपी मनुष्य अपने लिए आत्मघाती स्थितियाँ तैयार कर ही लेता है, जिससे बचने का रास्ता अंततः महंत रूपी मूल्य–विवेक द्वारा ही प्रशस्त किया जाता है।

'अंधेर नगरी' नाटक में भारतीयों की रुढ़िवादी संकुचित मानसिकता और पैसा–प्रधान प्रवृत्ति को सांकेतिक ढंग से उभारते हुए उस पर व्यंग्य किया गया है। जात वाले ब्राह्मण का संवाद भारतीय समाज में बढ़ रहे पैसे के बोलबाले को दिखाता है–

"जात ले जात, टके सेर जात; एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जायं और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करैं; टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिंदू से क्रिस्तान; टके के वास्ते धर्म्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचौं, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानैं, टके के वास्ते नीच को पितामह बनावैं। वेद धर्म्म कुल मरजादा सचाई बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल ले टके सेर।"

भारतीय समाज में ब्राह्मण शब्द मात्र जातिवाचक न होकर बुद्धिमत्ता का पर्याय कहा जाता रहा है। ऐसे व्यक्ति को सरे–बाजार पैसे के लिए धर्म, कुल, जाति, मर्यादा आदि सब कुछ बेचते हुए दिखाकर भारतेन्दु ने तत्कालीन भारतीय समाज के पतन की ओर इशारा किया है कि जब व्यवस्था का दिशा–निर्धारण करने वाला बुद्धिजीवी वर्ग ही ऐसा व्यवहार कर रहा है तो आम जनता से क्या अपेक्षा की जाय?

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'अंधेर नगरी' नाटक की रचना के पीछे भारतेन्दु हरिश्चंद्र का उद्देश्य ब्रिटिश सरकार की अराजक और अन्यायपूर्ण नीतियों का पर्दापाश करने के साथ ही भोगवादी संस्कृति की विद्रूपताओं को उजागर करते हुए दर्शक/पाठक को स्वस्थ और सकारात्मक जीवन दृष्टि के प्रति सचेत करना है।

4.8 नाट्य–रूप : प्रहसन

भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' में प्रहसन को रूपक के दस भेदों में से एक माना गया है। भारतेन्दु ने 'नाटक' नामक निबंध में रूपक के भेदों के अंतर्गत प्रहसन की परिभाषा और उदाहरण देते हुए लिखा है –"हास्य रस का मुख्य खेल; नायक राजा वा धनी वा ब्राह्मण वा धूर्त कोई हो। इसमें अनेक पात्रों का समावेश होता है। यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किन्तु अब अनेक दृश्य दिये बिना नहीं लिखे जाते। उदाहरण – हास्यार्णव, वैदिकी हिंसा, अंधेर नगरी।" – स्पष्ट है कि प्रहसन में हास्य की प्रधानता होती है, किसी गंभीर उद्देश्य को संप्रेषित करना इसका उद्देश्य नहीं होता। 'प्रहसन' शब्द का अर्थ हास्यपरक नाटकों का ही बोध कराता है। पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में प्रहसन के लिए 'कॉमेडी' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

'अंधेर नगरी' नाटक को भारतेन्दु ने स्वयं प्रहसन की श्रेणी में रखा है। भारतेन्दु द्वारा दी गई परिभाषा की दृष्टि से देखें तो 'अंधेर नगरी' में हास्य रस पर्याप्त मात्रा में हैं– बाजार में अपना–अपना सामान बेचने की होड़ में लगे विक्रेताओं की गेयात्मक शैली पहले–पहल हास्य की ही सृष्टि करती है। गोबर्धनदास का अंधेर नगरी के 'टके सेर' वाले चलन से आकर्षित होकर ललचाना और वहीं रहने का निर्णय भी दर्शकों में गुदगुदी पैदा करता है। राजसभा वाले दृश्य में विवेकांध राजा की न्याय–प्रक्रिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

भारतेन्दु ने प्रहसन की परिभाषा में लिखा है– इसके नायक राजा, धनी, ब्राहमण या धूर्त कोई भी हो सकते हैं। इस दृष्टि से देखें तो 'अंधेर नगरी' में राजा भी है, ब्राह्मण भी है। 'अंधेर नगरी' के 'चौपट्ट राजा' का आचरण और उसके संवाद हर दृष्टि से हास्य की सृष्टि करने वाले हैं। नाटक के अंत में चौपट्ट राजा द्वारा स्वयं फाँसी के फंदे पर झूल जाने का निर्णय भी रोचक लगता है। नाटक के केंद्र में गोबर्धनदास है, साधु होकर भी

रोज–रोज भरपेट मिठाई खाने की इच्छा रखने वाला उसका लालची स्वभाव अंततः उसी के प्राणों के लिए संकट बन जाता है– यह प्रसंग भी अपनी सम्पूर्णता में हास्य की ही सृष्टि करता है। इस नाटक का नायक महंत ही कहा जाएगा क्योंकि गोबर्धनदास पर आई विपत्ति का निवारण वही करता है। अपने शिष्य गोबर्धनदास को बचाने के लिए महंत द्वारा अपनाई गई सूझ–बूझ की नीति भी अत्यंत रोचक लगती है।

प्रहसन अधिकांशतः संक्षिप्त कथावस्तु वाले और आकार में छोटे ही होते हैं। इसी के अनुरूप 'अंधेर नगरी' में कोई अंक–योजना नहीं है। छह दृश्यों में पूरे नाटक को विभाजित किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रहसन की परिभाषा और इसके लक्षणों के आधार पर 'अंधेर नगरी' एक सफल प्रहसन सिद्ध होता है। हालाँकि 'अंधेर नगरी' का उद्देश्य मात्र हास्य की सृष्टि करना नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य कहीं अधिक सुचिंतित और महत्वपूर्ण है। 'अंधेर नगरी' के विभिन्न दृश्यों, पात्रों और संवादों में भारतेन्दु ने हास्य के साथ व्यंग्य का धारदार इस्तेमाल किया है। वस्तुतः भारतेन्दु ने प्रहसन के रूप–विधान का फायदा उठाते हुए लोक–प्रचलित कथा का सृजनात्मक इस्तेमाल किया है और इसके माध्यम से अंग्रेजों के साथ भारतीयों की भी अच्छी खबर ली है। इस नाटक में वर्णित घटनाएँ हास्य की सृष्टि के साथ तत्युगीन यथार्थ का बोध कराते हुए सोचने के लिए मजबूर करती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यंग्य–विधान और युगातीत उद्देश्य ने 'अंधेर नगरी' को मात्र प्रहसन तक सीमित न रखकर एक बृहत्तर आयाम प्रदान किया है। (इस नाटक के व्यंग्य–विधान की चर्चा आप पिछली इकाई में विस्तार से पढ़ चुके हैं)

बोध प्रश्न 2

1. 'अंधेर नगरी' नाटक के उद्देश्य पर विचार कीजिए।

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

2. 'अंधेर नगरी' नाटक की संवाद योजना और भाषा पर विचार व्यक्त कीजिए।

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

4.10 सारांश

'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु का आधार भारतीय समाज में प्रचलित एक लोक–कथा है। भारतेन्दु जी ने 'अंधेर नगरी' नाटक में लोक प्रचलित के साथ अपनी नाटकीय सूझ–बूझ से काल्पनिक प्रसंगों का संयोजन करते हुए अपने समय के आतंककारी अंग्रेजी प्रशासन और व्यवस्था की क्रूरता को सामने लाने का प्रयास किया है। 'अंधेर नगरी' नाटक के सभी पात्रों की परिकल्पना भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने विशिष्ट उद्देश्यों को अभिव्यक्त करने के लिए की है। ये सभी पात्र स्वतंत्र रूप से विकसित न होकर नाटक के व्यंग्य–विधान का पोषण करने वाले हैं। साथ ही, सभी पात्र तत्कालीन समय के साथ वर्तमान समय की भी व्यवस्थागत और मानवीय प्रवृत्तियों के प्रतीक बनकर उभरे हैं। लोक–प्रचलित कथा से प्रेरित 'अंधेर नगरी' नाटक की भाषा में लोकभाषा के समस्त तत्व देखने को मिलते हैं। सामान्य लोक–व्यवहार की भाषा में लिखे गए इस नाटक की भाषा का अर्थ–विस्तार काफी गहरा और व्यापक है। चुस्त संवाद योजना से यह नाटक काफी प्रभावशाली बन पड़ा है। 'अंधेर नगरी' नाटक की रचना भारतेन्दु ने तद्‌युगीन परिस्थितियों के आलोक में की थी किन्तु इस नाटक में आए देश, काल और वातावरण सर्वव्यापी हैं और नाटक की प्रभावोत्पादकता बढ़ाने में पूरा योग देते हैं। प्रदर्शन की दृष्टि से लचीला होने के कारण 'अंधेर नगरी' नाटक इतना लोकप्रिय हुआ कि अपने रचना–समय से लेकर वर्तमान समय तक विभिन्न रंगकर्मियों ने अनेक बार अनेक रंग–शैलियों में इसकी रंगमंचीय सार्थकता को सिद्ध किया है। नाट्य–रूप की दृष्टि से 'अंधेर नगरी' प्रहसन की श्रेणी में आता है किन्तु भारतेन्दु ने प्रहसन के रूप–विधान का फायदा उठाते हुए लोक–कथा का सृजनात्मक इस्तेमाल किया है। व्यंग्य–विधान और युगातीत उद्देश्य ने 'अंधेर नगरी' को मात्र प्रहसन तक सीमित न रखकर एक बृहत्तर आयाम प्रदान किया है। यह नाटक विवेकशून्य शासन–व्यवस्था और भोगवादी संस्कृति की वास्तविकता को उजागर करते हुए सहृदय समुदाय को भारतीय संस्कृति के शाश्वत मान–मूल्यों को अपनाने की ओर प्रेरित करता है।

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(क) 1. ग   2. क

(ख) रिक्त स्थान

1. पश्चिम, पूर्व   2. बकरी

बोध प्रश्न 2

1. उत्तर के लिए 4.8 देखिए।
2. उत्तर के लिए 4.5 का पुनः अध्ययन कीजिए।

इकाई 5: जयशंकर प्रसाद के नाटकों का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय

5.3 जयशंकर प्रसाद का साहित्य

- 5.3.1 काव्य
- 5.3.2 उपन्यास
- 5.3.3 कहानी
- 5.3.4 नाटक

5.4 जयशंकर प्रसाद का नाट्य–चिंतन

5.5 जयशंकर प्रसाद के नाटक

5.6 जयशंकर प्रसाद के नाटकों की विशेषताएँ

- 5.6.1 कथावस्तु
- 5.6.2 पात्र और चरित्र–चित्रण
- 5.6.3 भाषा तथा संवाद योजना
- 5.6.4 देश–काल–वातावरण
- 5.6.5 अभिनयात्मकता
- 5.6.6 इतिहास और कल्पना का समन्वय
- 5.6.7 राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना
- 5.6.8 गीतों की प्रधानता

5.7 सारांश

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप हिन्दी के प्रमुख नाटककार जयशंकर प्रसाद के नाटकों का सामान्य परिचय पढ़ने जा रहे हैं। यह इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- जयशंकर प्रसाद के जीवन और साहित्य से परिचित हो सकेंगे;
- जयशंकर प्रसाद के विभिन्न नाटकों की पृष्ठभूमि, विषयवस्तु और उद्देश्य को जान पाएँगे;
- इन नाटकों के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का विश्लेषण कर पाएँगे;
- जयशंकर प्रसाद के नाट्य–साहित्य की प्रमुख विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे;
- नाट्य–शिल्प की दृष्टि से जयशंकर प्रसाद के नाटकों का मूल्यांकन कर सकेंगे; और
- हिन्दी के नाट्य साहित्य में जयशंकर प्रसाद के महत्वपूर्ण अवदान का मूल्यांकन कर पाएँगे।

5.1 प्रस्तावना

जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी नाट्य–साहित्य के प्रमुख नाटककार हैं। नाटककार के साथ वे कवि, कहानीकार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार भी थे। प्रसाद हिन्दी साहित्य के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। हिन्दी नाटक का इतिहास जयशंकर प्रसाद के नाटकों कि बिना अधूरा कहा जाएगा। भारतेन्दु हरिश्चंद्र के बाद प्रसाद ही ऐसे नाटककार थे, जिन्होंने स्वतंत्रता के पहले के हिन्दी नाटक को गति प्रदान की। उन्होंने हिन्दी नाटक की एक अलग धारा का निर्माण किया। प्रसाद के नाटकों में भारत की संस्कृति और इतिहास के दर्शन के साथ ही प्रसादयुगीन परिस्थितियों और समस्याओं की झलक मिलती है। कथ्य की दृष्टि से उनके नाटक आज भी प्रासंगिक हैं। इसी कारण, देश–भर की नाट्य–संस्थाओं के साथ ही विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में प्रसाद के नाटकों का मंचीय प्रदर्शन होता रहता है।

5.2 जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय

जयशंकर प्रसाद का जन्म 30 जनवरी 1880 को काशी के प्रसिद्ध और समृद्ध सुँघनी साहू परिवार में हुआ। इनके परिवार में कलाकारों को काफी सम्मान व दान देने की परम्परा थी। प्रसादजी का आरंभिक जीवन काफी कष्टमय रहा। 11 वर्ष की आयु में ही प्रसाद जी के पिता, 15 वर्ष की आयु में माताजी और 17 वर्ष की आयु में बड़े भाई का देहांत हो गया था। इस प्रकार किशोरावस्था में ही प्रसाद जी पर पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ आ पड़ा। उनके रिश्तेदारों ने इनकी संपत्ति भी हड़पने की कोशिश की, किन्तु प्रसाद जी ने अत्यंत धैर्य और गंभीरता से जीवन की कठिनाइयों का सामना किया।

प्रसाद जी की आरंभिक शिक्षा अल्प समय तक काशी के प्रतिष्ठित क्वींस कॉलेज में हुई। इसके बाद इन्होंने श्री मोहिनीलाल लाल गुप्त, रसमय सिद्ध, गोपाल बाबा, श्री दीनबंधु ब्रह्मचारी, हरिहर महाराज महामहोपाध्याय पं० देवीप्रसाद शुक्ल जैसे शिक्षकों, काव्य–गुरुओं और संस्कृत के प्रकांड विद्वानों के सान्निध्य में वेद, उपनिषद्, इतिहास और पुराण का अध्ययन करते हुए संस्कृत और हिन्दी भाषा पर अपना अधिकार बनाया। कहा जाता है कि घर के साहित्यिक माहौल के कारण ही जयशंकर प्रसाद ने केवल नौ वर्ष की आयु में 'कलाधर' नाम से ब्रजभाषा में एक पद की रचना कर ली थी।

जयशंकर प्रसाद के तीन विवाह हुए। पहली दो पत्नियाँ बिना संतान के ही, क्षय रोग के कारण जल्द ही मृत्यु को प्राप्त हो गईं। पारिवारिक दबाव के कारण इन्हें तीसरा विवाह करना पड़ा। तीसरी पत्नी से पुत्र रत्नशंकर प्रसाद की प्राप्ति हुई। ये इनकी एकमात्र संतान थे। क्षय रोग के कारण ही 15 नवंबर 1937 को प्रसाद जी का देहांत हो गया।

प्रसाद जी की स्मृति में वर्ष 2011 में 'महाकवि जयशंकर प्रसाद फाउंडेशन' की स्थापना भी की गई। इसका कार्यालय भारत की राजधानी दिल्ली में स्थित है।

5.3 जयशंकर प्रसाद का साहित्य

जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि जयशंकर प्रसाद ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन किया। प्रसाद आधुनिक हिन्दी कविता में छायावादी युग की शुरूआत करनेवाले कवि माने जाते हैं। काव्य–रचना के साथ ही इन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध जैसे साहित्यिक रूपों में अपनी उत्कृष्ट सर्जनात्मकता का परिचय दिया है। जयशंकर प्रसाद द्वारा साहित्य की विभिन्न विधाओं में रचित साहित्य इस प्रकार है :

5.3.1 काव्य

जयशंकर प्रसाद ने अपनी काव्य–यात्रा की शुरूआत 'चित्राधार' नामक काव्य–संग्रह से की। इस संग्रह में ब्रजभाषा और खड़ी बोली की रचनाएँ संकलित थीं। 'कानन कुसुम' संग्रह में विभिन्न भावों से संबंधित प्रसाद की प्रारम्भिक कविताएँ संकलित हैं। 'प्रेम पथिक' में प्रेम और प्रकृति का महत्व बताते हुए प्रसाद ने सर्वहित और समभाव की कामना की है। प्रसाद के 'झरना' काव्य–संग्रह से छायावादी कविता का आरम्भ माना जाता है। 'झरना' में मुख्यतः प्रेम के विविध रूप, भक्ति, अध्यात्म, रहस्यात्मकता, प्रकृति संबंधी गीतात्मक कविताएँ हैं। 'आँसू' प्रसाद द्वारा रचित विरह–काव्य है, जिसमें कवि ने व्यक्तिगत सुख–दुखों से ऊपर उठकर अपने–आपको विश्व के लिए समर्पित कर देने का भाव व्यक्त किया है। काव्य–शिल्प और भाषा की दृष्टि से भी प्रसाद के 'आँसू' की गिनती हिन्दी के प्रमुख विरह–काव्यों में होती है। 'महाराणा का महत्व' महाराणा प्रताप और अमर सिंह पर केन्द्रित काव्य है जिसमें स्वाधीनता–प्रेम का उदात्त भाव व्यक्त हुआ है। प्रसाद रचित 'लहर' काव्य–संग्रह की गिनती छायावाद की सर्वोत्कृष्ट रचनाओं में होती है। 'लहर' में प्रेम, प्रकृति, आत्म–निवेदन, रहस्यात्मकता से संबंधित कविताओं के साथ ही तीन लम्बी कविताएँ भी शामिल हैं, जिनके नाम हैं –'प्रलय की छाया', 'शेरसिंह का शस्त्र–समर्पण' और 'अशोक की चिंता'। तीनों ही कविताएँ ऐतिहासिक आख्यानों से संबंधित हैं। 'लहर' काव्य–संग्रह की सभी कविताएँ गीतात्मक हैं। प्रसाद ने 'कामायनी' महाकाव्य की रचना भी की। 'कामायनी' जयशंकर प्रसाद ही नहीं बल्कि समूचे आधुनिक हिन्दी काव्य का श्रेष्ठ महाकाव्य है। काव्य–शिल्प और कथ्य की दृष्टि से यह महाकाव्य बेजोड़ है। पंद्रह संगों में विभाजित इस महाकाव्य में प्रसाद ने मनु, श्रद्धा और इड़ा की मिथकीय कथा के माध्यम से मानवीय मूल्यों का सन्देश दिया है।

5.3.2 उपन्यास

जयशंकर प्रसाद ने तीन उपन्यासों की रचना की –'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती'। 'इरावती' उपन्यास उनके निधन के कारण पूरा नहीं हो पाया था। 'कंकाल' उपन्यास के कथा के केंद्र में धार्मिक स्थल हैं। उपन्यास में विभिन्न धर्मों में धार्मिक कार्यों के नाम पर होने वाले पाखंडों और अनैतिक कार्यों का चित्रांकन किया गया है। प्रसाद का 'तितली' उपन्यास ग्राम–सुधार से संबंधित है। इसमें जमींदारी प्रथा के कुप्रभावों और किसानों की समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रसाद जी ने किया है। 'तितली' उपन्यास में प्रसाद जी के समाज संबंधी विचार भी व्यक्त हुए हैं। 'इरावती' उपन्यास की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। शुंगकाल के अग्निमित्र और पुष्यमित्र को केंद्र में रखकर प्रसाद जी ने यह उपन्यास लिखना शुरू किया था किन्तु उनकी असामयिक मृत्यु के कारण यह उपन्यास अधूरा ही रह गया।

5.3.3 कहानी

जयशंकर प्रसाद ने कहानी साहित्य में भी अपना योगदान दिया है। प्रसाद जी द्वारा लिखित कहानियों की संख्या सत्तर के लगभग मानी जाती है। ये कहानियाँ मुख्यतः पाँच कहानी–संग्रहों में संकलित हैं –'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी', 'इंद्रजाल'. 'ग्राम' को प्रसाद जी की पहली कहानी माना जाता है। जयशंकर प्रसाद ने ऐतिहासिक, सामाजिक, भाव–प्रधान, चरित्र–प्रधान, घटना–प्रधान आदि अलग–अलग प्रकार की पृष्ठभूमि वाली कहानियाँ लिखीं। इनकी सभी कहानियों में मानव–हृदय के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं।

5.3.4 नाटक

जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी साहित्य को अपने श्रेष्ठ नाटकों से समृद्ध किया है। इनके नाटकों के बारे में आप इसी इकाई के अगले भाग में पढ़ेंगे।

5.4 जयशंकर प्रसाद का नाट्य चिंतन

जयशंकर प्रसाद एक सजग नाटककार थे। उन्होंने श्रेष्ठ नाटकों की रचना के साथ ही नाटक के सैद्धांतिक पक्ष पर भी चिंतन–मनन किया है। प्रसाद ने नाटक के संबंध में अपनी मान्यताओं का उल्लेख स्वलिखित निबंधों में किया है। ये सभी निबंध उनकी 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' नामक पुस्तक में संकलित हैं। इसकी साथ ही, प्रसाद द्वारा तेरहवें 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' में पढ़े गए लेख 'हिन्दी में नाटक का स्थान' से भी उनके नाटक संबंधी विचारों का पता लगता है। जयशंकर प्रसाद ने दृश्य–काव्य अर्थात् नाटक को साहित्य का गौरवपूर्ण अंग माना है। दृश्य और श्रव्य कलाओं के समायोजन के कारण प्रसाद नाटक को एक सम्पूर्ण कला मानते हैं। इस विषय में उनका कहना है कि "जिस कला में मानसिक अवस्था का पूर्ण विकास हो, अच्छा विश्लेषण हो उसे ही पूर्ण कहेंगे। नाटक में काव्य के दोनों भेद दृश्य और श्रव्य तथा कला की दृष्टि से मूर्त और अमूर्त रूपों का उपयोग है।" (प्रसाद ग्रंथावली, खंड चार, सं. रत्नशंकर प्रसाद) अमूर्त भावों के मूर्तिकरण की दृष्टि से नाटक साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विधा है। नाटक अपने विभिन्न तत्वों –विविध भाव–भंगिमाओं से युक्त अभिनय, संवाद, दृश्य बंध, गीत, संगीत, नृत्य आदि के सहयोग से दर्शक में विविध भावों का संचरण करता है और उसे इस लोक के आनंद से अलग, विशेष प्रकार के रस या आनंद की स्थिति तक लेकर जाता है, जिससे दर्शक को मानसिक संतुष्टि मिलती है। इसी कारण, नाटक को साहित्य की विशिष्ट विधा भी कहा जाता है –"कला पक्ष केवल नाटक रूप में लोकोत्तर चमत्कार और आदर्श–दृश्य तथा श्रव्य, मूर्त और अमूर्त इत्यादि सब साधनों से वह मानसिक संसार को विकास देता है और उसके पास साधन भी प्रचुर परिमाण में हैं। शिल्प, संगीत, चित्र, कविता, आहार्य, भाव और अंग–भंगी से अभिनय पूर्ण होता है। एक नाटक में इन सभी का विलास है, विकास है। इसी से कहते हैं 'काव्येषु नाटकं रम्यं।" (प्रसाद ग्रंथावली, खंड चार, सं. रत्नशंकर प्रसाद, पृष्ठ–448) जयशंकर प्रसाद ने भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' के साथ ही प्राचीन साहित्यशास्त्रीय ग्रंथों का गहराई से अध्ययन किया था। इसलिए उनकी नाटक संबंधी मान्यताएँ प्राचीन साहित्याचार्यों की 'काव्येषु नाटकं रम्यं' उक्ति का ही समर्थन करती हैं, जिसका तात्पर्य है कि काव्य अर्थात् साहित्य के सभी रूपों में नाटक सबसे अधिक रमणीय है। भारतीय साहित्यशास्त्र के अनुसार रस नाटक की आत्मा है। प्रसाद ने इस मान्यता का समर्थन करते हुए रस को नाटक के लिए अनिवार्य बतलाया है। 'नाटकों में रस का प्रयोग' नामक निबंध में वे लिखते हैं –"जैसे विश्व के भीतर से विश्वात्मा की अभिव्यक्ति होती है, उसी तरह नाटकों से रस की।" नाटक के संबंध में भारतीय दृष्टिकोण के साथ ही जयशंकर प्रसाद ने पाश्चात्य नाट्य साहित्य का भी अध्ययन किया था। इसलिए उनके नाटकों पर पाश्चात्य नाट्य–तत्वों का प्रभाव भी देखने को मिलता है। पाश्चात्य नाटकों में द्वंद्व और व्यक्ति–वैचित्र्य को नाटक का मुख्य तत्व माना गया है। जयशंकर प्रसाद ने द्वंद्व पर अपने विचार तो प्रकट नहीं किए, लेकिन उनके नाटकों के विभिन्न चरित्रों, घटनाओं और प्रसंगों में बाहरी और आंतरिक द्वंद्व शामिल है।

5.5 जयशंकर प्रसाद के नाटक

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की शुरूआत में नाटक के नाम पर विभिन्न प्रदेशों के लोक–नाट्य थे। इसके अलावा विशुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से पारसी नाटक कंपनियों द्वारा नाटक खेले जाते थे। उस समय की पारसी कंपनियों के नाटकों में साहित्यिकता और सुरुचि सम्पन्नता न के बराबर थी। ऐसी स्थिति में, भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने संस्कृत नाट्य–परम्परा, प्रादेशिक लोक–नाट्यों और कुछ सीमा तक पाश्चात्य नाट्य–पद्धतियों

से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करते हुए हिन्दी में नाटक लिखने और उन्हें मंचित करने की स्वस्थ शुरूआत की। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने नाटकों की कथावस्तु को तत्कालीन युग की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों से जोड़ते हुए विदेशी शासन और रूढ़ियों में जकड़ी जनता को जागरूक करने की कोशिश की। इस युग में राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक वैभव, सामाजिक समस्याओं से संबंधित नाटक लिखे गए। हिन्दी नाटकों की यह परम्परा भारतेन्दु हरिश्चंद्र की मृत्यु के बाद धीमी पड़ गयी। द्विवेदी युग में कुछ समाज–सुधारात्मक और उपदेशात्मक नाटक लिखे अवश्य गए किन्तु उनका मंचन बहुत ही कम हो पाया। जयशंकर प्रसाद अपने पूर्व की नाट्य–परम्परा से भली–भाँति परिचित थे। उनके समय में भी पारसी कंपनियों द्वारा अशालीन नाटक प्रस्तुत किये जाते थे। प्रसाद ने 'सुरुचि संपन्न' और 'साहित्यिक' नाटक लिखने की शुरूआत की। उनका लक्ष्य जनता की रूचि का परिष्कार करना था। इतिहास के माध्यम से प्रसाद ने अपने युग की समस्याओं के समाधान खोजने की कोशिश की। इसीलिए प्रसाद जी ने अपने कई नाटकों में लम्बी–लम्बी भूमिकाएँ लिखी हैं। इन भूमिकाओं में उन्होंने नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उसमें आए काल्पनिक प्रसंगों की ओर संकेत किया है ताकि दर्शक/पाठक नाटक की विषयवस्तु और उसके उद्देश्य से भली–भाँति परिचित हो सके।

उपर्युक्त भूमिका को जानने के बाद अब आप जयशंकर प्रसाद के नाटकों का संक्षिप्त परिचय पढ़ेंगे। प्रसाद की नाट्य–यात्रा की शुरूआत 'उर्वशी' चम्पू से शुरू होकर 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक तक पहुँचती है।

उर्वशी (1908 ई.)

चम्पू काव्य को प्रसाद ने अपनी 'बाल्य रचना' कहा है। चम्पू, नाटक का ही एक प्रकार होता है, जिसमें गद्य–पद्य संवाद होते हैं। पाँच परिच्छेदों में विभाजित 'उर्वशी' में काव्यात्मक संवादों में ब्रजभाषा है जबकि गद्यात्मक संवादों में खड़ी बोली का प्रयोग प्रसाद जी ने किया है। अप्सरा उर्वशी और राजा पुरुरवा के संबंध में प्रचलित कथाओं के साथ प्रसाद ने अपनी कल्पना का प्रयोग भी इसमें किया है। उर्वशी' में प्रेम का महत्त्व स्थापित किया गया है। नाट्य–शिल्प की दृष्टि से यह एक कमजोर रचना है।

सज्जन (1910 ई.)

यह पाँच दृश्यों में विभाजित नाटक है। इसमें युधिष्ठिर की धर्म–निष्ठा और सज्जनता को दर्शाया गया है। कौरवों द्वारा वन–विहार करते समय गन्धर्वों से हुए युद्ध और उसमें मिली हार इस नाटक की कथावस्तु के केंद्र में है। उसके बाद पांडवों द्वारा उन्हें बचाया जाना और युधिष्ठिर द्वारा छोड़ दिया जाना चित्रित है। नाट्य–शिल्प की दृष्टि से 'सज्जन' में संस्कृत की नाट्य–रूढ़ियों – नान्दी–पाठ, सूत्रधार, नटी, भरत–वाक्य के साथ पारसी रंगमंच की शैली का भी थोड़ा–बहुत प्रभाव है। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी, दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, शकुनि आदि इस नाटक के पात्र हैं।

प्रायश्चित (1912 ई.)

'प्रायश्चित' छह दृश्यों का नाटक है। जयचंद द्वारा पृथ्वीराज चौहान के साथ किया गया छल इस नाटक की कथावस्तु का आधार है। जयचंद के राष्ट्र–द्रोह के प्रायश्चित के रूप में आत्म–वध को उचित ठहराया गया है तथा राष्ट्र–प्रेम का महत्त्व स्थापित किया गया है। नाट्य–शिल्प की दृष्टि से 'प्रायश्चित' पर पारसी रंगमंच की शैली का थोड़ा प्रभाव है। इस नाटक की भाषा प्रसाद के पहले नाटकों से श्रेष्ठ है। जयचंद, मंत्री, सेनापति, मुहम्मद गोरी, शफकत आदि इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं।

कल्याणी परिणय (1912 ई.)

यह नाटक नौ दृश्यों में विभाजित है। चाणक्य के मार्ग–निर्देशन में चन्द्रगुप्त की ग्रीक सेना पर विजय–अभियान के दृश्य से नाटक की शुरूआत होती है। सफलता की ओर बढ़ रहे चन्द्रगुप्त का मन अवसाद से घिरा हुआ–सा है। सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया को भारत–भूमि और चन्द्रगुप्त दोनों से प्रेम हो गया है। अंततः ग्रीक सेना के साथ हुई संधि के रूप में चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया का विवाह संपन्न हो जाता है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, इन्दुशर्मा, चंडविक्रम, सिल्यूकस, कार्नेलिया, मेगास्थिनीज, साइबर्टीयस आदि नाटक के प्रमुख पात्र हैं।

करुणालय (1913 ई.)

यह एक गीति–नाट्य है। इस नाटक की कथावस्तु का आधार विश्वामित्र और शुनःशेष की पौराणिक कथा है। हरिश्चंद्र अयोध्या के महाराज और रोहित युवराज हैं। यज्ञ में बलि के लिए रोहित वन में पशु खोजने जाता है। वहाँ अजीगर्त सौ गायों के लालच में अपने मध्यम पुत्र शुनः शेष को बलि के लिए दे देता है। शुनः शेष की बलि के समय विश्वामित्र प्रकट होकर बलि–कर्म को रुकवाते हैं। शुनः शेष वास्तव में विश्वामित्र और सुव्रता का ही पुत्र है, परिस्थितियों के कारण वह अजीगर्त के पास था। इस पौराणिक कथा के माध्यम से नाटक में नर–बलि के विरुद्ध करुणा और आनंद का महत्त्व बतलाया गया है। यह नाटक पाँच दृश्यों में विभाजित है। पुरुष पात्रों में हरिश्चंद्र, रोहित, वसिष्ठ, विश्वामित्र, शुनरू शेफ, शक्ति, मधुच्छन्द तथा स्त्री पात्रों में तारिणी, सुव्रता हैं।

राज्यश्री (1915 ई., संशोधित संस्करण 1927 ई.)

यह चार अंकों और बाईस दृश्यों में विभाजित नाटक है। नाटक की भूमिका में प्रसाद ने इसकी कथावस्तु का आधार संस्कृत के कवि बाणभट्ट द्वारा लिखित 'हर्षचरित' और चीनी यात्री सुएनच्वांग के ग्रंथों में वर्णित घटनाओं को बतलाया है। वर्द्धन वंश की कन्या और कन्नौजराज गृहवर्मा की रानी राज्यश्री नाटक के केंद्र में है। अतीव सौन्दर्य की स्वामिनी कन्नौजराज गृहवर्मा की रानी राज्यश्री को प्राप्त करने के लिए मालवराज देवगुप्त, गौड़ के राजा की मदद से कन्नौज पर आक्रमण कर देता है। युद्ध में गृहवर्मा मारे जाते हैं और राज्यश्री को बंदी बना लिया जाता है। राज्यश्री का भाई राज्यवर्द्धन अपनी बहन को मुक्त कराने के लिए मालव पर आक्रमण करता है जिसमें देवगुप्त मारा जाता है। शांतिदेव के नाम से भिक्षु बना विकटघोष राज्यश्री का अपहरण करवा देता है, साथ ही राज्यवर्द्धन को चंगुल में फँसाकर उनकी हत्या करवा देता है। इसके बाद हर्षवर्द्धन अपनी बहन को खोजने के लिए अभियान चलाता है, उसे सफलता भी मिलती है। इन सभी स्थितियों से आहत राज्यश्री आत्म–दाह की कोशिश करती है। अंततः हर्षवर्द्धन द्वारा लोक–सेवा के संकल्प पर नाटक समाप्त होता है। राज्यश्री के अलावा स्थाणीश्वर के राजकुमार राज्यवर्द्धन, हर्षवर्द्धन, शशांक, दिवाकरमित्र नामक महात्मा, गौड़ का राजा नरेन्द्रगुप्त, मालवराज देवगुप्त, मालिन सुरमा, विकटघोष आदि इस नाटक के पात्र हैं। विकटघोष और सुरमा काल्पनिक पात्र हैं, बाकी सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। इन पात्रों के माध्यम से प्रसाद ने मानव–मन की वासना, ईर्ष्या, स्वार्थ जैसे भावों के वशीभूत होकर गलत कार्य करने वाले चरित्रों की सशक्त अभिव्यक्ति की है। राज्यश्री के माध्यम से क्षमा–दान और करुणा की प्रतिष्ठा करना प्रसाद का लक्ष्य रहा है। साथ ही, इस नाटक में जातिगत भेदभाव, ऊँच–नीच, छुआछूत जैसी सामाजिक समस्याओं को भी दिखाया है।

विशाख (1921 ई.)

इस नाटक के कथा–सूत्र कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' के प्रथम तरंग से ग्रहण किए गए हैं। प्रसाद ने मूल कथा में कुछ बदलाव भी किया है। नाटक तीन अंकों के कुल सत्रह

दृश्यों में विभाजित है। कश्मीर के राजा नरदेव नागों के सरदार सुश्रुवा नाग की सारी भूमि छीनकर बौद्ध मठ को दे देता है। साथ ही वह सुश्रुवा की कन्या चन्द्ररेखा पर भी काम के वशीभूत होकर कुदृष्टि रखता है। जिसके कारण राजा नरदेव और नाग जाति में संघर्ष होता है। नाटक के अंत में नरदेव सद्मार्ग पर आ जाता है। इस नाटक में आततायी शासन में पिसती जनता को चित्रित किया गया है। यह नाटक अप्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की भारतीय जनता पर अत्याचार करने वाली कुनीतियों पर भी व्यंग्य करता है। नरदेव, महापिंगल, सुश्रुवा, विशाख, प्रेमानंद, सत्यशील, चन्द्ररेखा, इरावती आदि नाटक के पात्र हैं। प्रेमानंद और महापिंगल काल्पनिक पात्र हैं। प्रेमानंद पर गाँधी जी के सिद्धांतों का प्रभाव है जो सत्य, स्वराज्य, अहिंसा और आत्म–सम्मान को महत्त्व देता है।

अजातशत्रु (1922 ई.)

इस नाटक की कथावस्तु बौद्धकाल से संबंधित है। प्रसाद जी ने इस नाटक की भूमिका काफी लम्बी लिखी है, जिसमें उन्होंने इतिहास की कई घटनाओं के विवरण दिए हैं। तीन अंकों में विभाजित इस नाटक में कुल अट्ठाईस दृश्य हैं। नाटक का समस्त नाट्य–व्यापार मगध, कोशल और कौशाम्बी तीन स्थानों से संबंधित है। कथावस्तु तीन अंकों और सत्ताइस दृश्यों में विभाजित है। 'अजातशत्रु' नाटक में पात्रों की संख्या काफी अधिक है। अजातशत्रु, बिम्बिसार, उदयन, प्रसेनजित, विरुद्धक, गौतम बुद्ध, देवदत्त आदि प्रमुख पुरुष पात्र हैं। वासवी, छलना, पद्मावती, वासवदत्ता, शक्तिमती, वाजिरा आदि प्रमुख स्त्री पात्र हैं। नाट्य–शिल्प की दृष्टि से यह नाटक उत्तम है। परिस्थिति और मनःस्थिति के अनुरूप इस नाटक में गीतों का प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है। मगध–सम्राट बिम्बिसार की छोटी रानी छलना महत्वाकांक्षी है। वह गौतम बुद्ध से घृणा करने वाले देवदत्त से मंत्रणा करके अपने पुत्र राजकुमार अजातशत्रु से बिम्बिसार के प्रति द्रोह करवा देती है। अजातशत्रु, अपने पिता बिम्बिसार और बड़ी राजमाता वासवी को कैद में डाल देता है। बिम्बिसार और वासवी दोनों बौद्ध धर्म की शरण में जाना चाहते हैं। दूसरी ओर कोसल के राजा प्रसेनजित और कौशाम्बी नरेश उदयन अजातशत्रु के राज्य पर युद्ध करते हैं। पूरे नाटक में कई प्रकार की उथल–पुथल वाली घटनाएँ होती हैं। अंत में छलना और अजातशत्रु द्वारा बिम्बिसार से क्षमा–याचना के बाद बिम्बिसार की मृत्यु पर नाटक समाप्त हो जाता है। इस नाटक में बौद्ध धर्म के अनुरूप करुणा, अहिंसा, प्रेम, क्षमा आदि भावों का महत्त्व स्थापित किया गया है। औद्योगिक सभ्यता से मानव–संबंधों में आये बदलाव, नारी समानता, जातीय समरसता की ओर भी संकेत है।

जनमेजय का नागयज्ञ (1923 ई.)

इस नाटक की भूमिका में प्रसाद जी ने नाटक की कथावस्तु से जुड़े ऐतिहासिक तथ्यों का विवरण दिया है। इस नाटक में विश्व–बंधुत्व भाव की प्रतिष्ठा की गई है। तीन अंकों और इक्तीस दृश्यों में विभाजित इस नाटक में पात्रों की संख्या काफी है। इन्द्रप्रस्थ सम्राट जनमेजय, नागों का राजा तक्षक, नाग सरदार वासुकी, पौरवों का पुरोहित काश्यप, कुलपति वेद, आस्तीक, सोमश्रवा, वेदव्यास, आदि प्रमुख पुरुष पात्र हैं। नारी पात्रों में जनमेजय की रानी वपुष्टमा, वासुकी की बहन और जरत्कारु की पत्नी सरमा, तक्षक की कन्या मणिमाला, वेद की पत्नी दामिनी और सोमश्रवा की पत्नी शीला आदि हैं। माणवक, त्रिविक्रम, दामिनी, शीला जैसे कुछ पात्र काल्पनिक हैं। बाकी सारे पात्र ऐतिहासिक हैं। इस नाटक के एक पात्र व्यास पर गाँधीवादी आदर्शों का प्रभाव झलकता है। नाटक में प्रसाद जी ने प्रतिहिंसा और प्रतिशोध के कारण आर्य और नाग जातियों में संघर्ष दिखलाया है। दूसरी ओर इस नाटक में प्रभुत्व के कारण ब्राह्मण और क्षत्रियों का संघर्ष भी है। नाटक के समूचे कार्य–व्यापार पर यह द्वंद्व छाया हुआ है। यहाँ यज्ञ के नाम पर होने वाली बलि–कर्म जैसी प्रवृत्तियों की निंदा की गई है। नाटक के गीत

भावपूर्ण हैं। नाट्य–शिल्प की दृष्टि से यह नाटक सशक्त है। इसका मंचन भी काफी हुआ है।

कामना (1923–24 ई.)

'कामना' एक प्रतीकात्मक नाटक है। यह नाटक तीन अंकों और बाईस दृश्यों में विभाजित है। इस नाटक में सारे पात्र मानवीय भावों के प्रतीक हैं। प्रसाद जी ने संतोष, विनोद, विलास, विवेक, शान्ति, दंभ, कामना, लालसा, करुणा, महत्वाकांक्षा आदि मानवीय भावों को पात्रों के रूप में चित्रित किया है। कामना, नाटक की मुख्य पात्र है, जो मनुष्य के भीतर उठने वाली विभिन्न प्रकार की इच्छाओं–आकांक्षाओं का प्रतीक है। रानी कामना को सारे सुख–भोग के साधन मिलने के बाद भी अंततः संतोष से मिलकर ही चैन आता है। यह नाटक सन्देश देता है कि अति हमेशा दुष्परिणाम ही लेकर आती है– चाहे वह किसी भौतिक वस्तु के उपयोग की हो या मनुष्य की किसी कामना की। इस दृष्टि से यह नाटक मनुष्य को अति–भौतिकता से बचने के प्रति सचेत करता है।

स्कन्दगुप्त (1928 ई.)

इस नाटक का आधार भारतीय इतिहास का स्वर्ण–युग कहे जाने वाले गुप्त–काल के पतन की घटनाएँ हैं। प्रसाद जी ने इस नाटक की लम्बी भूमिका में गुप्त वंश का पूरा विवरण भी दिया है। उस समय एक ओर तो विदेशी हूणों के बाहरी आक्रमण हो रहे थे जिससे समूचे मालव और सौराष्ट्र प्रदेश में हलचल मची हुई थी। दूसरी ओर, गुप्त–राजपरिवार में आंतरिक कलह मची हुई थी। पाँच अंकों में विभाजित इस नाटक का मुख्य पात्र स्कन्दगुप्त है। गुप्त–परिवार के नियम के मुताबिक बड़ा पुत्र स्कन्दगुप्त अपने पिता के बाद राजसिंहासन का उत्तराधिकारी है। किन्तु, विमाता अनंत देवी अपने पुत्र पुरगुप्त को राजा बनवाने के लिए अनेक षड्यंत्र रचती है। पुरगुप्त मदिरा–विलास में डूबा रहता है। पारिवारिक षड्यंत्रों से त्रस्त स्कन्दगुप्त में वीतराग की भावना पैदा हो जाती है। किन्तु, बाहरी शक्तियों के आक्रमण के समय वही राष्ट्र की रक्षा करता है और नाटक के अंत में गुप्त–कुल के सिंहासन को सुरक्षित करते हुए अपने छोटे भाई पुरगुप्त को राज्य सौंप देता है। इन राजनीतिक घटनाओं के साथ स्कन्दगुप्त का व्यक्तिगत चरित्र चित्रण भी नाटक में हुआ है। वह पहले विजया की ओर आकर्षित होता है किन्तु जल्द ही उसे विजया की वास्तविकता का पता लग जाता है। मालव की राजकुमारी देवसेना उसके प्रति आकर्षित थी किन्तु तब स्कन्दगुप्त विजया के प्रति आकर्षित था। नाटक के अंत में स्कन्दगुप्त और देवसेना दोनों मिलकर भी राष्ट्र–सेवा के लिए एक–दूसरे से दूर हो जाते हैं। इसके अलावा 'स्कन्दगुप्त' नाटक में ब्राह्मण और बौद्धों का संघर्ष भी दिखाया गया है। 'स्कन्दगुप्त' में स्कन्दगुप्त के अलावा मगध–सम्राट कुमारगुप्त, कुमारगुप्त के भाई गोविन्दगुप्त, पर्णदत्त, चक्रपालित, मालवा के राजा बन्धुवर्मा और उनका भाई भीमवर्मा, शर्वनाग, कुमारगुप्त का छोटा पुत्र पुरगुप्त, भटार्क, पृथ्वीसेन आदि प्रमुख पुरुष पात्र हैं। स्त्री पात्रों में कुमारगुप्त की बड़ी रानी देवकी, छोटी रानी अनन्तदेवी, बन्धुवर्मा की पत्नी जयमाला, बहन देवसेना, भटार्क की माँ कमला, विजय, रामा, मालिनी आदि हैं। मुद्गल (विदूषक) और प्रपंचबुद्धि जैसे पात्र काल्पनिक हैं। इस नाटक के स्कन्दगुप्त, देवसेना, विजया, मुद्गल जैसे पात्रों में आंतरिक द्वंद्व देखने को मिलता है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक का उद्देश्य युवाओं में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना का संचार करना है। नाट्य–शिल्प की दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' की गिनती सफल नाटकों में की जाती है। इस नाटक के राष्ट्र–प्रेम संबंधी और विरह–वेदना संबंधी गीत काफी लोकप्रिय हुए।

एक घूँट (1928 ई.)

जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित एकांकी है जिसमें प्रेम और आनंद के भावों की प्रतिष्ठा की गयी है। इस नाटक में प्रकृति के विभिन्न रूपों का मानवीकरण किया गया

है। कुब्ज, रसाल, वनलता, मुकुल, प्रेमलता जैसे पात्रों के साथ कुछ अन्य पात्र – झाड़ूवाला, आनंद, चंदुला आदि पात्र भी हैं। प्रसाद जी ने इसमें आनंद और प्रेमलता के मिलन को सृष्टि के आधार रूप में चित्रित किया है। साथ ही, यह सन्देश भी दिया है कि प्रकृति की तरह जब मनुष्य में भी केवल 'देने' का भाव आ जाएगा तब उसके जीवन में स्वतः समरसता आ जाएगी। इस एकांकी की भाषा में दार्शनिकता का पुट देखने को मिलता है।

चन्द्रगुप्त (1931 ई.)

'चन्द्रगुप्त' नाटक प्रसाद के प्रसिद्ध नाटकों में से एक है। यह प्रसाद के पूर्व–नाटक 'कल्याणी –परिणय' का विस्तार है, जिसका परिचय आप प्राप्त कर चुके हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक का आधार भारतीय इतिहास का मौर्य–काल है। नाटक की विस्तृत भूमिका में प्रसाद जी ने मौर्य–वंश, चन्द्रगुप्त के जीवन, सिकंदर और चन्द्रगुप्त का आमना–सामना, चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में यूनानी सेना की पराजित करना, मगध में चन्द्रगुप्त और उसके शासन में भारतवर्ष की स्थिति, चाणक्य के संबंध में विस्तार से बताया है और इन सबके संबंध में ऐतिहासिक प्रमाण भी दिए हैं। ऐतिहासिक आधार लेते हुए भी इस नाटक में प्रसाद ने कई काल्पनिक घटनाओं और चरित्रों की सृष्टि की है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य इस नाटक के प्रधान पात्र हैं। अन्य पात्रों में मालव का राजकुमार सिंहरण, मगध सम्राट नन्द, मगध के अमात्य राक्षस और वररुचि, मगध के मंत्री शकटार, तक्षशिला का राजकुमार आम्भीक, पंजाब का राजा पर्वतेश्वर, ग्रीक विजेता सिकंदर, सिकंदर का क्षत्रप फिलिप्स, सिकंदर का सेनापति सिल्यूकस, ऋषि दान्ड्यायन आदि प्रमुख पुरुष पात्र हैं। स्त्री पात्रों में तक्षशिला की राजकुमारी अलका, शकटार की कन्या सुवासिनी, मगध राजकुमारी कल्याणी, सिंध–देश की कुमारी मालविका, सिल्यूकस की कन्या कार्नेलिया आदि प्रमुख हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में मुख्य रूप से तीन घटनाएँ हैं– सिकंदर का विजय–अभियान, राजा नन्द का उन्मूलन और सिल्यूकस का आक्रमण। तीनों घटनाओं के केंद्र में चन्द्रगुप्त है। वह अपने गुरु चाणक्य से दिशा–निर्देशन प्राप्त करता हुआ सफलता प्राप्त करता है। सफलता के रास्ते में सिंहरण, अलका, मालविका जैसे पात्र उसके सहयोगी बनते हैं तो आम्भीक जैसे पात्र बाधा बनते हैं। इन राजनीतिक घटनाओं के साथ चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिंहरण जैसे पात्रों का व्यक्तिगत जीवन भी नाटक में चित्रित हुआ है। अंत में चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक और कार्नेलिया के साथ उसके विवाह और चाणक्य द्वारा वन–गमन की सूचना पर नाटक समाप्त हो जाता है। वीर रस का सुन्दर परिपाक इस नाटक में हुआ है। इस नाटक के देश–भक्ति और भारतीय संस्कृति संबंधी कई गीत काफी लोकप्रिय हुए। हिन्दी के कई नाट्य–निर्देशकों ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक को सफलतापूर्वक मंच पर प्रस्तुत किया है।

ध्रुवस्वामिनी (1933 ई.)

'ध्रुवस्वामिनी' जयशंकर प्रसाद का चर्चित नाटक है। यह नाटक स्त्री–प्रधान है। ऐतिहासिक घटना–क्रम का सहारा लेते हुए प्रसाद जी ने इस नाटक में विवाह–विच्छेद की सामाजिक समस्या को उठाया है और पति के अयोग्य सिद्ध होने की स्थिति में स्त्री के विवाह–बंधन से मुक्ति का शास्त्र–सम्मत समाधान भी प्रस्तुत किया है। नाटक की भूमिका में प्रसाद जी ने संस्कृत कवि विशाखदत्त के 'देवीचन्द्रगुप्त' का उल्लेख किया है जिससे 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की कथा के सूत्र ग्रहण किए गए हैं। ध्रुवस्वामिनी, चंद्रगुप्त, रामगुप्त, शकराज, मंदाकिनी, कोमा, शिखरस्वामी, पुरोहित आदि इस नाटक के प्रमुख पात्र है। ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से अयोग्य पति के दुर्व्यवहार से त्रस्त नारी की विवश स्थिति को इस नाटक में मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रित किया गया है। विलासी राजा रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी से जबरन विवाह कर लेता है। किन्तु उसे पत्नी–योग्य सम्मान नहीं देता। शकराज द्वारा युद्ध रोकने की शर्त के रूप में ध्रुवस्वामिनी को उपहार के रूप में उसके शिविर में

भेज देता है। चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी की रक्षा के लिए स्त्री–वेश में, उसके साथ शकराज के शिविर में जाता है। वहाँ दोनों मिलकर शकराज का वध कर देते हैं। इसके उपरान्त रामगुप्त फिर से ध्रुवस्वामिनी पर अपना अधिकार जमाता है। ध्रुवस्वामिनी पुरोहित के समक्ष अपने स्त्रीत्व के सम्मान का प्रश्न उठाती है। अंततः पुरोहित द्वारा शास्त्र–सम्मत उपाय के माध्यम से ध्रुवस्वामिनी को रामगुप्त से मुक्ति मिलती है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में तीन अंक हैं। प्रसाद जी ने इस नाटक में कोई दृश्य–विभाजन नहीं किया है। साथ ही, मंचन की दृष्टि से प्रसाद जी ने इस नाटक में काफी रंग–संकेत भी दिये हैं। नाट्य–शिल्प की दृष्टि से 'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद के श्रेष्ठतम नाटकों में गिना जाता है। देश–भर की नाट्य–संस्थाएँ इस नाटक का मंचन करती रहती हैं।

5.6 जयशंकर प्रसाद के नाटकों की विशेषताएँ

प्रसाद ने जिस समय नाटक लिखना शुरू किया, उस समय हिन्दी नाटक की धारा अत्यंत क्षीण थी। नाट्य–लेखन की जो शुरूआत भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने की थी, वह धीरे–धीरे मंद पड़ती जा रही थी। निम्न स्तर के मनोरंजन की प्रधानता वाले पारसी नाटक जनता की रुचि को भ्रष्ट कर रहे थे। ऐसे समय में जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी नाटक को स्वस्थ और साहित्यिक नाटकों के द्वारा गति देने की कोशिश की। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से जयशंकर प्रसाद के नाटकों की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

5.6.1 कथावस्तु

जयशंकर प्रसाद ने अपने सभी नाटकों की कथावस्तु का चयन ऐतिहासिक घटनाओं और चरित्रों से किया है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने केवल अतीत का गान किया है या अतीत की घटनाओं को दोहरा दिया है। वस्तुतः प्रसाद जी ने अपने नाटकों की कथावस्तु में इतिहास के माध्यम से वर्तमान की समस्याओं को चित्रित किया है। उदाहरण के लिए उन्होंने 'चन्द्रगुप्त' में राष्ट्रीय एकता, 'स्कन्दगुप्त' में राष्ट्र–प्रेम के ऊपर जीवन न्यौछावर करने का भाव, 'अजातशत्रु' में करुणा भाव, 'ध्रुवस्वामिनी' में स्त्री–सशक्तिकरण को व्यक्त किया है। ऐतिहासिक कथावस्तु का चुनाव करने के पीछे प्रसाद जी का निश्चित उद्देश्य था। जिस युग में प्रसाद जी रचना कर रहे थे, उस युग में राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन और समाज–सुधार आन्दोलन अपने चरम पर थे – इन सभी में प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से योग दिया। साथ ही, कथा की आवश्यकता के अनुसार कुछ काल्पनिक प्रसंगों और चरित्रों की सृष्टि भी उन्होंने की है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में देवसेना का प्रसंग, 'चन्द्रगुप्त' नाटक में सुवासिनी, मालविका और कार्नेलिया, 'अजातशत्रु' में मागधी, 'ध्रुवस्वामिनी' में कोमा जैसे सशक्त पात्र और उनसे संबंधित प्रसंगों ने प्रसाद के नाटकों की कथावस्तु को विश्वसनीय और रोचक बनाया है। इस तरह प्रसाद जी ने अपने नाटकों की कथावस्तु में इतिहास और कल्पना का संयोजन बहुत कुशलता से किया है।

जगन्नाथ प्रसाद शर्मा जैसे कुछ विद्वानों ने शास्त्रीय दृष्टि से भी प्रसाद के नाटकों की कथावस्तु का विश्लेषण किया है। इनके नाटकों की कथावस्तु में आरम्भ, मध्य, चरम स्थिति और अंत की स्थितियाँ भी स्पष्ट झलकती हैं। लगभग सभी नाटकों के पहले दृश्य से ही केन्द्रीय समस्या का अनुमान हो जाता है। उदाहरण के लिए 'स्कन्दगुप्त' नाटक के पहले दृश्य से स्कन्दगुप्त की उदासीनता के साथ कर्तव्यबद्धता, 'चन्द्रगुप्त' नाटक में चाणक्य और आम्भीक के संवादों में विदेशी शक्ति के आक्रमण, 'ध्रुवस्वामिनी' के पहले दृश्य से दाम्पत्य संबंधों में असंतुष्टि का आभास हो जाता है। इन समस्याओं को लेकर कथावस्तु विकसित होकर चरम पर पहुँचकर अंत तक आती है। अधिकांश नाटकों का अंत सुखद और प्रभावशाली है। प्रसाद ने नाटकों में संघर्ष या तनाव की स्थिति लाने के लिए त्रासद तत्वों का संयोजन भी किया है। साथ ही भावमयता के

लिए प्रेम–प्रसंगों को भी कथावस्तु में पिरोया है। डॉ. गोविन्द चातक जयशंकर प्रसाद के नाटकों की कथावस्तु की सामान्य विशेषताओं के विषय में लिखते हैं – "कुछ विशिष्ट संरचनात्मक कारकों अथवा एक केन्द्रीय भाव से प्रेरित होने के कारण प्रसाद के नाटकों की वस्तु संरचना में एक सर्वसामान्य 'पैटर्न' सर्वत्र दिखाई देता है। कथावस्तु के स्तर पर उनके नाटक उस बिंदु से प्रारंभ होते हैं जहाँ राजा क्रूर, आलसी, विलासी या अनुत्तरदायी है। विदेशी आक्रमण होने जा रहा है या आंतरिक षड्यंत्र जिससे देश दुर्बल हुआ जा रहा है। तब कोई व्यक्ति ध्रुवतारा–सा उदित होता है और राष्ट्र को मुक्त करता है। बाधा आती है पर खल तत्व अंततः पराजित होता है। सत् विजयी होता है। यह बाहरी 'पैटर्न' है। इसके भीतर एक आंतरिक गठन भी है जो समसामयिक स्थितियों से अपना ताना–बाना बुनती है।" प्रसाद जी के नाटकों की कथावस्तु में रस और द्वंद्व का निर्वाह भी कुशलता से हुआ है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, जातीय द्वंद्व के माध्यम से प्रसाद ने युगीन मूल्यों की अभिव्यक्ति की वहीं, चरित्रों के पारस्परिक और आंतरिक द्वंद्व से इन नाटकों की कथावस्तु मनोवैज्ञानिक धरातल पर पुष्ट हुई है।

प्रसाद के नाटकों की कथावस्तु को कई विद्वानों ने 'महाकाव्यात्मक' कहकर आलोचना की है। जिसका कारण इनके नाटकों में उप–कथानकों और घटना–प्रसंगों की अधिकता है। वस्तुतः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के नाटकों की कथावस्तु में संयोजन के लिए दृश्यों की अधिकता करनी पड़ती है। दृश्य अधिक होने के कारण संप्रेषण में बाधा का खतरा बढ़ जाता है। इसे प्रसाद के नाटकों की सीमा भी कहा जा सकता है।

5.6.2 पात्र और चरित्र–चित्रण

जयशंकर प्रसाद के नाटकों की कथावस्तु के समान अधिकांश पात्रों की सृष्टि का आधार भी इतिहास ही है। पात्रों के चारित्रिक विकास में अपनी कल्पना का योग देते हुए प्रसाद ने अपने युग की जनता के सामने आदर्श चरित्रों को रखा प्रसाद के नाटकों में मुख्यतः तीन तरह के पात्र मिलते हैं :

पूर्ण रूप से ऐतिहासिक पात्रः प्रसाद के नाटकों के मुख्य पुरुष पात्र, जिन्हें हम नायक भी कह सकते हैं – वे पूर्ण रूप से ऐतिहासिक हैं। हालाँकि इनके चरित्र–चित्रण में भी प्रसाद ने थोड़ा–बहुत कल्पना का सहारा लिया है। स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय आदि ऐसे ही पात्र हैं।

कम प्रचलित ऐतिहासिक पात्रः शर्वनाग, मातृगुप्त, दान्ड्यायन जैसे कम प्रचलित ऐतिहासिक पात्रों के चित्रण में प्रसाद ने नाटक की कथावस्तु के अनुरूप कल्पना का समावेश किया है।

विशुद्ध काल्पनिक पात्रः देवसेना, विजय, कोमा जैसे पात्र काल्पनिक होते हुए भी अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण प्रसाद के नाट्य–साहित्य में अमर हो गये हैं। ऐसे पात्रों की रचना मानव हृदय के विभिन्न पक्षों – प्रेम, ईर्ष्या, द्वंद्व, वासना आदि को दिखाने के लिए हुई है। जैसे देवसेना, कोमा, मालविका जैसे पात्र प्रेम और त्याग के प्रतीक हैं। विजया जैसे पात्र अति–महत्वाकांक्षा के प्रतीक हैं।

प्रसाद के नाटकों में पात्रों का चरित्रांकन सहज मानवीय धरातल पर हुआ है। इन पात्रों में मानव–सुलभ उत्साह और कुछ करने का संकल्प है तो मानवीय दुर्बलताएँ भी हैं। नायक धीरोदात्त हैं, राष्ट्र के सेवक हैं लेकिन उनमें व्यक्तिगत स्तर पर मानव–सुलभ दुर्बलताएँ दिखाकर प्रसाद ने उन्हें मानवीय आधार प्रदान किया है। पाश्चात्य नाट्य शास्त्र में जिसे 'व्यक्ति वैचित्र्य' कहा जाता है – वह भी प्रसाद के नाटकों में मिलता है– इसके अंतर्गत एक ही व्यक्ति के परस्पर विपरीत भाव चित्रित होते हैं। पात्रों के चरित्र–चित्रण में प्रसाद जी ने 'हृदय–परिवर्तन' का सहारा भी लिया है। कुछ पात्रों पर गाँधीजी के सिद्धांतों का प्रभाव है। दान्ड्यायन, गौतम बुद्ध जैसे पात्रों के माध्यम

से भारतीय अध्यात्म और चिंतन प्रसाद जी ने व्यक्त किया है। नारी के विभिन्न रूपों –प्रेममयी, स्नेहमयी, महत्वाकांक्षी, ईर्ष्यालु, राष्ट्र के प्रति समर्पित – का चित्रण प्रसाद के नाटकों की विशेषता है। विदूषक की सृष्टि भी कई नाटकों में देखी जा सकती है।

जयशंकर प्रसाद के नाटकों के कुछ पात्र अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण हिन्दी नाट्य–साहित्य में अमर हो गए हैं। साथ ही, ये पात्र किसी–न–किसी विशेषता के प्रतीक भी बन गए हैं। उदाहरण के लिए चाणक्य राष्ट्र की शुभचिन्तक भारतीय मेधा –शक्ति का प्रतीक हैं, तो दान्ड्यायन भारतीय संस्कृति के महती मूल्य अपरिग्रह का। स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, सिंहरण राष्ट्र के प्रति समर्पित युवा–शक्ति का प्रतीक हैं तो ध्रुवस्वामिनी नारी–चेतना का। देवसेना का चरित्र मानव–हृदय के करुणा, सेवा और त्याग का प्रतीक है।

5.6.3 भाषा तथा संवाद योजना

प्रसाद छायावादी कवि थे। इसका प्रभाव उनके नाटकों के संवादों पर भी झलकता है। प्रसाद के नाटकों की भाषा काव्यात्मक, प्रतीकात्मक, व्यंजनात्मक और बिम्ब–प्रधान है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित होने के कारण इन नाटकों के संवादों की भाषा में खड़ी बोली का संस्कृतनिष्ठ रूप अधिक देखने को मिलता है। प्रसाद जी ने पात्रों के स्वभाव और चरित्र के अनुरूप विभिन्न प्रकार के संवादों का प्रयोग किया है। नाटक की पृष्ठभूमि और परिस्थिति के अनुरूप सूच्य संवादों का कुशल प्रयोग प्रसाद जी ने किया है। सूच्य संवादों के माध्यम से घटनाओं और क्रियाओं की सूचना देने से नाटक को गति मिलती है। स्वगत कथन इन नाटकों में आए हैं। स्वगत कथन के माध्यम से प्रसाद जी ने पात्रों के आंतरिक संघर्ष को उभारने का अच्छा प्रयास किया है। देवसेना, कोमा, मंदाकिनी, सुवासिनी जैसे भावना–प्रधान चरित्रों के संवाद अपेक्षाकृत काव्यात्मक हैं। चाणक्य, दान्ड्यायन, गौतम बुद्ध जैसे पात्रों के संवादों में दार्शनिकता की छाप है। आकार की दृष्टि से भी प्रसाद जी ने लघु और दीर्घ – दोनों प्रकार के संवादों का प्रयोग नाट्य–स्थिति और चरित्रों की मनोदशा के अनुरूप किया है। जयशंकर प्रसाद के सभी नाटकों में से 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के संवाद भाषा की दृष्टि से सर्वाधिक व्यंजनापूर्ण और नाटकीय हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जयशंकर प्रसाद के नाटकों के संवाद पात्रों के अनुकूल, काव्यात्मक और पृष्ठभूमि के अनुरूप हैं।

5.6.4 देश–काल–वातावरण

नाटक में कथावस्तु को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए देश, काल और वातावरण का काफी महत्त्व है। नाटक की कथावस्तु किस देश, किस काल और किस वातावरण से संबंधित है – इस बात का ध्यान रखा जाता है ताकि दर्शक/पाठक नाटक के कथ्य से भली–भाँति परिचित हो सकें। नाटक की भाषा में इसे 'संकलन–त्रय' भी कहा जाता है। जिसका अर्थ है–समय, स्थान और कार्य की एकता। जयशंकर प्रसाद के अधिकांश नाटकों पर 'संकलन–त्रय' का निर्वाह न करने का आरोप लगता रहा है। घटना व्यापार लंबा होने के कारण उनके ऐतिहासिक नाटकों में यह समस्या काफी देखी जाती है। वस्तुतः प्रसाद ने राष्ट्रीय–सांस्कृतिक मूल्यों को अभिव्यक्त करने के लिए नाटकों की कथावस्तु में विस्तृत घटना–व्यापार को लिया। कई स्थानों पर काल्पनिक घटनाओं और पात्रों की सृष्टि भी की। उनका ध्यान नाटक के उद्देश्य पर रहा, इसलिए नाटकों के कई स्थलों पर देश–काल–वातावरण का तारतम्य बिगड़ा हुआ दिखता है। इसे प्रसाद के नाटकों की सीमा भी कहा जाता है। हालाँकि इसके कारण प्रसाद के नाटकों को पढ़ते समय उनके समग्र प्रभाव पर कोई नकारात्मक असर नहीं पड़ता। हाँ, मंचन के समय दिक्कतें आ सकती हैं, जिन्हें सुनियोजित ढंग से निपटाया जा सकता है। यह समस्या सभी नाटकों के साथ नहीं है। 'ध्रुवस्वामिनी' जैसे नाटक तो देश–काल–वातावरण की दृष्टि से भी श्रेष्ठ हैं।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

5.6.5 अभिनयात्मकता

प्रसाद के समय में और बाद में भी एक लम्बी अवधि तक उनके नाटकों को अभिनय/रंगमंच की दृष्टि से कमजोर कहा जाता रहा। प्रसाद के नाटकों में दृश्यों और पात्रों की संख्या अधिक होने के कारण, काव्यात्मक भाषा, गीतों की अधिकता आदि के कारण बहुत लम्बे समय तक रंगकर्मी उनके नाटकों का मंचन करने से बचते रहे। कई नाटकों के दृश्यों में पहाड़, जंगल, नदियों, कानन, राजमार्ग, गुरुकुल आदि से संबंधित कार्यों का उल्लेख होने के कारण भी रंगकर्मियों ने इन नाटकों को 'अरंगमंचीय' कहा है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों की इस कमी को समझते हुए 'चन्द्रगुप्त' नाटक का आलेख 'अभिनय चन्द्रगुप्त' के नाम से तैयार किया था। यह इस बात का सूचक है कि प्रसाद जी रंगमंच के प्रति भी सचेत थे और रंगमंचीय–प्रस्तुति की सुविधा के अनुसार अपने नाटकों में संशोधन के लिए तैयार भी थे। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद कुछ उत्साही रंगकर्मियों ने प्रसाद के नाटकों की उपरोक्त सारी चुनौतियों को स्वीकार करते हुए उनके विभिन्न नाटकों का सफलतापूर्वक मंचीय प्रदर्शन किया। शांता गाँधी, रामगोपाल बजाज, ब.व. कारंत के निर्देशन में मंचित किये गये नाटक काफी चर्चित रहे। इन निर्देशकों ने प्रसाद के नाटकों के दृश्यों और भाषा को मंचन की दृष्टि से तैयार किया। कुछ आवश्यक संशोधन और सुधार करते हुए इन निर्देशकों ने वर्तमान सन्दर्भों में प्रसाद के नाटकों को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया।

5.6.6 इतिहास और कल्पना का समन्वय

प्रसाद के सभी नाटकों में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। प्रभाकर श्रोत्रिय का मानना है कि "प्रसाद के समस्त ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों की प्रेरणा इतिहास या पुराण न होकर समकाल में उपस्थित राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और वैयक्तिक समस्याएँ हैं।" वस्तुतः प्रसाद ने अपने युग की सोई हुई जनता को जगाने और उसमें उत्साह भरने के लिए नाटकों में इतिहास का सहारा लिया। वे ऐसे ऐतिहासिक घटना–प्रसंगों और चरित्रों को लेकर आए जिन्होंने जनता को प्रेरित और प्रभावित किया। इन चरित्रों ने तत्कालीन जनता के समक्ष आदर्श की स्थापना की। प्रसाद ने इतिहास के साथ अपनी कल्पना–शक्ति का इस्तेमाल करते हुए काल्पनिक चरित्रों और घटनाओं को नाटकों की कथावस्तु में कुशलता से संयोजित किया। प्रसाद ने अपने नाटकों में इतिहास का प्रयोग वर्तमान के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किया।

5.6.7 राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना

प्रसाद से पहले भारतेन्दु, नाटकों के माध्यम से राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जागरण का कार्य कर चुके थे। प्रसाद ने भी इसी परम्परा को आगे बढ़ाया। प्रसाद ने जिस समय नाटक लिखना शुरू किया, उस समय भारत में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में स्वाधीनता आन्दोलन चल रहा था। समाज–सुधार के भी अनेक आन्दोलन चल रहे थे। नए और पुराने मानव–मूल्यों और मान्यताओं में संघर्ष था। पहले विश्व–युद्ध के दुष्परिणाम पूरी दुनिया झेल रही थी। एक प्रकार से वह उथल–पुथल का समय था। प्रसाद एक सचेत और सजग नाटककार थे। उन्होंने भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं का आधार लेते हुए अपने युग की आवश्यकताओं के अनुरूप नाटकों की रचना की। अपने नाटकों के माध्यम से उन्होंने भारतीय जनता में राष्ट्रीय का भाव भरने की कोशिश की तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों से भी परिचित कराया। नाटकों की कथावस्तु के चयन में भी प्रसाद की यह दृष्टि दिखाई देती है। जयशंकर प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' नाटक के नायक स्कन्दगुप्त में गाँधीवादी आदर्शों के अनुरूप राष्ट्र के लिए युवावस्था को न्योछावर कर देने का सन्देश मिलता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में

विदेशी ताकतों के खिलाफ एकजुट होकर लड़ने का पाठ सिखाया गया है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में जातीय भेदभाव से ऊपर उठने की बात देखने को मिलती है। प्रसाद इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि समाज में नारी को बराबरी का सम्मान दिए बिना और राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में उनकी भागीदारी के बिना लक्ष्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। इसीलिए उन्होंने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में अलका, मालविका, कल्याणी जैसे स्त्री पात्रों को राष्ट्र–प्रेम से सराबोर और जागरण–आन्दोलन में बढ़–चढ़कर भाग लेते हुए दिखाया है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के माध्यम से प्रसाद ने समाज में नारी के सम्मान और अधिकारों की रक्षा की बात की है। प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना को विकसित करने का सराहनीय प्रयास किया। इस प्रकार भारतीय संस्कृति की महानता और उसके उच्च मूल्यों का चित्रण प्रसाद के नाटकों की प्रमुख विशेषता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में कार्नेलिया नामक विदेशी पात्र के मुख से प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति का महिमा–मंडन करवाया है। भारतीय संस्कृति समावेशी संस्कृति है जो भौतिकता के स्थान पर मानव–मूल्यों को प्रधानता देती है। प्रसाद ने अपने नाटकों में आए चरित्रों के माध्यम से यही सन्देश देने का प्रयास किया है।

प्रसाद ने वेदों और पुराणों के माध्यम से भारतीय दर्शन का गहन अध्ययन करना आरम्भ कर दिया था। वे इस बात को भली–भाँति समझते थे कि दर्शन की सभी धाराएँ वस्तुतः मानव–जीवन के कल्याण के लिए ही बनी हैं। प्रसाद के नाटकों में वैदिक और बौद्ध दर्शन का आभास मिलता है। सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम, त्याग जैसे मूल्य उनके नाटकों के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं। नाटकों के पात्रों के माध्यम से इन महान मानवीय मूल्यों की स्थापना प्रसाद जी ने की है। 'अजातशत्रु' और 'कामना' नाटक में स्वार्थ–पूर्ति के लिए किए गए युद्धों के दुष्प्रभावों का चित्रण मिलता है, जो समूची मानवता के लिए खतरा बन जाते हैं। 'करुणालय' में मानवता–विरोधी धार्मिक कर्मकांडों के औचित्य पर सवाल उठाया गया है।

5.6.8 गीतों की प्रधानता

प्रसाद मूलतः कवि थे। इसी कारण उनके लगभग हर नाटक में गीत आये हैं। ये गीत नाटक की स्थिति और चरित्रों की मनःस्थिति के अनुरूप हैं। प्रसाद ने गीतों का प्रयोग नाटक की कथा और घटना–व्यापार को आगे बढ़ाने के लिए किया है। पात्रों का आंतरिक द्वंद्व और उनके मनोगत भावनाएँ कई गीतों के माध्यम से प्रकट हुए हैं। प्रसाद के नाटकों के कुछ गीत अमर हो गए हैं। भारतीय संस्कृति की महिमा–गान की दृष्टि से 'चन्द्रगुप्त' नाटक के 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और राष्ट्र–उद्बोधन की दृष्टि से 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' विशेष महत्व रखते हैं। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में देवसेना द्वारा गाए गये गीत 'आह वेदना मिली विदाई' की गिनती हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ वेदना–गीतों में होती है।

बोध प्रश्न–1

(क) निम्नलिखित वैकल्पिक प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. जयशंकर प्रसाद के नाटकों के संवादों की मुख्य विशेषता है:

   क) पात्रों के अनुकूल संवाद

   ख) काव्यात्मक संवाद संवाद

   ग) पृष्ठभूमि के अनुरूप संवाद

   घ) उपर्युक्त सभी

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

2. जयशंकर प्रसाद के किस नाटक में विवाह–विच्छेद की समस्या को उठाया गया है?
   क) जन्मेजय का नागयज्ञ
   ख) ध्रुवस्वामिनी
   ग) स्कन्दगुप्त
   घ) चन्द्रगुप्त
3. दान्ड्यायन जयशंकर प्रसाद के किस नाटक का पात्र है?
   क) कामना
   ख) प्रायश्चित
   ग) चन्द्रगुप्त
   घ) ध्रुवस्वामिनी

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक–एक शब्दों में दीजिए :

1. जयशंकर प्रसाद ने नाटक की आत्मा किसे माना है?

   ....

2. 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जयशंकर प्रसाद के किस नाटक का गीत है?

   ....

3. देवसेना नामक पात्र प्रसाद के किस नाटक में है?

   ....

(ग) निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) जयशंकर प्रसाद का जन्म सन् ..... में हुआ था।

ख) जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित महाकाव्य का नाम ..... है।

ग) 'करुणालय' जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित ..... है।

(घ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्नों का उत्तर दीजिए :

1. प्रसाद के नाटकों की किन्हीं तीन विशेषताएँ को बताइए?

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

2. प्रसाद के नाट्य संबंधी विचारों को लिखिए।

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

3. प्रसाद के नाटकों की कथावस्तु के ऐतिहासिक आधार पर अपने विचार लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

5.7 सारांश

इस इकाई में आपने जयशंकर प्रसाद के नाटकों का संक्षिप्त परिचय और उनके नाटकों की प्रमुख विशेषताओं को पढ़ा। छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी नाटक के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतेन्दु युग के बाद हिन्दी नाटकों की जो धारा मंद पड़ गयी थी, प्रसाद ने उसे गति प्रदान की। प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नाग यज्ञ', 'राज्यश्री' जैसे महत्वपूर्ण नाटकों की रचना की। प्रसाद ने समय–समय पर नाटक के संबंध में अपने विचारों को भी प्रकट किया। इतिहास को नाटकों की कथावस्तु का आधार बनाते हुए नाटकों के माध्यम से युगीन मूल्यों की अभिव्यक्ति प्रसाद जी ने की। यथावश्यक कल्पना का इस्तेमाल करते हुए प्रसाद ने अपने नाटकों में रोचकता और नाटकीयता का समावेश किया। प्रसाद के नाटकों में सभी तरह के पात्र मिलते हैं। ये सभी पात्र मानवीय भूमि पर रचे गये हैं। जयशंकर प्रसाद मूलतः कवि थे, इसलिए उनके नाटकों के संवादों की भाषा में काव्यमयता का गुण मिलता है. प्रसाद के सभी नाटक किसी–न–किसी उद्देश्य को लेकर लिखे गये हैं। इतिहास के माध्यम से तत्कालीन युग की आवश्यकता के अनुरूप प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना, मानवतावाद, गाँधीवादी मूल्यों की प्रतिष्ठा देखने को मिलती है। जयशंकर प्रसाद के नाटक अपने कलेवर के कारण कई वर्षों तक मंचित नहीं हो पाए। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद कई कल्पनाशील निर्देशकों ने उनके नाटकों में आवश्यक संशोधन करते हुए सफलतापूर्वक मंच पर प्रस्तुत किया। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी साहित्य को कई महत्वपूर्ण नाटक दिए हैं। इन नाटकों का अध्ययन और विश्लेषण किए बिना हिन्दी नाटक के इतिहास को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता।

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(क)	1.	घ,	2.	ख,	3.	ग
(ख)	1.	रस,	2.	चन्द्रगुप्त,	3.	स्कन्दगुप्त
(ग)	1.	1880,	2.	कामायनी,	3.	गीति–नाट्य।

(घ) 1. उत्तर के लिए देखिए 5.6

2. उत्तर के लिए दखिए 5.4

3. उत्तर के लिए देखिए 5.6.4

इकाई 6: स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का अंकवार सार

6.4 'स्कन्दगुप्त' की कथावस्तु में इतिहास और कल्पना का संयोजन

6.5 कथावस्तु का विश्लेषण

- 6.5.1 अंक दृश्य योजना
- 6.5.2 भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि से कथावस्तु का विकास
- 6.5.3 आधिकारिक और प्रासंगिक कथावस्तु
- 6.5.4 दृश्य और सूच्य घटनाएँ
- 6.5.5 विविध नाटकीय युक्तियों का प्रयोग
- 6.5.6 संकलन–त्रय का निर्वाह

6.6 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु में द्वंद्व

- 6.6.1 आंतरिक द्वंद्व
- 6.6.2 बाह्य द्वंद्व

6.7 सारांश

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.1 उद्देश्य

इस इकाई में आप नाटककार जयशंकर प्रसाद के नाटक 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का परिचय पढ़ने जा रहे हैं। इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु से परिचित हो सकेंगे;
- इस नाटक की कथावस्तु की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जान पाएँगे;
- 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु के काल्पनिक प्रसंगों को जान पाएँगे;
- इस नाटक की कथावस्तु की प्रमुख विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे
- 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु की अंक–योजना के अनुसार दृश्यवार विश्लेषण कर सकेंगे;
- 'संकलन–त्रय' की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु का अध्ययन करेंगे;
- प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु के विकास को समझ पाएँगे; और
- इस नाटक की कथावस्तु में निहित आंतरिक और बाह्य द्वंद्व को जान पाएँगे।

6.2 प्रस्तावना

कथावस्तु नाटक का महत्वपूर्ण आधारभूत तत्व माना जाता है। कोई भी नाटककार अतीत, कल्पना, जनश्रुति, जीवन और जगत से सम्बन्धित विविध प्रसंगों, घटनाओं, भावानुभवों, विचार–विमर्शों व समस्याओं से सूत्र ग्रहण करते हुए कथावस्तु की संरचना

करता है, जिसके आधार पर पूरे नाटक का वितान खड़ा होता है। साहित्यशास्त्र में 'कथावस्तु' और 'कथानक' शब्द प्रायः समानार्थक ही माने जाते हैं।

पिछली इकाई 'जयशंकर प्रसाद के नाटकों का सामान्य परिचय' थी। जिसके अंतर्गत आपने पढ़ा कि 'स्कन्दगुप्त' प्रसाद जी का एक महत्वपूर्ण नाटक है। आप यह भी जान चुके हैं कि 'स्कन्दगुप्त' का आधार भारतीय इतिहास का स्वर्ण–युग कहे जाने वाले गुप्त–काल के पतन की घटनाएँ हैं। नाटक की पृष्ठभूमि स्पष्ट करने के लिए प्रसाद जी ने 'स्कन्दगुप्त' की विस्तृत भूमिका भी लिखी है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में एक ओर गुप्त–कुल के राजसिंहासन को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले षड्यंत्र हैं तो दूसरी ओर विदेशी आक्रमणकारियों से राष्ट्र की रक्षा का भाव भी है। इसके साथ ही व्यक्तिगत जीवन के प्रेम, त्याग, उदासीनता, ईर्ष्या जैसे मानव–सुलभ भाव भी इसमें समाहित हैं। ऐतिहासिक घटनाओं के साथ काल्पनिक प्रसंगों के तालमेल से इस नाटक की कथावस्तु का निर्माण प्रसाद जी ने किया है। इस नाटक के माध्यम से प्रसाद जी का उद्देश्य अपने युग के राष्ट्रीय–सांस्कृतिक माहौल को बल प्रदान करना था। बहुभाषी संस्कृति और आचार–व्यवहार वाले भारत को एकता के सूत्र में बाँधना प्रसाद के समय की सबसे बड़ी चुनौती थी। इन्हीं चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए प्रसाद जी ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक में ऐतिहासिक घटनाओं के साथ काल्पनिक प्रसंगों का संयोजन करते हुए अपने समय की भारतीय जनता में राष्ट्रीयता का भाव भरने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत इकाई में हम 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु के स्वरूप, उसके विविध आयामों और विशेषताओं का अध्ययन करने जा रहे हैं।

6.3 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का अंकवार सार

'स्कन्दगुप्त' नाटक दीर्घ अवधि का नाटक है। 'स्कन्दगुप्त' में वर्णित घटनाओं और प्रसंगों की बहुलता के कारण महेश आनंद जैसे कई रंग–आलोचकों ने इस नाटक को 'महाकाव्यात्मक' नाटक कहा है। प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु पाँच अंकों के कुल तैंतीस दृश्यों में विभाजित है, जिसका सार इस प्रकार है।

प्रथम अंक की शुरूआत उज्जयिनी में गुप्त–साम्राज्य के स्कंधावार में घूमते स्कन्दगुप्त के स्वगत कथन से होती है जिसमें उसकी उदासीन मनःस्थिति के साथ ही गुप्त साम्राज्य के प्रति समर्पित भाव का पता लगता है। स्कन्द की उदासीनता और राजधानी अयोध्या में नित्य हो रहे परिवर्तनों से चिंतित गुप्त साम्राज्य के महानायक पर्णदत्त स्कन्द को अपने अधिकारों के प्रयोग और उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए प्रेरित करते हैं। स्कन्द, पर्णदत्त और चक्रपालित के संवादों से हूणों, पुष्यमित्रों और मलेच्छों के आक्रमण की सूचना मिलती है। इनकी पारस्परिक बातचीत में गुप्त सम्राट का सिंहासन हड़पने के लिए चल रहे षड्यंत्रों का भी संकेत है। दृश्य का अंत चक्रपालित के पुष्यमित्रों पर विजय अभियान और सकंद द्वारा दूत से मिले सन्देश के उपरान्त मालव राज्य की सहायता के निर्णय से होता है। दूसरा दृश्य कुसुमपुर के राजमंदिर में सम्राट कुमारगुप्त और उनकी परिषद् में घटित होता है। इस दृश्य में धातुसेन और मुद्गल के संवादों में हास्य–व्यंग्य की झलक है। मंत्री कुमारामात्य पृथ्वीसेन महाराज को मालव, हूणों, और पुष्यमित्रों के आक्रमण और संबंधित योजना से अवगत कराते हैं। इस दृश्य का अंत महारानी अनन्तदेवी द्वारा महाराज के लिए किये गये नृत्य–गायन और मदिरा–पान के प्रबंध से होता है। तृतीय दृश्य का आरम्भ पथ में मातृगुप्त के स्वगत कथन से है जिसमें वह कवि–कर्म की विडंबना और अपनी मातृभूमि कश्मीर से विलग होने के द्वंद्व से ग्रस्त दिखता है। इसके बाद मातृगुप्त–कुमारदास के पारस्परिक वार्तालाप से मगध–साम्राज्य में होने वाली भावी हलचल का संकेत है। चतुर्थ–पंचम दृश्य कई घटनाओं को अपने अंदर समाये हुए हैं। अनन्त देवी अपने प्रकोष्ठ में बौद्ध कापालिक प्रपंचबुद्धि, भटार्क और

शर्वनाग के साथ मिलकर महाराज कुमारगुप्त की मृत्यु के साथ ही स्कन्दगुप्त के स्थान पर पुरगुप्त को गुप्त–सम्राट बनाने का कुटिल षड्यंत्र रचती है। इन कार्यों का विरोध करने वाले गुप्त–साम्राज्य के सेवक दण्डनायक, महाप्रतिहार व पृथ्वीसेन, पुरगुप्त और भटार्क के धृष्टतापूर्वक व्यवहार से आहत होकर आत्मघात कर लेते हैं। छठे दृश्य में हूणों की बर्बरता का संकेत है। सप्तम दृश्य अवन्ती के दुर्ग से संबंधित है। स्कन्दगुप्त की सहायता पाकर मालव राज्य विदेशी आक्रान्ताओं से मुक्त होता है। इसी दृश्य में स्कन्दगुप्त विजया के प्रति आकर्षित होता है। गीतिमय और भावमय चरित्र देवसेना का भी इसी दृश्य में दर्शक/पाठक से परिचय होता है।

दूसरे अंक के पहले दृश्य की शुरूआत मालव में शिप्रा–तट–कुञ्ज पर देवसेना और विजया के वार्तालाप से होती है जिससे विजया का स्कन्द के प्रति आकर्षण भाव ज्ञात होता है किन्तु स्कन्द–चक्रपालित के वार्तालाप को सुनकर विजया को राज्य–प्राप्ति के प्रति स्कन्द की उदासीनता, अपनी महत्वाकांक्षा में बाधा दिखाई देती है। द्वितीय दृश्य में स्कन्द की सौतेली माता महारानी अनन्तदेवी के कहने पर मठ में प्रपंचबुद्धि, भटार्क और शर्वनाग स्कन्दगुप्त की माता और स्वर्गीय महाराज की बड़ी पत्नी देवकी की हत्या का षड्यंत्र रचते हैं। तृतीय दृश्य देवकी के मंदिर में शर्वनाग और उसकी पत्नी रामा की आपसी बहस से आरम्भ होता है जिसके द्वारा देवकी की सेविका रामा को मदिरा और महत्वाकांक्षा से उन्मत्त अपने पति की बातों से देवकी की हत्या के षड्यंत्र की भनक लग जाती है, वह शर्वनाग को समझाने का निष्फल प्रयास करती है। चतुर्थ दृश्य में देवकी और रामा बंदीगृह में हैं। अनन्तदेवी के आदेश के अनुरूप शर्वनाग देवकी की हत्या करने को तत्पर है, सहसा स्कन्दगुप्त, धातुसेन और मुद्‌गल के साथ पहुँचकर अपनी माता को बचा लेता है। पंचम दृश्य अवन्ति–दुर्ग का है जिसमें मालवनरेश बन्धुवर्मा अपने छोटे भाई भीमवर्मा के साथ सहमति से मालव–राज्य को स्कन्दगुप्त के नियंत्रण में देने का निर्णय लेता है। उसकी पत्नी जयमाला शुरू–शुरू में इसका विरोध करती है किन्तु देवसेना, भीमवर्मा और बंधुवर्मा के सम्मिलित विचार जानकर सहर्ष सहमत हो जाती है। छठा दृश्य पथ में भटार्क और उसकी माता कमला के आपसी वार्तलाप से शुरू होता है। कमला अपने पुत्र को गुप्त–साम्राज्य की प्रतिष्ठा के विरुद्ध किए गए अनैतिक कार्यों के लिए दुत्कारती है। यहीं पर विजया भटार्क के प्रति आकर्षित होती है। सातवें दृश्य में राजसभा में स्कन्दगुप्त अपने पिता के बड़े भाई गोविन्दगुप्त और माता देवकी की चरण–वंदना करता है। मालव–नरेश अपने राज्य को स्कन्दगुप्त के नेतृत्व में समर्पित कर देता है। स्कन्द को राजसिंहासन पर बिठाया जाता है। शर्वनाग और भटार्क को क्षमा कर दिया जाता है। विजया द्वारा भटार्क का वरण करने की सूचना पाकर स्कन्द आश्चर्यचकित होता है।

तृतीय अंक के पहले दृश्य में शिप्रा–तट पर प्रपंचबुद्धि और भटार्क के वार्तालाप के दौरान विजया और देवसेना पहुँचती हैं। दूसरे दृश्य में विजया ईर्ष्यावश देवसेना को धोखे से प्रपंचबुद्धि के पास उसकी बलि देने के लिए छोड़ आती है। बलि से पूर्व सहसा स्कन्दगुप्त आकर देवसेना को बचा लेता है। देवसेना और स्कन्द के आलिंगन में प्रसाद जी ने उनके पारस्परिक प्रेम का संकेत दिया है। तृतीय दृश्य मगध में अनन्तदेवी, पुरगुप्त, विजया और भटार्क के षड्यंत्रकारी वार्तालाप से शुरू होता है। अनन्तदेवी की पुरगुप्त को मगध–सम्राट बनाने की इच्छा अभी खत्म नहीं हुई है। बौद्धों को स्कन्द के विरुद्ध भड़काया जा रहा है। भटार्क हूण सेनापति खिंगिल से मिलकर आर्यावर्त को संकट में डाल रहा है। वहीं, भावी सम्राट पुरगुप्त भोग–विलास में लिप्त है। आम सैनिक भी इस षड्यंत्र को समझते हुए भटार्क का विरोध करते हैं। चतुर्थ दृश्य के अंतर्गत उपवन में जयमाला और देवसेना का वार्तालाप होता है। इसी दृश्य में मातृगुप्त को कश्मीर का शासक नियुक्त करने की सूचना है। पंचम और षष्ठ दृश्य क्रमशः गांधार

घाटी और दुर्ग के सम्मुख कुम्भा के रण–क्षेत्र से संबंधित हैं। स्कन्दगुप्त के नेतृत्व में हूणों से लड़ते–लड़ते बंधुवर्मा मृत्यु को प्राप्त होते हैं। भटार्क की हूणों के पक्ष में की गई कुटिल योजना के फलस्वरूप कुम्भा का बाँध तोड़ दिया जाता है, जिसके कारण हूण दुर्ग में प्रवेश कर जाते हैं और सैनिकों समेत स्कन्दगुप्त कुम्भा के जल में बह जाता है।

चतुर्थ अंक का पहला दृश्य, प्रकोष्ठ में विजया और अनन्तदेवी के वार्तालाप से शुरू होता है। अनन्तदेवी विजया को अपने पुत्र पुरगुप्त की रानी बनने का स्वप्न दिखलाती है लेकिन विजया भटार्क को छोड़कर 'क्षुद्र पुरगुप्त के विलास–जर्जर मन और यौवन में जीर्ण शरीर का अवलम्ब' नहीं लेना चाहती। क्षुब्ध अनन्तदेवी के कटु–बाणों से आहत विजया स्वगत–कथन में अपने अतुल धन और दिशा–भ्रमित अस्तित्व पर विचार कर ही रही होती है कि अचानक सैनिक वेश में आया शर्वनाग उसमें भटार्क की महत्वाकांक्षा के कारण हूणों के आतंक से घिरे गुप्त–साम्राज्य के कल्याण–मार्ग को स्वच्छ करने की प्रेरणा जगाता है। दूसरा दृश्य भटार्क के शिविर में हो रहे नृत्य–गायन से शुरू होता है। स्कन्दगुप्त की माता महारानी देवकी के साथ भटार्क की माँ कमला वहाँ पहुँचती हैं। देवकी अपने पुत्र स्कन्दगुप्त के विषय में भटार्क से पूछती है और उसका गैर–जिम्मेदाराना चिंतादायक उत्तर सुनकर प्राण त्याग देती है। इस घटनाक्रम से आहत अपनी माँ कमला के कटु–वचनों से लज्जित भटार्क शस्त्र–त्याग देता है और अपनी दुर्बुद्धि से फिर कभी कष्ट न पहुँचाने का संकल्प लेता है। तृतीय दृश्य में काश्मीर के न्यायाधिकरण में मातृगुप्त और वेश्या–रूप में उसकी प्रेमिका मालिनी की विचित्र स्थितियों में भेंट होती है, तभी मातृगुप्त को चर द्वारा स्कन्दगुप्त का कुछ भी पता न लगने और जल्द ही काश्मीर पर हूणों का आक्रमण होने का समाचार मिलता है : अपने भीतर और बाहर की विपरीत परिस्थितियों से मातृगुप्त हताश और निराश हो जाता है। चतुर्थ दृश्य के अंतर्गत नगर प्रान्त के पथ में धातुसेन और बौद्ध–भिक्षु प्रख्यातकीर्ति की बातचीत है जिसमें महान संस्कृति और प्राकृतिक सौन्दर्य वाले भारत में बौद्ध जनता और संघ के साम्राज्य के विरुद्ध होने का संकेत है। पाँचवाँ दृश्य भी इसी क्रम में है जिसमें ब्राह्मण और बौद्धों का संघर्ष दिखलाते हुए उन्हें मानव–धर्म का मूल पाठ धातुसेन और प्रख्यातकीर्ति के माध्यम से प्रसाद जी ने सिखाया है। षष्ठम दृश्य में पथ में विजया मातृगुप्त को भारत की महिमा के गीत गाने के लिए प्रेरित करती है, वहीं चक्रपालित और प्रख्यातकीर्ति भी आ जाते हैं। सप्तम दृश्य के अंतर्गत भटार्क की माता कमला की कुटी में विचित्र वेश में स्कन्दगुप्त का प्रवेश होता है। स्कन्दगुप्त अपने मन की भीतरी और बाहरी परिस्थितियों के कारण तीव्र द्वंद्व से ग्रस्त है। वहीं शर्वनाग हूणों के अत्याचार से पीड़ित और त्रस्त होकर उन्मत्त अवस्था में आता है। उसके बाद शर्वनाग की पत्नी रामा आती है, वह भी हूणों के अत्याचार के कारण पागलों जैसी स्थिति में पहुँच चुकी है। इन दोनों की दशा देखकर स्कन्दगुप्त का आंतरिक द्वंद्व और घना हो जाता है। किन्तु हताश और निराश स्कन्दगुप्त को कमला राष्ट्र–रक्षा के प्रति पुनः उत्साहित करती है।

पंचम अंक के पहले दृश्य के अंतर्गत पथ में मुद्गल और विजया के वार्तालाप से पता लगता है कि विजया अपने किए पर शर्मिंदा है और क्षमा के लिए स्कन्दगुप्त से मिलना चाहती है। इसी दृश्य में भटार्क के स्वगत–कथन में उसके अपराध–बोध और आत्म–ग्लानि को व्यक्त किया गया है। दूसरे दृश्य की शुरूआत में कनिष्क स्तूप के पास बनी महारानी देवकी की समाधि के पास पर्णदत्त भारत की दुर्दशा से चिंतित हैं। एक नागरिक से हुई पर्णदत्त की बातचीत में प्रसाद जी ने देश की जर्जर स्थिति से बेखबर युवकों के भोग–विलास पर व्यंग्य किया है। महारानी की समाधि पर देवसेना और स्कन्दगुप्त की भेंट होती है। स्कन्दगुप्त देवसेना के समक्ष अपनी प्रेममय भावनाओं को प्रकट करता है किन्तु देवसेना राष्ट्र–सेविका ही बनी रहना चाहती है। देवसेना के

इस भाव को देखकर स्कन्दगुप्त कुमार–जीवन व्यतीत करने का संकल्प लेता है। इसके बाद विजया अपने यौवन और अतुल्य धन के आकर्षण से स्कन्दगुप्त को लालायित करना चाहती है, जिसे स्कन्द ठुकरा देता है। विजया का पति भटार्क भी उसी समय वहाँ आ जाता है, जिसके कटु–वचन सुनकर विजया आत्महत्या कर लेती है। विजया के शव को धरती में गाड़ते समय भटार्क को विजया का रत्न–गृह प्राप्त हो जाता है जिसे वह सेना के संकलन में व्यय करने की बात स्कन्दगुप्त से कहता है। तृतीय दृश्य में स्तूप के पास पर्णदत्त और देवसेना नागरिकों से भीख माँगते हुए उन्हें हूणों के विरुद्ध एकजुट होने का सन्देश देते हैं। उनके साथ बदले हुए वेश में मातृगुप्त, भीमवर्मा, चक्रपालित, शर्वनाग, कमला, रामा आदि भी हैं। भीड़ में से स्कन्दगुप्त निकलता है और पर्णदत्त के समक्ष स्वयं को राष्ट्र–सेवा के लिए प्रस्तुत करता है। चतुर्थ दृश्य महाबोधि–विहार का है जिसमें अनन्तदेवी, पुरगुप्त, प्रख्यातकीर्ति और हूण सेनापति की बातचीत चल रही है। प्रख्यातकीर्ति हूणों की हिंसक नीति का तिरस्कार करता है जिससे अनन्तदेवी क्रुद्ध होती है। हूण सेनापति प्रख्यातकीर्ति का वध किया चाहता है, तभी धातुसेन सैनिकों सहित पहुँचकर प्रख्यातकीर्ति को बचा लेता है और बाकी सबको बंदी बना लेता है। पाँचवाँ दृश्य रणक्षेत्र का है, जिसमें स्कन्दगुप्त, भटार्क, चक्रपालित, पर्णदत्त, मातृगुप्त, भीमवर्मा आदि सेना के साथ 'हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार' उद्‌बोधन–गीत गाते हैं। हूण आक्रमणकारी खिंगिल और स्कन्दगुप्त के बीच घोर युद्ध में खिंगिल घायल हो जाता है। उसे बंदी बना लिया जाता है। स्कन्दगुप्त को बचाने में पर्णदत्त की मृत्यु हो जाती है। तभी धातुसेन के साथ आये बंदी वेश में पुरगुप्त और अनन्तदेवी स्कन्दगुप्त से क्षमा माँगते हैं। स्कन्द पुरगुप्त को युवराज बना देता है और खिंगिल को चेतावनी देकर छोड़ देता है। षष्टम दृश्य इस अंक का और नाटक का भी अंतिम दृश्य है। उद्यान में देवसेना के स्वगत कथन और उसके द्वारा गाये गीत 'आह वेदना मिली विदाई' में देवसेना की पीड़ा झलकती है। स्कन्दगुप्त और देवसेना की भावुक भेंट में देवसेना स्कन्दगुप्त से विदा माँगती है, स्कन्द न चाहते हुए भी उसको विदा देता है। इसी के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। नाटक का आरम्भ भी स्कन्दगुप्त के स्वगत कथन से होता है और नाटक के अंत में हम स्कन्दगुप्त को अकेला पाते हैं।

6.4 'स्कन्दगुप्त' की कथावस्तु में इतिहास और कल्पना का संयोजन

'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का मुख्य आधार गुप्त–काल की घटनाएँ हैं। नाटक की कथावस्तु के संयोजन में प्रसाद जी ने इतिहास के साथ अनुमान और कल्पना का सहारा भी लिया है। नाटक की भूमिका में उन्होंने लिखा है – "पात्रों की ऐतिहासिकता के विरुद्ध चरित्र की सृष्टि, जहाँ तक संभव हो सका, नहीं होने दी गई है। फिर भी कल्पना का अवलम्ब लेना ही पड़ा है, केवल घटना की परम्परा ठीक करने के लिए।"

प्रस्तुत नाटक की विस्तृत भूमिका में जयशंकर प्रसाद ने स्कन्दगुप्त से सम्बन्धित विभिन्न शिलालेखों, ताम्रपत्रों और प्राचीन ग्रंथों का उल्लेख किया है। साथ ही, स्कन्दगुप्त के सम्बन्ध में उस समय के विभिन्न इतिहासकारों : स्मिथ, राखालदास बंद्योपाध्याय, हरप्रसाद शास्त्री, जायसवाल आदि के उपलब्ध मतों का उल्लेख करते हुए अपनी बात को पुष्ट आधार प्रदान किया है। इस विस्तृत भूमिका के एक अंश को, जो 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का मुख्य आधार भी है, यहाँ हम उद्धृत कर रहे हैं – "इतिहास में सम्राट कुमारगुप्त की उपाधि महेंद्रादित्य प्रसिद्ध है। इसके चाँदी के सिक्कों पर "परम भागवत महाराजाधिराज श्री कुमार गुप्त महेन्द्रादित्य" स्पष्ट लिखा मिलता है। इसी के समय में मालव के स्वतंत्र नरेश विश्ववर्म्मा के पुत्र बन्धुवर्म्मा ने अधीनता स्वीकार कर

ली। विक्रमाब्द ४८० तक गंगधार के शिलालेख द्वारा मालव का स्वतंत्र रहना प्रमाणित हैय परन्तु, ५२६ विक्रमाब्द वाले मंदसोर के शिलालेख में ४६३ विव में कुमारगुप्त की सार्वभौम सत्ता मान ली गई। इससे प्रतीत होता है कि इसी काल में मालव गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित हुआ। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में नरवर्म्मा और विश्ववर्म्मा मालव के स्वतंत्र नरेश थे। कुछ लोगों का अनुमान है कि नर्मदा के निकटवर्ती पुष्यमित्रों ने जब गुप्त साम्राज्य से युद्ध प्रारम्भ किया था तभी कुमार स्कन्दगुप्त के नेतृत्व में गुप्त साम्राज्य की सेना ने उज्जयिनी पर अधिकार किया। इन्हीं स्कन्दगुप्त का सिक्कों में 'परम भागवत श्री विक्रमादित्य स्कन्दगुप्त' के नाम से उल्लेख मिलता है। इनके शिलालेख से प्रकट है कि कुललक्ष्मी विचलित थी। म्लेच्छों और हूणों से आर्यावर्त्त आतंकित था। अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए इन्होंने पृथ्वी पर सोकर रातें बिताईं। हूणों के युद्ध में जिसके पराक्रम से धरा विकंपित हुई, जिसने सौराष्ट्र के शकों का मूलोच्छेद करके पर्णदत्त को वहाँ का शासक नियत किया वे स्कन्दगुप्त ही थे, जूनागढ़वाले लेख में इसका स्पष्ट उल्लेख है। स्कन्दगुप्त की प्रशंसा में उसमें लिखा है :

"आपिच जितमिव तेन प्रथयन्ति यशांसि यस्य

रिपवोप्यामूल भग्नदर्पा निर्वचनाम्लेच्छदेशेषु"

पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने 'सुदर्शन झील' का संस्कार कराया था, उससे अनुमान होता है कि अंतिम शक क्षत्रप रुद्रसिंह की पराजय वाली घटना ईस्वी सन् ४५७ के करीब हुई थी। स्कन्दगुप्त को सौराष्ट्र के शकों और तोरमाण के पूर्ववर्ती हूणों से लगातार युद्ध करना पड़ा। इधर वैमातृक भाई पुरगुप्त से आंतरिक द्वंद्व भी चल रहा था। उस समय की विचलित राजनीति को स्थिर करने के लिए प्राचीन राजधानी पाटलिपुत्र या अयोध्या से दूर एक केंद्र स्थल में अपनी राजधानी बनाना आवश्यक था। इसलिए वर्तमान मालव की मौर्यकाल की अवंती नगरी को ही स्कन्दगुप्त ने अपने साम्राज्य का केंद्र बनाया और शक तथा हूणों को परास्त करके उत्तरीय भारत से हूण तथा शकों का राज्य 'निर्मूल कर विक्रमादित्य' की उपाधि ग्रहण की।"

प्रसाद जी द्वारा लिखित भूमिका के उपर्युक्त अंश से स्पष्ट हो जाता है कि 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु में आये कई महत्वपूर्ण प्रसंग व घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। स्कन्दगुप्त के नेतृत्व में शकों और हूणों की पराजय, राष्ट्र–रक्षा के लिए स्कन्दगुप्त का संघर्ष करना, मालव राज्य का स्कन्दगुप्त के नेतृत्व में सम्मिलित होना, सौतेले भाई पुरगुप्त के साथ आंतरिक द्वंद्व का होना आदि ने इस नाटक की कथावस्तु को प्रबल ऐतिहासिक आधार प्रदान किया है।

कथावस्तु के कुछ प्रसंगों को प्रसाद जी ने अनुमान के आधार पर सृजित किया है। 'स्कन्दगुप्त' को नाटकीय कलेवर प्रदान करने के लिए प्रसाद जी ने गुप्त–कुल के अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम को सूत्र रूप में पकड़ा है और उसके अनुमान के आधार पर कई नाट्य प्रसंगों की सृष्टि की है। स्कन्दगुप्त की माता देवकी से जुड़े प्रसंग इसी श्रेणी में आते हैं। इतिहास में पुरगुप्त की माता अनन्तदेवी का उल्लेख मिलने का संकेत भी प्रसाद जी ने भूमिका में किया है। अनन्तदेवी से जुड़े प्रसंगों को प्रसाद जी ने कथावस्तु में तनाव और संघर्ष के निर्माण के लिए कल्पित कर लिया है।

देवसेना, विजया, जयमाला, कमला, रामा आदि नारी पात्रों से सम्बन्धित समस्त प्रसंग काल्पनिक ही हैं। कथावस्तु की रोचकता और विश्वसनीयता बनाये रखने के साथ चरित्रों के अंतर्द्वंद्व को उभारने के लिए प्रसाद जी ने इन प्रसंगों को बुना है। स्कन्दगुप्त के व्यक्तिगत आत्म–संघर्ष को उभारने में भी देवसेना और विजया जैसे चरित्रों से संबंधित प्रसंग सहायक हुए हैं। स्कन्दगुप्त के व्यक्तित्व में प्रेम, अवसाद और निराशा का समावेश प्रसाद जी की काल्पनिक उपज है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जयशंकर प्रसाद ने भारतीय इतिहास के गुप्त–काल से स्रोत ग्रहण करते हुए अपनी समृद्ध कल्पना–शक्ति के द्वारा 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का संयोजन किया है।

6.5 कथावस्तु का विश्लेषण

6.5.1 अंक दृश्य योजना

स्कन्दगुप्त' नाटक एक विशालकाय नाटक है। इस नाटक में आए दीर्घ अवधि के घटना–प्रसंगों के कारण इसे 'महाकाव्यात्मक' नाटक भी कहा जाता है। प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु पाँच अंकों में विभाजित है और ये पाँच अंक कुल तैंतीस दृश्यों में विभाजित हैं। प्रथम अंक में सात दृश्य, द्वितीय अंक में सात दृश्य, तृतीय अंक में छह दृश्य, चतुर्थ अंक में सात दृश्य और पंचम अंक में छह दृश्य हैं।

6.5.2 भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि से कथावस्तु का विकास

भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटक की कथावस्तु के विकास के विभिन्न चरणों को अर्थ–प्रकृतियों, कार्यावस्थाओं और संधियों में विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार हैं :

अर्थ–प्रकृति : वे चमत्कार–युक्त अंश जो कथावस्तु को फल–प्राप्ति या नाटक के अंत की ओर ले जाते हैं, उन्हें अर्थ प्रकृति कहा गया है। ये पाँच प्रकार की मानी गई हैं :

1. बीज
2. बिंदु
3. पताका
4. प्रकरी
5. कार्य

कार्यावस्था : नाटक के कार्य–व्यापार की दृष्टि से कथावस्तु की जो अवस्थाएँ होती हैं, उन्हें कार्यावस्था कहा जाता है। इनकी संख्या भी पाँच मानी गई है :

1. आरम्भ
2. प्रयत्न
3. प्राप्त्याशा
4. नियताप्ति
5. फलागम

संधि : नाटक की कथावस्तु में अर्थ–प्रकृतियों और अवस्थाओं के संयोग को संधि कहा जाता है। इनकी संख्या भी पाँच मानी गई है :

1. मुख
2. प्रतिमुख
3. गर्भ
4. विमर्श
5. निर्वहण

पाश्चात्य नाट्यशास्त्र कथावस्तु के विकास को : आरम्भ, विकास, चरम सीमा और अंत– इन अवस्थाओं में विभाजित करके विश्लेषण करता है:

'स्कन्दगुप्त' नाटक में कथावस्तु के विकास की उपरोक्त अवस्थाओं का निर्वाह प्रसाद जी ने कुशलतापूर्वक किया है। डॉ. दशरथ ओझा ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु

के विकास का विश्लेषण भारतीय और पाश्चात्य दोनों दृष्टियों से किया है। उनका मत यहाँ उद्धृत किया जा रहा है–

''इस नाटक में कार्यावस्था, अर्थ–प्रकृति तथा संधियों का निर्वाह एवं रस का परिपाक सम्यक् रीति से हुआ है। नाटक में प्रत्येक अंक का आरम्भ आकर्षक और मनोहारी तो है ही, प्रत्येक अंक की परिसमाप्ति भी ऐसे प्रभावशाली स्थलों पर होती है जो लक्ष्य की ओर बढ़ने में स्वाभाविक विश्रामगृह का कार्य करते है। प्रत्येक अंक के अंत में पाठक को ऐसी शान्ति मिलती है मानो वह जीवन–यात्रा के एक ऐसे पड़ाव पर पहुँच जाता है, जहाँ किसी न किसी दिव्य रूप का दर्शन उसे मिल जाता है। 'स्कन्दगुप्त' के दो अंक प्रारम्भ और प्रयत्न नामक कार्यावस्था तथा अंग्रेजी शैली के प्रारम्भ और विकास को सूचित करते हैं। तीसरे अंक की परिसमाप्ति तक लक्षण–ग्रंथों के अनुसार प्राप्त्यावस्था स्थापित हो जानी चाहिए, किन्तु इस नाटक में प्राप्त्यावस्था स्पष्ट न करके प्रसाद ने पाश्चात्य शैली की चरम सीमा ही का निर्वाह किया। इस स्थल पर स्कन्दगुप्त, कष्ट, विरोध और अनिष्ट की पराकाष्ठा तक पहुँच गया है। इसी प्रकार चौथे अंक में फल–प्राप्ति को सुदृढ़ निश्चय की ओर प्रेरित हो जाना चाहिए, किन्तु इस अंक के अंत तक एकाकी स्कन्दगुप्त को निस्सहाय रूप में ही दिखाया गया है। उसकी समस्त शक्तियाँ विश्रृंखल पड़ी हैं, प्रबल विरोधी संघदल विदेशी हूणों से अभिसंधि द्वारा गुप्त–साम्राज्य की जड़ हिला देने को सन्नद्ध है। यद्यपि विजया और अनन्तदेवी में परस्पर मनोमालिन्य की सृष्टि से कलह के कारण विरोधी दल की शक्ति के क्षीण होने का संकेत मिलता है, और इस प्रकार नियताप्ति का प्रच्छन्न प्रतिपादन किया गया है, किन्तु पाश्चात्य शैली की नियति भारतीय नियताप्ति की अपेक्षा अधिक स्पष्ट झलक उठती है।

नाटक के पंचम अंक में विरोधी शक्तियाँ छिन्न–भिन्न हो जाती हैं। समस्त विरोधी वर्ग क्षमा–याचना करता है और भारत का अन्तर्विद्रोह एवं बाह्य विद्रोह शान्त हो जाता है बंदी खिंगिल मुक्त कर दिया जाता है और वह सिन्धु नद के इस ओर न आने की प्रतिज्ञा करता है। गुप्त–साम्राज्य सुरक्षित हो जाता है। त्यागवीर स्कन्द युद्ध में ही पुरगुप्त को रक्त का तिलक देकर सम्राट घोषित करता है। इस प्रकार 'फल–प्राप्ति' की स्थिति प्रभावोत्पादक सिद्ध होती है।

तात्पर्य यह है कि वस्तु–विन्यास की दृष्टि से प्रसाद के इस नाटक में यूरोपीय और भारतीय नाट्यकलाओं का सहज समन्वय है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'स्कन्दगुप्त' का प्रथम अंक 'आरम्भ' के अंतर्गत आएगा क्योंकि इस अंक में नाटककार प्रसाद ने गुप्त–कुल की कलह, स्कन्दगुप्त के अकेलेपन और उसके द्वारा राष्ट्र–रक्षा के लिए किए जा रहे प्रयत्न, विदेशी शक्तियों के आक्रमण के संकेत के साथ लगभग सभी पात्रों का परिचय भी दर्शक/पाठक से करवा दिया है। दूसरे अंक को 'विकास' के अंतर्गत गिना जाएगा, इसमें प्रथम अंक की सारी घटनाएँ गति पकड़ती हैं। तीसरा अंक 'संघर्ष' का परिचायक है जिसमें षड्यंत्रकारी शक्तियों के कुचक्रों के कारण स्कन्दगुप्त की हार हो जाती है। चौथे अंक में सैन्य–संगठन से फल–प्राप्ति की ओर बढ़ने लगते हैं जिसकी परिणति पंचम अंक में हूणों की हार में होती है। पुरगुप्त और अनन्तदेवी के पश्चाताप के बाद स्कन्दगुप्त द्वारा पुरगुप्त को गुप्त साम्राज्य का उत्तराधिकारी बनाने के बाद स्कन्दगुप्त और देवसेना की पारस्परिक विदा के साथ नाटक का अंत हो जाता है।

नाटककार जयशंकर प्रसाद ने भारतीय और पाश्चात्य नाट्यशास्त्र का गहराई से अध्ययन किया था। इसी के फलस्वरूप 'स्कन्दगुप्त' नाटक में भारतीय और पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में वर्णित कथावस्तु के विकास की दशाएँ सहजता से देखने को मिल जाती हैं।

6.5.3 आधिकारिक और प्रासंगिक कथावस्तु

भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटक की कथावस्तु के मुख्यतः दो भेद – आधिकारिक और प्रासंगिक मिलते हैं। आधिकारिक कथा मुख्य कथा होती है जो नाटक के आरम्भ से लेकर अंत तक चलती है। प्रासंगिक कथा, वह कथा होती है जो नाटक के बीच में शुरू होकर नाटक के अंत से पहले ही समाप्त हो जाती है। प्रासंगिक कथा की सृष्टि आधिकारिक कथा को गति देने के लिए ही की जाती है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में स्कन्दगुप्त से सम्बन्धित सारे प्रसंग और घटनाएँ –पुरगुप्त को सम्राट बनाने के लिए विमाता अनन्तदेवी के षड्यंत्र, देवसेना संबंधी प्रसंग, शकों और हूणों के साथ हुए युद्ध और व्यक्तिगत द्वंद्व –ये सब आधिकारिक कथा के अंतर्गत आएँगे। बंधुवर्मा का उत्सर्ग, भटार्क की महत्वाकांक्षा और उसकी माता कमला का प्रसंग, विजया का प्रसंग, शर्वनाग–रामा प्रसंग, मातृगुप्त आदि पात्रों से सम्बन्धित प्रसंग प्रासंगिक कथा के अंतर्गत गिने जाएँगे। ये सभी प्रसंग कहीं–न–कहीं स्कन्दगुप्त से ही जुड़ते हैं, अतः मुख्य आधिकारिक कथा के विकास में सहायक बनते हैं।

6.5.4 दृश्य और सूच्य घटनाएँ

नाटक के अंतर्गत वे घटना–प्रसंग जो मंच पर सहजता से दिखलाए जा सकते हैं, उन्हें दृश्य घटनाएँ कहा जाता है। वहीं दूसरी ओर, नाटक की विधागत प्रकृति ऐसी होती है कि उसमें सभी घटनाओं को मंच पर दिखलाया जाना संभव नहीं हो सकता। इसीलिए कुछ घटनाओं की केवल सूचना दी जाती है। यह सूचना पात्रों के आपसी संवादों या नेपथ्य के माध्यम से दी जाती है– ऐसी घटनाओं को सूच्य घटनाएँ कहा जाता है। नाटककार जयशंकर प्रसाद भी नाटक के इस तत्व से भली–भाँति परिचित थे। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में प्रसाद जी ने दृश्य और सूच्य घटनाओं का सुन्दर समावेश किया है।

'स्कन्दगुप्त' नाटक की दृश्य घटनाओं के अंतर्गत वह सारा कार्य–व्यापार आता है जो मंच पर प्रस्तुत होने के लिए है। विभिन्न पात्रों का प्रवेश और प्रस्थान, उनके अभिनय के संबंध में प्रसाद जी द्वारा कोष्ठकों में दिये गये संकेत, प्रत्येक दृश्य के आरम्भ में उस दृश्य–स्थल के संबंध में दिये गये रंग संकेत इसी के अंतर्गत आते हैं। उदाहरणतः उज्जयिनी के गुप्त साम्राज्य का स्कंधावार, राजसभा, पथ, श्मशान, युद्ध–भूमि आदि– इन सबको मंचीय–प्रस्तुति में उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप मंच पर दिखलाया जा सकता है।

'स्कन्दगुप्त' नाटक में कई स्थलों पर सूच्य घटनाओं को भी प्रसाद जी ने शामिल किया है। प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में चर और दूत के संवादों के माध्यम से पुष्यमित्रों और शकों के आक्रमण संबंधी सूचना कथावस्तु के सूच्य अंश में ही आएगी। उदाहरणतः–

"पर्णदत्त : वलभी का क्या समाचार है?

दूत – वलभी का पतन अभी रुका है। किन्तु बर्बर हूणों से उसका बचना कठिन है। मालव की रक्षा के ली महाराज बन्धुवर्मा ने सहायता माँगी है। दशपुर की समस्त सेना सीमा पर जा चुकी है।"

सूच्य घटना का ऐसा ही एक उदाहरण तृतीय अंक के तृतीय दृश्य में देखने को मिलता है जब मगध में अनन्तदेवी, पुरगुप्त, भटार्क और विजया के सामने एक सैनिक कुसुमपुर की सेना के जालन्धर से आगे बढ़ने और साम्राज्य के स्कंधावार में उसके शीघ्र ही पहुँचने की आशंका का समाचार लेकर आता है।

इस प्रकार के सूच्य अंशों से कथावस्तु से संबंधित घटनाओं की पृष्ठभूमि निर्मित होती है और दर्शक/पाठक को हो चुकी घटनाओं की जानकारी भी मिलती है।

इसी प्रकार प्रथम अंक के पंचम दृश्य में सम्राट कुमारगुप्त की हत्या को भी विभिन्न पात्रों के आपसी संवादों के माध्यम से सूचित किया गया है। इन संवादों और पात्रों के नाट्य–व्यापार द्वारा हत्या जैसे भीषण कृत्य की भयावहता को प्रसाद जी ने बड़ी कुशलता से कथावस्तु में व्यंजित किया है।

'स्कन्दगुप्त' की कथावस्तु में आये युद्ध संबंधी सभी अंशों को प्रसाद जी ने कोष्ठकों में लिखा है। नाटक के प्रदर्शन के समय इन अंशों को मंच पर न दिखाकर नेपथ्य या किसी अन्य युक्ति का इस्तेमाल करते हुए दर्शक तक सूचना रूप में संप्रेषित किया जा सकता है।

6.5.5 विविध नाटकीय युक्तियों का प्रयोग

नाटक की कथावस्तु को रोचक और गतिमान बनाने के लिए नाटककारों द्वारा विभिन्न प्रकार की नाटकीय युक्तियों का प्रयोग किया जाता है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु में भी इस प्रकार की नाट्य–युक्तियाँ देखने को मिलती हैं।

घटनाओं की नाटकीय गति बनाये रखने के लिए प्रसाद जी ने कई दृश्यों में पात्रों के सहसा प्रवेश का विधान रखा है जिससे चल रहा घटना–व्यापार एकदम से परिवर्तित हो जाता है। जैसे आप नाटक का वाचन करने की प्रक्रिया में देखेंगे कि तृतीय अंक के द्वितीय दृश्य में जब विजया ईर्ष्या के कारण देवसेना को प्रपंचबुद्धि के पास श्मशान में उसकी बलि देने के लिए छोड़ आती है तभी अचानक से स्कन्दगुप्त, मातृगुप्त के साथ आकर देवसेना के प्राणों की रक्षा करता है।

प्रसाद जी ने 'स्कन्दगुप्त' के कथावस्तु में चमत्कारिक प्रसंगों के नाटकीय युक्ति भी अपनाई है। पंचम अंक के दूसरे दृश्य में विजया द्वारा आत्मघात किए जाने के बाद स्कन्दगुप्त भटार्क को उसके अंतिम संस्कार के लिए कहता है। भटार्क जब विजया के शव को जमीन में गाड़ने के लिए भूमि खोदने लगता है तब सहसा भयानक शब्द होता है और उसे विजया द्वारा छिपाया हुआ रत्न–गृह प्रकट होता है, जिसे सेना संकलन के लिए प्रयोग करने की बात भटार्क कहता है।

'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु को रोचक बनाये रखने के लिए प्रसाद जी ने हास्य की युक्तियों की भी सर्जना की है। प्रथम अंक के षष्ठ दृश्य में नगर–प्रांत के पथ में मुद्गल और मातृगुप्त के पारस्परिक संवादों से हास्य की छटा बिखेरी गई है। मातृगुप्त मनोविनोद के लिए कौतुकवश कपड़े से अपना मुँह ढँककर, बैठकर ऊँघ रहे मुद्गल की गठरी खींचकर चलने का प्रयास करता है।

"मुद्गल – (उठकर) ठहरो भाई, हमारे जैसे साधारण लोग अपनी गठरी आप ही धोते हैं, तुम कष्ट न करो।

(मातृगुप्त चक्कर काटता है। मुद्गल पीछे–पीछे दौड़ता है)

मातृगुप्त – (दूर खड़ा होकर) अब आगे बढ़े कि तुम्हारी टाँग टूटी!

मुद्गल – अपनी गठरी बचाने में टाँग टूटना बुरा नहीं, अपशकुन नहीं। तुम यह न समझना कि हम दूर चलते–चलते थक गये हैं। तुम्हारा पीछा न छूटेगा। हम ब्राह्मण हैं, हमसे शास्त्रार्थ कर लो। डंडा न दिखाओ। हाँ, मेरी गठरी जो तुम लेते हो, इसमें कौन–सा न्याय है? बोलो –

मातृगुप्त – न्याय? तब तो तुम आप्तवाक्य अवश्य मानते होगे।

मुद्गल – अच्छा तो तर्कशास्त्र लगाना पड़ेगा?

मातृगुप्त – हाँ, तुमने गीता तो पढ़ी होगी?

मुद्गल – हाँ अवश्य, ब्राह्मण और गीता न पढ़े!

मातृगुप्त – उसमें लिखा है कि "न त्वेवाहं जातु नोसौ न त्वं नेमे" दृ न हम हैं, न तुम हो, न यह वास्तु है, न तुम्हारी है, न हमारी – फिर इस छोटी–सी गठरी के लिए इतना झगड़ा!

मुद्गल – ओहो! तुम नहीं समझे!

मातृगुप्त – क्या?

मुद्गल – गीता सुनने के बाद क्या हुआ?

मातृगुप्त – महाभारत!

मुद्गल – तब भइया, इस गठरी के लिए महाभारत का एक लघु संस्करण हो जाना आवश्यक है। गठरी में हाथ लगाया कि डंडा लगा।

(डंडा तानता है)

मातृगुप्त– मुद्गल, डंडा मत तानो, मैं वैसा मूर्ख नहीं कि सूच्यग्र–भाग के लिए दूध और मधु से बना हुआ एक बूँद भी रक्त गिराऊँ !"

इस पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि इससे पूर्व के दृश्य में प्रसाद जी ने सम्राट कुमारगुप्त की हत्या को सूचित किया था। अति–गंभीरता से नाटक कहीं बोझिल न हो जाए, संभवतः इसी कारण प्रसाद जी ने अगले ही दृश्य के थोड़े–से अंश में हास्य का विधान रखा है।

इसी प्रकार की हास्य–छटा तृतीय अंक के चतुर्थ दृश्य में मातृगुप्त और देवसेना के संवादों में भी रखी गई है।

प्रसाद जी ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक के विभिन्न अंकों के विभिन्न दृश्यों में कई गीतों की योजना के साथ ही दो दृश्यों में नृत्य की भी योजना की है, जिनसे इस नाटक की कथावस्तु की रोचाकत में वृद्धि हुई है। प्रस्तुत नाटक में एकालाप या स्वगत कथनों की युक्ति से पात्रों के भीतरी संघर्ष को उभारने में मदद मिली है।

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उपर्युक्त नाटकीय युक्तियों के यथाप्रसंग समावेश से 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु प्रभावशाली बन पड़ी है।

6.5.6 संकलन–त्रय का निर्वाह

किसी भी नाटक में कथावस्तु को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए समय, स्थान और कार्य की एकता का काफी महत्त्व होता है। नाटक की भाषा में इसे 'संकलन–त्रय' भी कहा जाता है।

जयशंकर प्रसाद के अधिकांश नाटक 'संकलन–त्रय' के निर्वाह की दृष्टि से कमजोर माने जाते रहे हैं। 'स्कन्दगुप्त' नाटक भी इससे बच नहीं पाया है। इस नाटक की कथावस्तु का घटना–व्यापार अत्यधिक लंबा और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित होने के कारण प्रसाद जी संकलन–त्रय का पूरी तरह निर्वाह नहीं कर पाये हैं। यह 'स्कन्दगुप्त' की सीमा भी है और इस नाटक को मंचित करने वाले रंगकर्मियों के लिए समस्या भी है। इसी कारण लम्बे समय तक रंगकर्मी इस नाटक के मंचन से बचते भी रहे। 'स्कन्दगुप्त' में आवश्यक संशोधन करते हुए इसे सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने वाली निर्देशिका शांता गाँधी ने इसकी दृश्य–योजना के विषय में लिखा है कि "... प्रत्येक दृश्य का नाटकीय स्थल भिन्न है। नाटक का कार्य–व्यापार, दृश्य बदलते ही सैंकड़ों मील दूर पहुँच जाता है।" (जयशंकर प्रसाद–रंगसृष्टि/रंगमंच के लिए नाटक, महेश आनंद) वस्तुतः 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का विस्तार उज्जयिनी, कुसुमपुर, मगध, अवन्ति दुर्ग की राजसभाएँ व प्रकोष्ठ, बन्दी–गृह, गांधार की घाटी का रण–क्षेत्र, कुम्भा का रण–क्षेत्र, भटार्क का शिविर, मालव में शिप्रा–तट कुंज, उपवन, नगर–प्रान्त का पथ, श्मशान, मठ, बोधि–विहार, बौद्ध–स्तूप आदि तक फैला हुआ है। प्रसाद जी

ने इस नाटक में लगभग सभी अंकों के विभिन्न दृश्यों का स्थल अलग–अलग रखा है। उदाहरण के लिए, प्रथम अंक का पहला दृश्य उज्जयिनी में गुप्त साम्राज्य के स्कन्धावार, दूसरा दृश्य कुसुमपुर के राज–मंदिर में सम्राट कुमारगुप्त और उनकी परिषद्, तीसरा दृश्य पथ में मातृगुप्त, चौथा अनन्तदेवी के सुसज्जित प्रकोष्ठ, पाँचवाँ अन्तःपुर के द्वार, छठा नगर–प्रान्त के पथ, सातवाँ अवन्ति के दुर्ग से सम्बन्धित है। इन सभी दृश्यों में स्थान और समय की अत्यधिक दूरी है, जिससे नाटक के कार्य–व्यापार की एकता भंग होने का खतरा लगातार बना रहता है। दूसरे अंकों की स्थिति भी लगभग ऐसी ही है। प्रस्तुत नाटक को पढ़ते समय तो यह स्थिति अधिक बाधा उत्पन्न नहीं करती किन्तु इसी दृश्य–क्रम में नाटक को मंचित करते समय रंगकर्मियों के सामने समस्या आ खड़ी होती है, जिसके समाधान के लिए उन्हें 'स्कन्दगुप्त' नाटक के मूल पाठ से अलग संपादित–संशोधित मंचीय आलेख तैयार करना पड़ता है।

वस्तुतः प्रसाद ने राष्ट्रीय–सांस्कृतिक मूल्यों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु में विस्तृत घटना–व्यापार का सहारा लिया है, काल्पनिक प्रसंगों और चरित्रों की सृष्टि भी की है। उनका ध्यान इस नाटक के उद्देश्य पर रहा, इसलिए संकलन–त्रय का निर्वाह शिथिल हो गया है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक के संशोधित आलेख को सफलतापूर्वक मंच पर उतारने वाले ब. व. कारंत इसी बात को ध्यान में रखते हुए कहते हैं –"... प्रसाद के नाटकों को महाकाव्यात्मक अवधारणा के अंतर्गत देखना चाहिए। एक साथ कई घटनाएँ होती हैं, कई स्थानों पर, और उनकी 'ईको' (प्रतिध्वनि) एक–दूसरे पर होती है। इस तरह मैंने स्थान और काल की अन्विति का उपयोग किया है या यह अन्विति स्थापित कर पाया हूँ।"

सुधि रंगकर्मियों ने संकलन–त्रय की सीमा की तुलना में इस नाटक के महत् उद्देश्य को समझते हुए और युगीन प्रासंगिकता के अनुरूप युक्तियुक्त संशोधन करते हुए 'स्कन्दगुप्त' को मंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

6.6 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु में द्वंद्व

जैसाकि आप जान चुके हैं कि 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु अनेक स्थितियों पर आधारित है। इस नाटक में चरित्रों के साथ ही राजनीति, धर्म और जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित द्वंद्व देखने को मिलता है। सुविधा की दृष्टि से हम इस नाटक की कथावस्तु को –आंतरिक और बाह्य द्वंद्व की दृष्टि से समझने का प्रयास करेंगे।

6.6.1 आंतरिक द्वंद्व

'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु के अंतर्गत कई स्थल ऐसे हैं जिनमें चरित्र परिस्थितियों के वशीभूत होकर अंतर्द्वन्द्व से ग्रस्त दिखाई पड़ते हैं। नाटक का प्रमुख पात्र स्कन्दगुप्त अपनी पारिवारिक स्थितियों के अंतर्गत विमाता अनन्तदेवी के द्वेषपूर्ण व्यवहार और षड्यंत्रों के कारण 'क्या करूँ और क्या न करूँ' के द्वंद्व में फँसा दिखता है। स्कन्दगुप्त के अंतर्द्वंद्व का एक अन्य मुख्य कारण पहले विजया और फिर देवसेना का विलग हो जाना भी है, क्योंकि इन दोनों के प्रति स्कन्दगुप्त में आकर्षण और प्रेम का भाव जगा था। गुप्त साम्राज्य की अंदरूनी कलह के साथ ही विदेशी आक्रान्ताओं का हमला भी स्कन्दगुप्त के भीतरी द्वंद्व का कारण है। स्कन्दगुप्त के निम्न संवाद से उसकी तनावग्रस्त मनःस्थिति को समझा जा सकता है–

"बौद्धों का निर्वाण, योगियों की समाधि और पागलों की–सी सम्पूर्ण विस्मृति मुझे एक साथ चाहिए। चेतना कहती है कि तू राजा है, और उत्तर में जैसे कोई कहता है कि तू खिलौना है –उसी खिलवाड़ी बटपत्रशायी बालकों के हाथ का खिलौना है। तेरा मुकुट श्रमजीवी से भी तुच्छ है।

करुणा–सहचर! क्या जिस पर कृपा होती है, उसी को दुःख का अमोघ दान देते हो? नाथ! मुझे दुखों से भय नहीं, संसार के संकोचपूर्ण संकेतों की लज्जा नहीं। वैभव की जितनी कड़ियाँ टूटती हैं, उतना ही मनुष्य बन्धनों से छूटता है और तुम्हारी ओर अग्रसर होता है! परन्तु ... यह ठीकरा इसी सिर फूटने को था! आर्य–साम्राज्य का नाश इन्हीं आँखों को देखना था! हृदय काँप उठता है, देशाभिमान गरजने लगता है। मेरा स्वत्व न हो, मुझे अधिकार की आवश्यकता नहीं। यह नीति और सदाचारों का महान आश्रय वृक्ष– गुप्त–साम्राज्य – हरा–भरा रहे, और कोई भी इसका उपयुक्त रक्षक हो। ओह! जाने दो, गया, सब कुछ गया! मन बहलाने की कोई वस्तु न रही। कर्तव्य–विस्मृत्य भविष्य –अन्धकारपूर्ण, लक्ष्यहीन दौड़ और अनन्त सागर का सन्तरण है!"

स्कन्दगुप्त के अलावा मातृगुप्त, समाज में कवि को सम्मान न मिलने, प्रेयसी मालिनी के वेश्या बन जाने की पीड़ा और सत्ता मिल जाने के बाद विदेशी आक्रमणों से मची उथल–पुथल के कारण हताश और निराश होकर अंतर्द्वंद्व के वशीभूत हो जाता है। भटार्क अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए किए गए कुकृत्यों से मची तबाही के अपराध–बोध से ग्रस्त होता है।

नारी पात्रों में देवसेना स्कन्दगुप्त के साथ अपने सम्बन्ध को लेकर द्वन्द्वग्रस्त है। वह हृदय की गहराइयों से स्कन्द से प्रेम करती है किन्तु मालव राज्य के प्रति निष्ठा के कारण प्रकट नहीं कर पाती। नाटक के अंत में स्कन्द को पाकर भी उससे विलग हो जाती है। कमला अपने पुत्र भटार्क द्वारा किए गए गुप्त–साम्राज्य विरोधी कार्यों से उपजे व्यर्थता–बोध से ग्रस्त है। विजया अपनी महत्वाकांक्षा के कारण आंतरिक द्वंद्व से ग्रस्त है। महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वह कभी स्कन्दगुप्त, कभी भटार्क के प्रति आकर्षित होती है और अंततः आत्महत्या में अपनी समस्या का समाधान पाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परस्पर विरोधी विभिन्न नाट्य–व्यापारों के संयोजन के कारण इस नाटक की कथावस्तु में आंतरिक द्वंद्व की सृष्टि हुई है जो प्रमुख चरित्रों में देखा जा सकता है।

6.6.2 बाह्य द्वंद्व

'स्कन्दगुप्त नाटक' की कथावस्तु में बाह्य द्वंद्व के अन्तर्गत राजनीतिक और धार्मिक द्वन्द्व का चित्रण हुआ है। राजनीतिक द्वंद्व की सृष्टि राजनीतिक घटनाक्रमों का आधार लेते हुए की गई है, जिनमें गुप्त–कुल की अस्थिरता और हूणों का आक्रमण प्रमुख हैं। समझने में सुविधा की दृष्टि से यहाँ गुप्त–कुल से संबंधित राजनीतिक द्वंद्व को आंतरिक राजनीतिक द्वंद्व व हूणों के आक्रमण से सम्बन्धित द्वंद्व को बाहरी राजनीतिक द्वंद्व में विभाजित करके विश्लेषित किया जा रहा है।

अनन्तदेवी द्वारा अपने पुत्र पुरगुप्त को गुप्त–सम्राट बनाने के उद्देश्य से किए गए सारे प्रपंच और षड्यंत्र आंतरिक राजनीतिक द्वंद्व के अंतर्गत आएँगे जिनकी शुरूआत पहले अंक के चौथे दृश्य से हो जाती है। गुप्त–कुल के नियमानुसार महाराज कुमारगुप्त की पहली पत्नी महारानी देवकी से उत्पन्न होने के कारण स्कन्दगुप्त गुप्त–सम्राट का उत्तराधिकारी है किन्तु कुमारगुप्त की दूसरी पत्नी अपनी संतान पुरगुप्त को सम्राट बनाना चाहती है। इस कार्य में वह स्वयं महाराज कुमारगुप्त, महारानी देवकी और स्कन्दगुप्त को बाधा समझती है। वह भटार्क और बौद्ध कापालिक प्रपंचबुद्धि का सहयोग लेती है। षड्यंत्र के तहत महाराज कुमारगुप्त की असमय मौत करवा देती है। गुप्त–साम्राज्य के निष्ठावान सेवक कुमारामात्य पृथ्वीसेन, महादण्डनायक और महाप्रतिहार जब स्कन्दगुप्त को ही वास्तविक उत्तराधिकारी बताते हुए महराज कुमारगुप्त से मिलने का प्रयास करते हैं, तो पुरगुप्त की आज्ञा से उन्हें रोक लिया जाता है। वे भटार्क और पुरगुप्त को चेतावनी देते हैं कितु पुरगुप्त उन्हें बंदी बनाने का आदेश दे देता है। अन्ततः तीनों निष्ठावान पुरुष छुरे से आत्मघात कर लेते हैं।

दूसरे अंक में अनन्तदेवी भटार्क, शर्वनाग और प्रपंचबुद्धि के साथ मिलकर महारानी देवकी की हत्या का प्रयास करवाती है, जिसके विरोध में शर्वनाग की पत्नी रामा दीवार बनकर खड़ी हो जाती है और स्कन्दगुप्त अचानक वहाँ पहुँचकर इस षड्यंत्र को सफल नहीं होने देता। तीसरे अंक के तीसरे दृश्य में अनन्तदेवी, भटार्क के माध्यम से विदेशी हूण आक्रमणकारियों को आर्यावर्त में प्रवेश करवाने के बदले संधि करती है और रत्न–मंजूषा उत्कोच के रूप में लेती है। हूणों से युद्ध के समय भटार्क कुम्भा के बाँध को अचानक खोल देता है जिसके बहाव में आर्यावर्त का रक्षक स्कन्दगुप्त सैनिकों समेत बह जाता है।

पाँचवें अंक के तीसरे दृश्य में महाबोधि–विहार में बौद्ध भिक्षु प्रख्यातकीर्ति अनन्तदेवी और हूण सेनापति की कुटिल योजना की वास्तविकता को समझते हुए बौद्ध धर्म की रक्षा के नाम पर की जा रही सहायता को ठुकराकर उनका विरोध करता है। इससे अनन्तदेवी और हूण सेनापति क्रुद्ध होते हैं, हूण सेनापति प्रख्यातकीर्ति पर हमला करता है किन्तु ऐन मौके पर धातुसेन पहुँच जाता है और सबको बंदी बना लेता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्त–कुल के उत्तराधिकारी का पद पाने के लिए किये गये षड्यंत्रों से 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु में राजनीतिक द्वंद्व की सृष्टि हुई है।

इस नाटक की कथावस्तु में बाह्य राजनीतिक द्वंद्व शकों व हूणों के आक्रमण और भारतीय जनता पर हूणों के अत्याचार से उत्पन्न हुआ है। 'स्कन्दगुप्त' के पहले अंक के छठे दृश्य में प्रसाद जी ने हूणों द्वारा भारतीय जनता पर किए जाने वाले अत्याचार को दिखलाया है :

"हूणः (धक्का देते हुए) चल, एक ओर खड़ा हो। हाँ जी, इन दुष्टों ने कुछ देना अभी स्वीकार नहीं किया, बड़े कुत्ते हैं!

नागरिकः हम निरीह प्रजा हैं। हम लोगों के पास क्या रह गया है जो आप लोगों को दें। सैनिकों ने तो पहले ही लूट लिया है।

हूण–सेनापति : तुम लोग बातें बनाना खूब जानते हो। अपना छिपा हुआ धन देकर प्राण बचाना हो तो शीघ्रता करो, नहीं तो गरम किये हुए लोहे प्रस्तुत हैं– कोड़े और तेल में तर कपड़े भी। उस कष्ट का स्मरण करो !

नागरिक : प्राण तो तुम्हारे हाथ में है, जब चाहे ले लो।

हूण–सेनापति : (सैनिकों से) इन बालकों को तेल से भीगा हुआ कपड़ा डालकर जलाओ और स्त्रियों को गरम लोहों से दागो।"

तीसरे अंक के पाँचवें और छठे दृश्य में भी प्रसाद जी ने हूणों के आक्रमण और मगध साम्राज्य के विरुद्ध अनन्तदेवी की योजना के अनुरूप भटार्क द्वारा हूणों को मिलने वाले सहयोग का संकेत किया है। गांधार की घाटी के रणक्षेत्र में भटार्क स्कन्दगुप्त के साथ विश्वासघात करता है। वह कुम्भा के बाँध को तोड़ते हुए स्कन्दगुप्त, बन्धुवर्मा और सैनिकों द्वारा हूणों को रोकने के प्रयास को विफल कर देता है, जिससे हूणों का आर्यावर्त में प्रवेश हो जाता है। इस दृश्य में घटना–व्यापार बहुत तीव्र गति से परिवर्तित होता है जिससे राजनीतिक द्वंद्व अत्यधिक सघन बन गया है।

'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु में धार्मिक द्वंद्व के अंतर्गत ब्राह्मण–बौद्ध द्वंद्व देखने को मिलता है जिसकी झलक हमें चौथे अंक के पाँचवें दृश्य में देखने को मिलती है। नगर प्रांत के पथ पर जब सिंहल राजकुमार धातुसेन और बौद्ध भिक्षु प्रख्यातकीर्ति वार्तालाप कर रहे होते हैं तभी उन्हें समाचार मिलता है कि बलि–कर्म को लेकर ब्राह्मण और बौद्धों में द्वंद्व छिड़ गया है। ब्राहमण बौद्धों पर आरोप लगाते हैं कि उन्होंने मगध–साम्राज्य के विरुद्ध हूणों की मदद की है, उसी के विरोधस्वरूप ब्राह्मण बौद्ध–विहार के समीप

पशु–बलि–कर्म करना चाहते हैं। बौद्ध श्रमण जीव–हिंसा को अपने धर्म के खिलाफ बताते हुए ब्राह्मणों के विरुद्ध उत्तेजित हो जाते हैं। धातुसेन धर्म की वास्तविक व्याख्या करते हुए धर्म के नाम पर होने वाले व्यवसाय पर प्रकाश डालता है। साथ ही, प्रख्यातकीर्ति सभी को समझाते हैं कि ब्राह्मण और बौद्ध मूलतः एक ही धर्म की दो शाखाएँ हैं और इन दोनों को आपस में न लड़कर हूणों के अत्याचार के खिलाफ लड़ना चाहिए। प्रख्यातकीर्ति ब्राहमणों के समक्ष स्वयं की बलि के प्रस्तुत हो जाते हैं, जिससे ब्राह्मणों और बौद्धों को अपनी गलती का अहसास होता है। प्रस्तुत दृश्य के माध्यम से नाटककार जयशंकर प्रसाद ने धार्मिक द्वंद्व को 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु में सम्मिलित करते हुए उसका युगानुरूप सुचिंतित समाधान भी प्रस्तुत किया है।

गहराई से देखा जाए तो 'स्कन्दगुप्त' नाटक में प्रसाद जी ने ऐसे प्रसंगों की सृष्टि की है जिससे चरित्रों के अंतर्द्वंद्व के साथ ही राजनीतिक और धार्मिक द्वंद्व उत्पन्न हुआ है, जिससे इस नाटक की कथावस्तु में कौतूहल, रोचकता और विश्वसनीयता का समावेश हुआ है।

1. बोध प्रश्न

(क) उचित विकल्प द्वारा निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. जयशंकर प्रसाद का 'स्कन्दगुप्त' नाटक भारतीय इतिहास के किस काल की घटनाओं पर आधारित है?

   क) मुगल काल

   ख) गुप्त काल

   ग) मौर्य काल

   घ) सप्तवाहन काल

2. 'स्कन्दगुप्त' नाटक में स्कन्दगुप्त की विमाता का नाम क्या है?

   क) कमला

   ख) अनन्तदेवी

   ग) देवकी

   घ) रामा

3. 'स्कन्दगुप्त' नाटक में देवसेना नामक पात्र किस राजा की बहन के रूप में चित्रित है?

   क) पृथ्वीसेन

   ख) बंधुवर्मा

   ग) धातुसेन

   घ) खिंगिल

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक–एक शब्दों में दीजिए :

1. 'स्कन्दगुप्त' नाटक में हूण आक्रमणकारी का नाम क्या है?

   ....

2. 'स्कन्दगुप्त' नाटक में सिंहल के राजकुमार का नाम क्या है?

   ....

3. 'स्कन्दगुप्त' नाटक में ब्राह्मण और बौद्धों में संघर्ष किस बात को लेकर हुआ?

   ....

(ग) निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. गांधार के रणक्षेत्र में भटार्क ने अचानक ...... के बाँध को खोल दिया।
2. शर्वनाग की पत्नी रामा .... की रक्षा के लिए अपने पति से भिड़ गयी थी।
3. 'स्कन्दगुप्त' नाटक के अंत में स्कन्दगुप्त न चाहते हुए भी ..... को विदा दे देता है।
4. 'स्कन्दगुप्त' नाटक का पहला अंक कथावस्तु के विकास की दृष्टि से ... के अंतर्गत आता है।
5. नाटक के अंत में स्कन्दगुप्त .... को गुप्त–सम्राट घोषित कर देता है।
6. प्रथम अंक में गुप्त–साम्राज्य के निष्ठावान सेवक ......, ... और ..... तीनों पुरगुप्त के दुर्व्यवहार के कारण छुरे से आत्मघात कर लेते हैं।
7. 'स्कन्दगुप्त' नाटक के .... अंक के ..... दृश्य और .... अंक के ..... दृश्य में हास्य की सृष्टि की गयी है।
8. विजया के शव को गाड़ने के लिए भूमि खोदते समय रत्न–गृह का मिलना .... प्रसंग के अंतर्गत आता है।
9. प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में चर और दूत का संवाद ..... प्रसंग के अंतर्गत आएगा।
10. 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु में शकों व हूणों के आक्रमण और भारतीय जनता पर हूणों के अत्याचार से ...... उत्पन्न हुआ है।

(घ) निम्नलिखित दीर्घ उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर लगभग 7–8 पंक्तियों में दीजिए :

1. 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु की किन्हीं तीन विशेषताएँ बताइए?

....

....

....

....

....

....

....

2. 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का सार अपने शब्दों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

3. 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु के ऐतिहासिक आधार पर अपने विचार लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

6.7 सारांश

किसी भी नाटक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं आधारभूत तत्व कथावस्तु होती है, जिसके ऊपर सम्पूर्ण नाटक की संरचना टिकी होती है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु में वर्णित घटनाओं और प्रसंगों की बहुलता के कारण इस नाटक को 'महाकाव्यात्मक नाटक' की संज्ञा दी जाती रही है। प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु पाँच अंकों के कुल तैंतीस दृश्यों में विभाजित है, जिसमें एक ओर गुप्त–कुल के राजसिंहासन को प्राप्त करने के लिए किये जाने वाले षड्यंत्र वर्णित हैं तो दूसरी विदेशी आक्रमणकारियों से राष्ट्र की रक्षा का भाव भी प्रसाद जी ने रेखांकित किया है। इसके साथ ही स्कन्दगुप्त सहित अन्य पात्रों के व्यक्तिगत जीवन के प्रेम, त्याग, उदासीनता, ईर्ष्या, महत्वाकांक्षा जैसे भाव भी इसमें चित्रित हुए हैं। 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का मुख्य आधार गुप्त–काल की घटनाएँ ही हैं जिनका उल्लेख प्रसाद जी ने इस नाटक की लम्बी भूमिका में किया है। इसके साथ ही, नाटक की कथावस्तु के संयोजन में प्रसाद जी ने इतिहास के साथ अनुमान और कल्पना का सहारा भी लिया है, जिससे प्रस्तुत नाटक में रोचकता और विश्वसनीयता का समावेश हुआ है। प्रसाद जी ने गुप्त–कुल के अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम को सूत्र रूप में पकड़ते हुए अनुमान के आधार पर कई नाट्य प्रसंगों की सृष्टि की है। स्कन्दगुप्त की माता देवकी से जुड़े प्रसंग इसी श्रेणी में आते हैं। इतिहास में पुरगुप्त की माता अनन्तदेवी का उल्लेख मिलने का संकेत भी प्रसाद जी ने भूमिका में किया है। अनन्तदेवी से जुड़े प्रसंगों को प्रसाद जी ने कथावस्तु में तनाव और संघर्ष के निर्माण के लिए कल्पित किया है। देवसेना, विजया, जयमाला, कमला, रामा आदि नारी पात्रों से सम्बन्धित प्रसंग और स्कन्दगुप्त के व्यक्तित्व में प्रेम, अवसाद और निराशा का समावेश प्रसाद जी की काल्पनिक उपज है। इस प्रकार अनेक स्थितियों पर आधारित प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु में चरित्रों के साथ ही राजनीति, धर्म और जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित आंतरिक और बाह्य द्वंद्व देखने को मिलता है। जयशंकर प्रसाद ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का विकास भी इस प्रकार किया है कि इसमें भारतीय और पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में वर्णित कथावस्तु के विकास की सभी स्थितियाँ और दशाएँ सहजता से देखने को मिल जाती हैं।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

(क)	(1)	ख,	(2)	ख,	(3)	ख,
(ख)	(1)	खिंगिल,	(2)	कुमारदास / धातुसेन,	(3)	बलि–कर्म,

(ग) (1) कुम्भा नदी, (2) महारानी देवकी, (3) देवसेना,

(4) आरम्भ, (5) पुरगुप्त,

(6) कुमारामात्य पृथ्वीसेन, महादण्डनायक और महाप्रतिहार।

(7) प्रथम अंक के षष्ठ दृश्य, तृतीय अंक के चतुर्थ दृश्य,

(8) चामत्कारिक प्रसंग,

(9) सूच्य,

(10) बाह्य राजनीतिक द्वंद्व।

(घ) 1. उत्तर के लिए देखिए 6.5।

2. उत्तर के लिए 6.3 का पुनः अध्ययन कीजिए।

3. उत्तर के लिए देखिए 6.4।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 7: 'स्कन्दगुप्त' का नाट्य–शिल्प

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 कथावस्तु

7.3 'स्कन्दगुप्त' नाटक के पात्र

7.3.1 पुरुष पात्र

7.3.2 नारी पात्र

7.4 संवाद और भाषा

7.5 गीत–योजना

7.6 देश–काल और वातावरण

7.7 उद्देश्य

7.8 रंगमंचीयता

7.9 सारांश

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप नाटककार जयशंकर प्रसाद के नाटक 'स्कन्दगुप्त' के नाट्य–शिल्प से परिचित होने जा रहे हैं। इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- नाट्य–शिल्प की दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' का विश्लेषण कर सकेंगे;
- इस नाटक में आए प्रमुख पात्रों और उनकी चारित्रिक विशेषताओं को जान पाएँगे;
- 'स्कन्दगुप्त' नाटक की संवाद–योजना और भाषा से परिचित होंगे;
- प्रस्तुत नाटक के उद्देश्य का विश्लेषण कर पाएँगे;
- 'स्कन्दगुप्त' नाटक में प्रयुक्त गीतों के महत्त्व और औचित्य को जान पाएँगे; और
- रंगमंच की दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' नाटक की विशेषताओं और सीमाओं को समझ पाएँगे।

7.1 प्रस्तावना

'नाट्य–शिल्प' से तात्पर्य है किसी नाटक के तत्वों का विश्लेषण करना। प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र की दृष्टि से नाटक के तीन तत्व माने गए हैं– वस्तु, नेता और रस। पाश्चात्य नाट्यशास्त्र की दृष्टि से नाटक के छह तत्व माने गए हैं –कथावस्तु, चरित्र, संवाद, देश–काल–वातावरण, उद्देश्य, भाषा। आधुनिक काल में परिवर्तित मान्यताओं के फलस्वरूप और उपरोक्त दोनों दृष्टियों से सामंजस्य बनाते हुए नाटक के तत्व इस प्रकार स्वीकार किए गए हैं –कथावस्तु, पात्र/चरित्र चित्रण, संवाद/कथोपकथन, देश–काल–वातावरण, उद्देश्य, भाषा–शैली, रंगमंचीयता।

जयशंकर प्रसाद युगचेता सजग नाटककार थे। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य नाट्यशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। 'स्कन्दगुप्त' जयशंकर प्रसाद का सुप्रसिद्ध नाटक है। इस नाटक में भारतीय और पाश्चात्य– दोनों दृष्टियों से नाटकगत तत्वों का निर्वाह प्रसाद जी ने किया है। प्रस्तुत इकाई में नाटक के तत्वों के आधार पर 'स्कन्दगुप्त' का विश्लेषण किया जा रहा है।

7.2 कथावस्तु

कथावस्तु नाटक का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण और आधारभूत तत्व है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु का आधार भारतीय इतिहास का स्वर्ण–युग कहे जाने वाले गुप्त–काल के पतन की घटनाएँ हैं। प्रसाद जी ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक में ऐतिहासिक घटनाओं के साथ काल्पनिक प्रसंगों का संयोजन करते हुए अपने समय की भारतीय जनता में राष्ट्रीयता का भाव भरने का प्रयास किया है। पाँच अंकों के कुल तैंतीस दृश्यों में विभाजित 'स्कन्दगुप्त' नाटक की कथावस्तु और इसकी विशेषताओं का विस्तृत परिचय आप इकाई–6 के अंतर्गत पढ़ चुके हैं। अतः इस इकाई में प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु का विस्तृत परिचय नहीं दिया जा रहा है।

7.3 'स्कन्दगुप्त' नाटक के पात्र

पात्र नाटकगत कथ्य के वाहक होते हैं। जयशंकर प्रसाद को 'मानव–हृदय का कुशल चितेरा' कहा जाता है। इस मान्यता का आधार उनके साहित्य, विशेष रूप से उनके नाटकों में आए विभिन्न स्वभाव और प्रवृत्ति वाले पात्र हैं जो अपनी अनूठी चारित्रिक विशेषताओं के कारण सुधि दर्शक/पाठक को प्रभावित कर लेते हैं। ये पात्र सबसे पहले मानव हैं, उसके बाद अपनी प्रवृत्तिगत विशेषताओं के कारण ये सत्य–असत्य, जटिल–सरल आदि की श्रेणियों में विभाजित होते हैं।

प्रसाद का नाटक 'स्कन्दगुप्त' पात्र–बहुल नाटक है। प्रहरी, सैनिक, सखी, दासी जैसे गौण पात्रों को छोड़ भी दें तो पात्रों की संख्या पच्चीस है। प्रस्तुत नाटक की भूमिका के अन्तर्गत स्कन्दगुप्त के साथ बन्धुवर्मा, चक्रपालित, पर्णदत्त, शर्वनाग, भटार्क, पृथ्वीसेन, खिंगिल, प्रख्यातकीर्ति, भीमवर्मा, गोविन्दगुप्त आदि पात्रों को जयशंकर प्रसाद ने ऐतिहासिक व्यक्ति बतलाया है। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास ही मातृगुप्त हैं– इसका अनुमान भी प्रसाद जी ने लगाया है। मुद्गल और प्रपंचबुद्धि को उन्होंने कल्पित पात्र बताया है। स्त्री पात्रों में देवकी, अनंतदेवी इतिहास–सम्मत हैं तो देवसेना और जयमाला के विषय में प्रसाद जी ने लिखा है कि ये 'वास्तविक और काल्पनिक' पात्र, दोनों हो सकते हैं।' विजया, रामा, कमला, मालिनी कल्पित पात्र हैं। 'स्कन्दगुप्त' नाटक के पात्रों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए जयशंकर प्रसाद ने लिखा है – "पात्रों की ऐतिहासिकता के विरुद्ध चरित्र की सृष्टि, जहाँ तक संभव हो सका, नहीं होने दी गई है। फिर भी कल्पना का अवलम्ब लेना ही पड़ा है, केवल घटना की परम्परा ठीक करने के लिए।"

7.3.1 पुरुष पात्र

प्रसाद जी ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक के पात्रों के निजी जीवन के राग–द्वेषों के समानांतर राष्ट्र–यज्ञ में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को एक साथ साधा है। आमतौर पर नाटकों में पात्रों को विशिष्ट श्रेणियों में बाँट कर ही उनका चरित्र विकसित किया जाता है। किन्तु यहाँ पात्रों के व्यक्तित्व में एक अलग ही प्रकार का तालमेल या सामंजस्य देखने को मिलता है। पाश्चात्य नाट्य–सिद्धांतों के अनुसार 'व्यक्ति वैचित्र्य' नाटक का प्रधान गुण है। जिसके अंतर्गत विभिन्न परिस्थितियों में फँसे पात्रों को अपने मूल चरित्र से अलग विचित्र व्यवहार करते हुए दिखलाया जाता है। 'स्कन्दगुप्त' के कई पात्रों पर 'व्यक्ति वैचित्र्य' का प्रभाव देखा जा सकता है।

स्कन्दगुप्त

नायक और केंद्रीय पात्र स्कन्दगुप्त प्रस्तुत नाटक का केन्द्रीय पात्र और नायक है। नाटक का नाम भी उसी के नाम के आधार पर किया गया है। किन्तु इस नाटक में परम्परागत नायकों की छवि से अलग स्कन्दगुप्त के व्यक्तित्व के कई आयाम देखने को मिलते

है। उदासीनता, वैराग्य, वीरत्व, प्रेमी हृदय, अवसादग्रस्तता आदि मिलकर स्कन्दगुप्त के विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। इसलिए यह चरित्र प्रसाद के नाटकों के सभी पात्रों में से सर्वाधिक मानवीय बन पड़ा है। वह वीर है किन्तु मानव–सुलभ विकारों से भी युक्त है।

राष्ट्र का सच्चा सेवकः नाटक की शुरूआत में गुप्त–कुल के अस्थिर उत्तराधिकार नियम और विमाता के कुटिल षड्यंत्रों से आहत स्कन्द राज्य–प्राप्ति के प्रति उदासीन दिखाई पड़ता है किन्तु, जब विदेशी हूणों के आक्रमण से आर्यावर्त की एकता और अखंडता खतरे में पड़ती है तो वह अपने समूचे शक्ति–बल से लड़ते हुए राष्ट्र को रक्षित करता है। निस्वार्थ कर्मयोगी की तरह वह स्वयं के लिए कोई भी इच्छा न रखते हुए राष्ट्र के लिए लड़ता है। वह कहता है –''भटार्क, यदि कोई साथी न मिला तो साम्राज्य के लिए नहीं, जन्मभूमि के उद्धार के लिए मैं अकेला युद्ध करूँगा ...।'' हमारे अंतर्मन की स्थिति चाहे कैसी भी हो किन्तु राष्ट्र के लिए हमें अपने कर्तव्यों को तत्परता से निभाना ही होगा –यह सन्देश स्कन्दगुप्त का चरित्र देता है। आर्यावर्त को पहले–पहल शकों और पुष्यमित्रों से और तदन्तर हूणों से मुक्ति दिलाने का कार्य स्कन्दगुप्त साहसपूर्वक करता है। वह आत्मविश्वास से भरपूर, निर्भीक और उत्साही युवक के रूप में दिखलाई पड़ता है। स्कन्दगुप्त के चरित्र में स्वाभिमान का गुण भी है, वह विजया द्वारा दिये गये प्रलोभन को एक झटके में ठुकरा देता है।

व्यवहार–कुशल नेतृत्वः स्कन्दगुप्त एक व्यवहार–कुशल राजपुरुष के रूप में भी दिखलाई पड़ता है। आर्यावर्त पर आए संकट के समय उसके द्वारा बनाई गई योजना इस बात की सूचक है। हूणों से किए गए पहले युद्ध को छोड़कर शेष दोनों युद्धों में वह सफलता प्राप्त करता है। एक परिपक्व राजपुरुष की भाँति वह पराजित खिंगिल को क्षमादान दे देता है। इससे पूर्व भी वह विश्वासघात करनेवाले और अपनी माता देवकी की हत्या के षड्यंत्र में शामिल भटार्क और शर्वनाग को क्षमा करता है, जिससे शर्वनाग का हृदय परिवर्तित होकर सदैव के लिए स्कन्द का ऋणी बन जाता है। भटार्क भी अंततः स्कन्द को ही आदर्श मानता है।

एकाकी, द्वन्द्वग्रस्त और निराशा का शिकारः जयशंकर प्रसाद ने राष्ट्र–रक्षा के लिए लड़ते स्कन्दगुप्त के वीरत्व के साथ उसका अकेलापन भी नाटक में समानांतर रूप से उभारा है। "परिवार, प्रणय, राज्य और व्यक्तिगत जीवन में स्कन्दगुप्त उन नाटकीय परिस्थितियों के मध्य स्थित दिखाई देता है जो किसी भी व्यक्ति को भावुकता और द्वंद्व में उलझाकर रख सकती है।" (प्रसाद के नाटकः स्वरूप और संरचना, गोविन्द चातक) राष्ट्र के लिए लड़ने वाला स्कन्द भीतरी रूप से द्वन्द्वग्रस्त है उसका कथन देखिए– "बौद्धों का निर्वाण, योगियों की समाधि और पागलों की–सी सम्पूर्ण विस्मृति मुझे एक साथ चाहिए। चेतना कहती है कि तू राजा है, और उत्तर में जैसे कोई कहता है कि तू खिलौना है –उसी खिलवाड़ी बटपत्रशायी बालकों के हाथ का खिलौना है। तेरा मुकुट श्रमजीवी से भी तुच्छ है।" स्कन्दगुप्त युवा है। युवावस्था के अनुरूप वह पहले–पहल विजया के प्रति आकर्षित होता है। विजया द्वारा भटार्क का वरण करने पर उसे अफसोस भी होता है। कालान्तर में स्कन्द देवसेना के उदात्त गुणों से प्रभावित होकर उससे प्रणय–निवेदन करता है किन्तु देवसेना के अस्वीकार से उसे झटका लगता है। इस रूप में हम स्कन्दगुप्त को नितांत एकाकी पाते हैं।

अनन्तदेवी के इशारों पर चलने वाले भटार्क द्वारा हूणों की सहायता करके उन्हें अन्तर्वेद में प्रविष्ट कराने से मिली हार से स्कन्द बुरी तरह टूट जाता है। माता देवकी की मृत्यु का समाचार उसके दुःख को और अधिक गहरा कर देता है। देवसेना द्वारा उसका प्रणय और विवाह का निवेदन अस्वीकार कर दिया जाता है। ऐसे में उसे अपना जीवन 'कर्तव्य विस्मृत, भविष्य अन्धकारपूर्ण, लक्ष्यहीन दौड़ और अनन्त सागर का सन्तरण' लगता है। माता देवकी और वृद्ध पर्णदत्त का स्वर्गवास, देवसेना से विदाई पाकर स्कन्द नितांत अकेला हो जाता है और सोचता है– "कितना अकेला आज मैं!"

पाश्चात्य नाट्य–शिल्प में वर्णित 'व्यक्ति–वैचित्र्य की दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' को प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा जाता है और स्कन्दगुप्त को सर्वश्रेष्ठ चरित्र। 'व्यक्ति– वैचित्र्य' के प्रभावस्वरूप स्कन्दगुप्त के चरित्र में परस्पर–विरोधी विशेषताएँ देखने को मिलती है। निजी प्रेम के क्षेत्र में वह नितांत अकेला है किन्तु राष्ट्र–रक्षा के क्षेत्र में वह नायक है।

वस्तुतः स्कन्दगुप्त के चरित्र की परिकल्पना प्रसाद ने तत्कालीन स्वाधीनता आन्दोलन में सम्मिलित युवा–शक्ति को ध्यान में रखकर की है। इस चरित्र के माध्यम से प्रसाद जी ने युवाओं के भीतर व्यक्तिगत भावनाओं से ऊपर उठकर देश पर सर्वस्व न्योछावर करने की प्रेरणा जागृत की है।

पर्णदत्त

गुप्त–कुल के वृद्ध सेनापति **पर्णदत्त** हैं। उनकी पूर्ण निष्ठा गुप्त साम्राज्य को सुरक्षित करने में है। नाटक की शुरूआत में ही वह उदासीन स्कन्द को उसके कर्तव्यों के प्रति जागृत करते हैं। कुम्भा दुर्घटना के बाद बिखरे हुए राष्ट्र को संगठित करने में वे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और राष्ट्र के लिए लड़ते–लड़ते वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं। नाट्यालोचक रमेश गौतम पर्णदत्त के चरित्र की प्रासंगिकता का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं – "सामयिक स्थितियों की व्यंजना में पर्णदत्त 'स्कन्दगुप्त' नाटक का मुख्य पात्र है। उसके माध्यम से नाटककार प्रसाद ने राष्ट्रीय चेतना का उद्बोधन देशवासियों को दिया है, समाज में समानता की प्रगतिशील दृष्टि का भी वाहक वही है और राष्ट्रीय आकांक्षाओं को पूरा करने का संकल्प भी नाटककार उसी के द्वारा पूरा करवाता है। वह स्कन्दगुप्त की प्रेरक शक्ति है। पर्णदत्त का चरित्र एक समाजसेवी के रूप में उभरकर सामने आता है। युद्ध का अवसर न रहने पर भी वृद्ध पर्णदत्त जिस तत्परता के साथ हत या आहत सैनिकों के परिवारों के पोषण में लग जाता है – वह एक समाजसेवी की सेवा से भी बढ़कर है।"

भटार्क

भटार्क 'स्कन्दगुप्त' नाटक का महत्वाकांक्षी पात्र है। वह वीर और साहसी है। गुप्त–कुल में यथोचित पद न मिलने के कारण उसके मन में प्रतिहिंसा की भावना उपजती है। अपनी इच्छाओं की प्राप्ति के लिए महाबलाधिकृत के पद के लालच में आकर वह अनन्तदेवी के अनैतिक और राष्ट्र के विरोधी कार्यों में सहयोग देता है। बीच–बीच में माँ कमला के कटु शब्द सुनकर जब उसका हृदय उसे धिक्कारता है तब वह राष्ट्र–हित के विषय में सोचते हुए अपनी संकुचित वृत्ति को धिक्कारता है। लेकिन उसकी महत्वाकांक्षा उसके सद्भावों पर हावी हो जाती है, जिसके फलस्वरूप वह कुम्भा के बाँध को तोड़कर स्कन्दगुप्त के साथ समूची सेना और राष्ट्र को घोर संकट में डाल देता है। अन्ततः स्कन्दगुप्त के विशाल और उदार हृदय से प्रेरणा लेता हुआ भटार्क राष्ट्र–रक्षा में योग देता है। अपनी कमजोरियों से बार–बार संघर्ष करते हुए वह ऊपर उठता है, उसका हृदय–परिवर्तन होता है। जयशंकर प्रसाद ने भटार्क का चरित्र–चित्रण मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया है।

शर्वनाग

शर्वनाग की स्थिति भी भटार्क जैसी ही है। पहले–पहल वह कादम्ब, कामिनी और कंचन को ही जीवन समझने वाले साधारण सैनिक के रूप में सामने आता है। वह साहसी है, भटार्क और अनन्तदेवी उसके इसी साहस का लाभ महारानी देवकी की हत्या के षड्यंत्र में उठाते हैं। स्कन्दगुप्त की उदारता स्वरूप शर्वनाग को जीवन–दान के साथ ही अन्तर्वेद के विषयपति का पद मिलता है, कृतज्ञता से भरकर उसका हृदय–परिवर्तन होता है और वह राष्ट्रसेवा के कार्यों में लग जाता है। शर्वनाग राह से भटकी विजया को सुपथ के लिए प्रेरित करता है। हूणों के अत्याचार से उसकी संतान की मृत्यु हो जाती है जिससे वह उन्मत्त अवस्था में पहुँच जाता है।

प्रख्यातकीर्ति

'स्कन्दगुप्त' नाटक में **प्रख्यातकीर्ति** नामक पात्र की अवतारणा प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति के समावेशी गुण के अनुरूप की है। नाटक में एक स्थल पर प्रख्यातकीर्ति कहता है "... मनुष्य अपूर्ण है। इसलिए सत्य का विकास जो उसके द्वारा होता है, अपूर्ण होता है। यही विकास का रहस्य है। .... सभी धर्म समय और देश की स्थिति के अनुसार, विवृत्त होते रहे हैं और होंगे। हम लोगों को हठधर्मी से उन आगन्तुक क्रमिक पूर्णता प्राप्त करने वाले ज्ञानों से मुँह न फेरना चाहिए। हम लोग एक ही मूल धर्म की दो शाखाएँ हैं। आओ हम दोनों के विचार के फूलों से दुःख–दग्ध मानवों का कठोर पथ कोमल करें।" बौद्ध–भिक्षु होने पर भी प्रख्यातकीर्ति राष्ट्र की सुरक्षा के प्रति चिंतित है जिसके कारण वह निर्भीकता से हूण सेनापति और महारानी अनन्तदेवी को खरी–खरी सुना देता है। इसके विपरीत प्रपंचबुद्धि एक ऐसे बौद्ध–भिक्षु के रूप में चित्रित है जो अहिंसा–प्रधान धर्म के पोषण के लिए हिंसा का सहारा लेता है और कुटिल कृत्य करता है।

मातृगुप्त

मातृगुप्त, जिसे जयशंकर प्रसाद ने नाटक की भूमिका में महाकवि कालिदास सिद्ध किया है –वह मूलतः कवि है। कश्मीर का निवासी मातृगुप्त मलेच्छों से उस सुन्दर प्रदेश के आक्रान्त होने से दुखी है। कवि–कर्म को सामाजिक सम्मान न मिलना भी उसे सालता है। वह आर्यावर्त और स्कन्दगुप्त का शुभ–चिन्तक है। श्मशान भूमि में देवसेना की जीवन–रक्षा के फलस्वरूप स्कन्दगुप्त उसे कश्मीर का विषयपति बना देता है। कश्मीर में उसका सामना अपनी प्रेमिका मालिनी से होता है, जो अब वेश्या बन चुकी है। उसके इस रूप को देखकर मातृगुप्त को मानसिक आघात पहुँचता है। निजी जीवन की विडम्बनाओं के बावजूद मातृगुप्त अपने काव्य के माध्यम से देशवासियों के मन में राष्ट्र–प्रेम का संचार करता है।

बन्धुवर्मा और **भीमवर्मा** बंधु–द्वय राष्ट्र की एकता और रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं। अपने मालव–राज्य को स्कन्दगुप्त के प्रति समर्पित करते हुए और राष्ट्र–यज्ञ में प्राणों की आहुति देकर बंधुवर्मा अपने प्रण को पूरा करता है।

धातुसेन/कुमारदास सिंहल का राजकुमार है जो भारत–भ्रमण के लिए आया हुआ है। वह गुप्त–साम्राज्य में हो रहे नित–नए परिवर्तनों पर गहरी दृष्टि रखता है। विदेशी होकर भी आर्यावर्त के लिए चिंतित और उसकी रक्षा के लिए सन्नद्ध है। महाबोधि–विहार में बलि–कर्म को लेकर होने वाले ब्राह्मण–बौद्ध संघर्ष में वह मानव–धर्म की सुचिंतित व्याख्या करता है। मुद्गल विदूषक के रूप में है जो अपने मूल काम – हास्य–व्यंग्य – के साथ ही राष्ट्र–हित के कार्यों में भी संलग्न दिखाई पड़ता है।

चक्रपालित युवावस्था के अनुरूप उत्साही, ऊर्जावान और आत्मविश्वास से भरपूर राष्ट्र–प्रेमी युवक है। वह बिना किसी लाग–लपेट के स्वानुभूत उद्गारों को स्पष्ट कह देने का साहस रखता है। **गोविन्दगुप्त** सम्राट कुमारगुप्त के भाई हैं। अपने भाई की विलासिता से क्षुब्ध होकर वे गुप्त–जीवन बिता रहे होते हैं कितु जब विदेशी आक्रमणों से आक्रान्त आर्यावर्त को स्कन्द द्वारा रक्षित होते देखते हैं तो स्कन्द के सहायक बनकर उभरते हैं। अन्ततः राष्ट्रोद्धार के लिए स्वयं का बलिदान कर देते हैं। **पृथ्वीसेन**, **महाप्रतिहार** और **दण्डनायक** आत्म–बलिदान का मार्ग अपनाते हुए गुप्त–साम्राज्य के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करते हैं।

पुरगुप्त एक विलासी युवराज के रूप में चित्रित हुआ है जिसे उसकी माँ अनन्तदेवी किसी भी कीमत पर गुप्त–सम्राट बनाना चाहती है। सम्राट कुमारगुप्त के साथ पुरगुप्त के चारित्रिक विकास का अवकाश नाटक में नहीं है।

खिंगिल हूण–सेनापति है जो अत्याचारी आक्रामक शक्ति का सूचक है। नाटक के अंत में स्कन्द उसे पराजित करते हुए भारत छोड़ने की चेतावनी देता है।

7.3.2 नारी पात्र

जयशंकर प्रसाद के नाटकों की नारियाँ अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण समूचे हिन्दी नाट्य–साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं। 'स्कन्दगुप्त' नाटक इस धारणा को पुष्ट करता है। डॉ. दशरथ ओझा इस विषय में लिखते हैं – "इस नाटक में नारी–पात्रों का विशेष महत्त्व है। इसमें पुरुष की पथ–प्रदर्शिका प्रायः नारी ही है। रामा शर्वनाग को, कमला भट्टार्क को सत्पथ दिखाती है। देवसेना स्कन्दगुप्त को क्षणिक दुर्बलता से ऊपर उठाती है। मानव की कोमल कल्पनाओं तथा सत्प्रवृत्तियों की साक्षात् मूर्ति देवसेना नारी जाति को गौरवान्वित करने वाली है। नाट्य–साहित्य में नारी की इतनी उच्च कल्पना प्रसादजी की सबसे बड़ी देन है।"

देवसेना

देवसेना 'स्कन्दगुप्त' नाटक की प्रमुख नारी पात्र है। इस गीतिमय नारी चरित्र में उदार मानव–हृदय के सद्भाव अपने उच्चतम स्तर पर देखने को मिलते हैं। राष्ट्र के प्रति प्रेम हो या व्यक्ति के लिए प्रेम –देवसेना निस्वार्थ त्याग और निष्काम प्रेम का आदर्श रचती है। देवसेना के विषय में नाट्यालोचक दशरथ ओझा का मानना है– "देवसेना का चरित्र प्रसाद के नाटकों में वह उज्ज्वल रत्न है जिसकी प्रभा कभी मन्द नहीं पड़ती। तपस्या के द्वारा प्राप्त प्रणय की सफलता को भी आराध्य के हित के लिए त्याग देनेवाली नारी के विषय में क्या कहा जाए। जनमंगलकारी कार्यों को त्यागकर एकान्त में गार्हस्थ्य सुख की कामना करनेवाला स्कन्द देवसेना की ही प्रेरणा से साम्राज्य के उद्धार का संकल्प करता है। अतः बर्बर हूणों से भारतीय जनता की रक्षा करनेवाले स्कन्द को भीष्म के सदृश दृढ़ बनाने का श्रेय उस अबला को है, जिसने अपने ताप के फल को भी आराध्यदेव के चरणों में अर्पण कर दिया।" देवसेना के चरित्र में भी 'व्यक्ति वैचित्र्य' सिद्धांत का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। निजी जीवन में वह अकेली है, वैसे वह 'समाज' की सेविका है।

संगीत प्रेमी: देवसेना संगीत से गहरा प्रेम करती है। संगीत उसके प्रत्येक हर्ष और विषाद, प्रेम और त्याग का अवलम्बन है। वह पूरे ब्रह्माण्ड में होने वाली प्रत्येक घटना, जीवन के प्रत्येक क्षण को संगीत की लय और तान के रूप में देखती है। वह कहती है– "प्रत्येक परमाणु के मिलने में एक सम है, प्रत्येक हरी–भरी पत्ती के हिलने में एक लय है। मनुष्य ने अपना स्वर विकृत कर रक्खा है, इसी से तो उसका स्वर विश्व–वीणा में शीघ्र नहीं मिलता। पांडित्य के मारे जब देखो, जहाँ देखो बेताल–बेसुरा बोलेगा। पक्षियों को देखो, उनकी 'चहचह' 'कलकल' 'छलछल' में, काकली में, रागिनी है।" नियति के संगीत के प्रति निश्चिन्त रहने वाली देवसेना इसीलिए नाटक में कहीं भी स्खलित नहीं होती।

स्वाभिमानी और चरित्रगत दृढ़ता से परिपूर्ण: देवसेना जीवन के विकट क्षणों में भी अपने स्वाभिमानी चरित्र की दृढ़ता को बनाये रखती है। यहाँ तक कि जब युवराज स्कन्दगुप्त उसके समक्ष प्रणय–निवेदन करता है तो वह उसे यह कहकर अस्वीकार कर देती है कि कहीं यह कार्य उसकी मातृभूमि मालव के महत्त्व और भाई बंधुवर्मा के उत्सर्ग के विपरीत रहेगा। इसीलिए वह स्कन्दगुप्त से प्रेम करते हुए भी आजीवन स्कन्दगुप्त की दासी बनने का संकल्प लेती है। नाटक के अंत में वह इन शब्दों में स्कन्द से क्षमा माँगते हुए विदा लेती है –"कष्ट हृदय की कसौटी है, तपस्या अग्नि है सम्राट! यदि इतना भी न कर सके तो क्या! सब क्षणिक सुखों का अंत है। जिसमें सुखों का अंत न हो, इसलिए सुख करना ही न चाहिए। मेरे इस जीवन के देवता! और उस जीवन के प्राप्य! क्षमा!" ..."

राष्ट्र की सच्ची सेविकाः देवसेना समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य के प्रति पूर्णतः सजग है। इसीलिए वह आर्यावर्त की एकता और रक्षा के लिए मालव–राज्य को स्कन्दगुप्त के अधीनस्थ करने में अपने भाई बंधुवर्मा को पूर्ण सम्मति देती है। हूणों के आक्रमण के समय वह वृद्ध पर्णदत्त के साथ गीत गा–गाकर भिक्षाटन करती है ताकि राष्ट्र–सेवकों को भोजन मिल सके। अपने गीतों के माध्यम से वह नागरिकों को देश के प्रति कर्तव्य निभाने के लिए प्रेरित करती है –

"देश की दुर्दशा निहारोगे
डूबते को कभी उबारोगे
हारते ही रहे, न है कुछ अब
दाँव पर आपको न हारोगे
कुछ करोगे कि बस सदा रोकर
दीन हो दैव को पुकारोगे
सो रहे तुम, न भाग्य सोता है
आप बिगड़ी तुम्हीं सँवारोगे
दीन जीवन बिता रहे अब तक
क्या हुए जा रहे, विचारोगे ..."

देवसेना निजी जीवन की पीड़ा को भुलाकर राष्ट्र–यज्ञ में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती नजर आती है। जैसाकि हमने पहले भी उल्लेख किया कि पाश्चात्य नाट्य–सिद्धांत 'व्यक्ति वैचित्र्य' का प्रभाव देवसेना के चरित्र पर भी दृष्टिगोचर होता है। 'व्यक्ति वैचित्र्य' के विषय में आप पहले ही जान चुके हैं कि इसके अंतर्गत कोई पात्र अपने मूल चरित्र से अलग विचित्र व्यवहार करते हुए दिखलाया जाता है। देवसेना के व्यक्तित्व में इसके कारण एक अलग ही प्रकार का तालमेल या सामंजस्य देखने को मिलता है– वह निजी जीवन में अकेली है, लेकिन वह 'समाज' की सेविका भी है। नाटक के अंत में स्कन्दगुप्त को पाकर भी उसे छोड़ देना स्वाभिमानी देवसेना की विदाई को अलौकिक स्तर पर पहुँचा देता है– यह 'व्यक्ति वैचित्र्य' का ही लक्षण कहा जाएगा।

अनन्तदेवी

अनन्तदेवी 'स्कन्दगुप्त' नाटक की खल स्त्री पात्र है। वह अति–महत्वाकांक्षी, कुटिल बुद्धि, कठोर एवं क्रूर हृदय नारी है। अपने पुत्र पुरगुप्त को गुप्त–सम्राट बनाने और सम्राट पद के वास्तविक अधिकारी सौतेले पुत्र स्कन्दगुप्त को रास्ते से हटाने के लिए वह अनेक षड्यंत्र रचती है। अनन्तदेवी के विषय में नाटक का पात्र भटार्क कहता है –"एक दुर्भेद्य नारी–हृदय में विश्व–प्रहेलिका का रहस्य–बीज है। आह! कितनी साहसशीला स्त्री है? देखूँ, गुप्त–साम्राज्य के भाग्य की कुंजी यह किधर घुमाती है।. ..." अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह समय–समय पर भटार्क, विजया, प्रपंचबुद्धि और यहाँ तक कि अपने वृद्ध पति कुमारगुप्त का भी इस्तेमाल करती है। "अनन्तदेवी की महत्वाकांक्षा 'स्कन्दगुप्त' के सारे घटनाचक्रों, षड्यंत्रों और कथानक–विकास का केंद्र–बिन्दु है। वह अपना कार्य सिद्ध करने के लिए परिस्थितियों के अनुकूल क्रियाशील होने में अत्यंत पटु है।" (हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह)

विजया

'स्कन्दगुप्त' नाटक में **विजया** महत्वाकांक्षी चरित्र है। वह रूपवती और आकर्षक व्यक्तित्व वाली है। अपने पिता से उसे अतुल धन मिला है। विजया को अपने रूप और धन दोनों पर बहुत घमंड है और इनका प्रयोग वह अपने महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के

लिए करती है। विजया ईष्यालु भी है, जिसके कारण वह देवसेना को मौत के मुँह में पहुँचा देती है। वह स्कन्दगुप्त के प्रति इसलिए आकर्षित होती है क्योंकि वह युवराज है। लेकिन जब उसे स्कन्दगुप्त की उदासीनता का पता चलता है तो वह भटार्क के पद और वीरता से आकृष्ट होकर उसका वरण कर लेती है। अन्त में वह पुनः अपने धन की आड़ लेकर स्कन्दगुप्त को पाने की इच्छा प्रकट करती है। विजया की कोई भी महत्वाकांक्षा पूरी नहीं होती। अंततः उसे आत्महत्या का रास्ता अपनाना पड़ता है।

रामा

रामा शर्वनाग की पत्नी और महादेवी देवकी की सेविका है। वह महादेवी के प्रति कृतज्ञ भाव से इतनी परिपूरित है कि अनन्तदेवी के कुटिल आदेश का पालन करने वाले अपने पति को धिक्कारते हुए उसके समक्ष 'पिशाचिनी–सी प्रलय की काली आँधी' बनकर खड़ी हो जाती है।

जयमाला

जयमाला मालव–नरेश बंधुवर्मा की पत्नी है, जो शकों के आक्रमण के समय मालव–दुर्ग की रक्षा में देवसेना के साथ खड़ी होती है। उसे जीवन के गूढ़ रहस्यों की गहरी समझ है। शकों से आक्रान्त मालव की स्कन्दगुप्त द्वारा रक्षा करने की कृतज्ञता–स्वरूप बंधुवर्मा जब गुप्त–साम्राज्य में मालव का विलय करना चाहता है तो वह स्वाभिमान और अस्तित्व का हवाला देते हुए पहले–पहल तैयार नहीं होती, बाद में मान जाती है और अपने पति के साथ स्कन्दगुप्त के नेतृत्व में आर्यावर्त की रक्षा–यज्ञ में सहयोग देती है।

कमला

कमला एक ऐसी नारी के रूप में चित्रित है जो राष्ट्र–प्रेम से सराबोर है। अपने पथभ्रष्ट पुत्र भटार्क को सही दिशा में लाने की पुरजोर कोशिश करती है, असफल होने पर वह अपनी ही कोख को लांछित करती है। कमला की सत्प्रेरणा से ही भटार्क का हृदय–परिवर्तन होता है। स्कन्दगुप्त की माता महादेवी देवकी मातृ–स्नेह से पूरित चरित्र है। स्कन्दगुप्त के चरित्र में उनके व्यक्तित्व की शालीनता और राज–निष्ठा झलकती है। **मालिनी** मातृगुप्त की पूर्व–प्रेमिका और वर्तमान में प्रसिद्ध वेश्या के रूप में चित्रित है। अपने अस्तित्व के द्वंद्व से ग्रस्त मालिनी के चरित्र का विकास नाटक में अधिक नहीं हो पाया है।

'स्कन्दगुप्त' नाटक के पात्रों पर विचार करने के उपरान्त कहा जा सकता है इस नाटक के सभी चरित्रों का विकास मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ है। मानव अपने स्वभाव और प्रवृत्ति से देवता और दानव –दोनों जैसा व्यवहार कर सकता है –'स्कन्दगुप्त' नाटक के ये पात्र इसी धारणा को पुष्ट करते हैं। संभवतः इसीलिए पाठक/दर्शक के साथ सहज ही जुड़ जाते हैं।

7.4 संवाद और भाषा

जैसाकि आप इकाई–5 'जयशंकर प्रसाद के नाटकों का सामान्य परिचय' में पढ़ चुके हैं कि छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद संस्कृतनिष्ठ काव्यात्मक भाषा के प्रयोक्ता हैं। प्रसाद के कवि–व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी नाट्य–भाषा पर भी झलकता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित होने के कारण इसके संवादों की भाषा में खड़ी बोली के संस्कृतनिष्ठ रूप का अधिक होना स्वाभाविक ही है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक की भाषा काव्यात्मक, प्रतीकात्मक, व्यंजना–प्रधान, भाव–प्रधान और बिम्ब–प्रधान है। भाषा में नाटकीयता और व्यंजना का गुण बनाए रखने के लिए प्रसाद जी ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक में प्रचुर मात्रा में मुहावरों का भी सटीक प्रयोग किया है। देवसेना, मातृगुप्त जैसे भावना–प्रधान चरित्रों के संवाद अपेक्षाकृत काव्यात्मक है। एक उदाहरण दृष्टव्य है।

"मातृगुप्त–(अपनी भावनाओं में तल्लीन, जैसे किसी को न देख रहा हो) अमृत के सरोवर में स्वर्ण–कमल खिल रहा था, भ्रमर वंशी बजा रहा था, सौरभ और पराग की चहल–पहल थी। सवेरे सूर्य की किरणें उसे चूमने को लौटती थीं, सन्ध्या में शीतल चाँदनी उसे अपनी चादर से ढँक देती थी। उस मधुर सौन्दर्य, उस अतीन्द्रिय जगत की साकार कल्पना की ओर मैंने हाथ बढ़ाया था, वहीं स्वप्न टूट गया!"

प्रस्तुत संवाद में कवि–हृदय मातृगुप्त के सुखद जीवन की विफलता और उससे उपजी वेदना काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत की गयी है।

कुछ स्थलों पर प्रख्यातकीर्ति, जयमाला और मातृगुप्त के संवादों की भाषा दार्शनिकता का पुट लिए हुए है। राष्ट्र–शक्ति को संगठित करने वाले वृद्ध पर्णदत्त के संवादों की भाषा में व्यंजना का गुण है :

"पर्णदत्त – (दांत पीसकर) – नीच, दुरात्मा, विलास का नारकीय कीड़ा! बालों को सँवार कर, अच्छे कपड़े पहन कर, अब भी घमण्ड से तना हुआ निकालता है। कुल–वधुओं का अपमान सामने देखते हुए भी अकड़ कर चल रहा है। अब तक विलास और नीच वासना नहीं गयी। जिस देश के नवयुवक ऐसे हों, उसे अवश्य दूसरों के अधिकार में जाना चाहिए। देश पर यह विपत्ति, फिर भी यह निराली धज!"

भोग–विलास में डूबे नागरिकों को के व्यवहार से चिढ़कर राष्ट्र–सेवक पर्णदत्त का उपर्युक्त संवाद प्रसाद के समय की, परतंत्र भारत की युवा पीढ़ी के व्यवहार का वर्णन करता दिखता है।

प्रस्तुत नाटक के संवादों की भाषा बिम्बात्मक भी है जो पढ़ते या सुनते समय दर्शक/पाठक के मन में नाट्य–व्यापार से संबंधित चित्र साकार करती चलती है। मालव दुर्ग पर शकों के आक्रमण के समय संभावित युद्ध के समय जयमाला, विजया और देवसेना के आपसी वार्तालाप में संगीत संबंधी शब्दों के माध्यम से जो बिम्ब प्रसाद जी ने उकेरे हैं, वे देवसेना के गीतिमय और भावुक चरित्र को और अधिक प्रभावशाली बनाते हैं :

"विजया –युद्ध और गान!

जयमाला – युद्ध क्या गान नहीं है? रुद्र का शृंगीनाद, भैरवी का ताण्डव–नृत्य और शस्त्रों का वाद्य मिलकर भैरव–संगीत की सृष्टि होती है। जीवन के अंतिम दृश्य को जानते हुए, अपनी आँखों से देखना; जीवन–रहस्य के चरम–सौन्दर्य की नग्न और भयानक वास्तविकता का अनुभव केवल सच्चे वीर–हृदय को होता है। ध्वंसमयी महामाया–प्रकृति का वह निरन्तर संगीत है। उसे सुनने के लिए हृदय में साहस और बल एकत्र करो। अत्याचार के श्मशान में ही मंगल का शिव का, सत्य सुन्दर संगीत का समारम्भ होता है।"

इस प्रकार आप देखेंगे कि 'स्कन्दगुप्त' नाटक में पात्रों की पृष्ठभूमि और स्वभाव के अनुरूप विभिन्न प्रकार के संवाद देखने को मिलते हैं।

नाटक में जब किसी पात्र के अंतर्मन में कोई बात चल रही हो तो भी वह उसे बोलकर ही कहता है, ऐसे संवादों को नाटक की भाषा में स्वगत कथन या एकालाप कहा जाता है। स्वगत कथन का प्रयोग चरित्रों के आंतरिक संघर्ष, अनिर्णय, असमंजस और एकांत चिंतन–मनन की स्थिति में किया जाता है। स्वगत कथनों के माध्यम से दर्शक/पाठक चरित्रों के अंतर्जगत से परिचित होते हैं। जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में स्वगत कथनों का भरपूर प्रयोग किया है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में स्वगत कथनों के माध्यम से पात्रों के मानसिक उद्वेलन को उभारने का अच्छा प्रयास किया गया है। प्रस्तुत नाटक में

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

प्रयुक्त स्वगत कथनों का नाटकीय महत्त्व बताते हुए महेश आनंद लिखते हैं –"नाटकीय दृष्टि से प्रस्तुत नाटक के स्वगत–कथनों का विशेष महत्त्व है। स्कन्दगुप्त जैसे व्यक्ति की आस्था, पराजय एवं छल–कपट के बीच डगमगाती है और कहीं उसका भीतरी सैनिक–व्यक्ति भ्रष्ट राजनीति में डूबता–उतराता है। इन्हीं क्षणों का दृश्यांकन उसके स्वगत–कथनों द्वारा हुआ है। अनचाही स्थितियों का बार–बार सामना करने वाला व्यक्ति भीतर ही भीतर कितना बिखर जाता है, इसे उद्‌घाटित करने के लिए नाटककार ने स्कंद के स्वगतों की सफल योजना की है।" स्कन्दगुप्त की उदासीनता और आंतरिक द्वंद्व भी उसके स्वगत–कथनों में ही अधिक व्यक्त हुए हैं – "अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है। अपने को नियामक और कर्त्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है ! उत्सवों में परिचारक और अस्त्रों में ढाल से भी अधिकार–लोलुप मनुष्य क्या अच्छे हैं? (ठहरकर) उँह! जो कुछ भी हो, हम तो साम्राज्य के एक सैनिक हैं।" – इस संवाद में व्यक्तिगत उदासीनता के साथ राष्ट्र–रक्षा के लिए तत्परता का द्वंद्व साफ झलकता है। देवसेना, मातृगुप्त, शर्वनाग, विजया आदि पात्रों के चारित्रिक उभार में उनके स्वगत कथनों का विशेष महत्त्व है। इस सन्दर्भ में डॉ. सत्येन्द्र कुमार तनेजा का कहना है – "एकालाप के द्वारा नाटककार व्यक्तित्व के ऐसे अल्पपरिचित या अपरिचित पक्ष को उजागर करता है –जिसका संबंध अंतर्जगत से हो। इसमें अंतर्द्वंद्व और अंतर्विरोध का विश्लेषण किया गया है ताकि जीवन–कार्य के मूलस्रोत या कारण को जाना–समझा जा सके। इस मंथन–प्रक्रिया से प्रसाद स्कन्दगुप्त, देवसेना, मातृगुप्त, शर्वनाग, बंधुवर्मा, पर्णदत्त और विजया की प्रकृति के वे पक्ष उजागर कर सके जो उनकी अलग पहचान बनाते हैं। यह उनके सर्जनात्मक संघर्ष की उपलब्धि है।"

कमला, रामा और अनन्तदेवी के संवाद कटूक्तियों से परिपूर्ण हैं। कमला और रामा के संवादों में प्रसाद जी ने ऐसे सटीक, उपयुक्त और मारक शब्दों का प्रयोग किया है जो क्रमशः भटार्क और शर्वनाग को उनके घृणित कृत्य के प्रति अपराध–बोध जगाने में समर्थ होते हैं। महारानी देवकी की हत्या के षड्यंत्र में संलिप्त अपने पति शर्वनाग को रामा इन शब्दों में तीखी फटकार लगाती है :

"रामा – ओह! मैं समझ गई! तूने बेच दिया – पिशाच के हाथों तूने अपने को बेच दिया! अहा! ऐसा सुन्दर, ऐसा मनुष्योचित मन कौड़ी के मोल बेच दिया। लोभवश मनुष्य से पशु हो गया है। रक्तपिपासु! क्रूरकर्मा मनुष्य! कृतघ्नता की कीच का कीड़ा! नरक की दुर्गंध! तेरी इच्छा कदापि पूर्ण न होने दूँगी। मेरे रक्त के प्रत्येक परमाणु में जिसकी कृपा की शक्ति है, जिसके स्नेह का आकर्षण है, उनके प्रतिकूल आचरण! वह मेरा पति तो क्या, स्वयं ईश्वर भी हो, नहीं करने पावेगा।"

अनन्तदेवी के संवाद उसकी महत्वाकांक्षा, षड्यन्त्रकारी और कुटिल चरित्र को उभारते हैं। विजया भी अति महत्वाकांक्षी चरित्र है। जब अनन्तदेवी और विजया के आपसी हित टकराते हैं तब प्रसाद जी ने छोटे और बड़े –दोनों तरह के संवादों का प्रयोग करते हुए उनके चरित्र को उभारा है। ऐसे स्थलों पर संवाद चुस्त बन पड़े हैं और भाषा में प्रवाहमयता का गुण आ गया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है :

"अनन्तदेवी – (बात बनाती हुई) क्या तुम पुरगुप्त के साथ सिंहासन पर नहीं बैठना चाहती हो? क्यों? –वह भी तो कुमारगुप्त का पुत्र है?

विजया – हाँ, वह कुमारगुप्त का पुत्र है; परन्तु वह तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न है! तुमसे उत्पन्न हुई संतान – छिः!

अनन्तदेवी – क्या कहा? समझ कर कहना।

विजया – कहती हूँ, और फिर कहूंगी! प्रलोभन से, धमकी से, भय से, कोई भी मुझको भटार्क से वंचित नहीं कर सकता। प्रणय–वंचिता स्त्रियाँ अपनी राह के रोड़े –विघ्नों –को दूर करने के लिए वज्र से भी दृढ़ होती हैं! हृदय को छीन लेने

वाली स्त्री के प्रति हत्सर्वस्वा रमणी पहाड़ी नदियों के भयानक, ज्वालामुखी के विस्फोट से वीभत्स और प्रलय की अनल–शिखा से भी लहरदार होती है! मुझे तुम्हारा सिंहासन नहीं चाहिए! मुझे क्षुद्र पुरगुप्त के विलास–जर्जर मन और यौवन में जीर्ण शरीर का अवलंब वांछनीय नहीं। कहे देती हूँ, हट जाओ, नहीं तो तुम्हारी समस्त कुमंत्रणा को एक फूँक में उड़ा दूँगी।

अनन्तदेवी – क्या! इतना साहस! तुच्छ स्त्री! तू जानती है कि किसके साथ बात कर रही है? मैं वही हूँ –जो अश्वमेघ–पराक्रम कुमारगुप्त से, बालों को सुगन्धित करने के लिए गंधचूर्ण जलवाती थी –जिसकी एक तीखी कोर से गुप्त–साम्राज्य डाँवाडोल हो रहा है, उसे तुम ... एक सामान्य स्त्री! जा–जा ले अपने भटार्क को; मुझे ऐसे कीट–पतंगों की आवश्यकता नहीं ! परन्तु स्मरण रखना, मैं हूँ अनन्तदेवी! तेरी कूटनीति के कटंकित कानन की दावाग्नि – तेरे गर्व–शैल–शृंग का वज्र! मैं वह आग लगाऊँगी, जो प्रलय के समुद्र से भी न बुझे!"

इसी प्रकार बौद्ध–कापालिक प्रपंचबुद्धि के धूर्त, कुटिल, चालाक और रहस्यमय व्यक्तित्व को उभारने में भी उसके संवादों की बड़ी भूमिका है।

प्रस्तुत नाटक में पृष्ठभूमि और परिस्थिति के अनुरूप सूच्य संवादों का कुशल प्रयोग प्रसाद जी ने किया है जिनसे घटनाओं और क्रियाओं की सूचना देने से नाटक को गति मिली है। आकार की दृष्टि से भी प्रसाद जी ने लघु और दीर्घ – दोनों प्रकार के संवादों का प्रयोग नाट्य–स्थिति और चरित्रों की मनोदशा के अनुरूप किया है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में कई स्थलों पर अत्यधिक लम्बे संवाद भी आए हैं जो पाठक/दर्शक को बोझिल और उबाऊ लगते हैं। संवादों को अधिकाधिक प्रभावपूर्ण बनाने में प्रसाद जी ने संबोधन, ध्वनि–सूचक शब्द, प्रश्नसूचकता, विस्मयबोधकता, पुनरुक्ति आदि का यथोचित उपयोग किया है।

7.5 गीत–योजना

जयशंकर प्रसाद गहरी संवेदना से परिपूर्ण नाटककार थे। छायावादी कविता के प्रमुख चार स्तंभों में से प्रसाद जी ने अपने कवि–व्यक्तित्व की झलक नाटकों में प्रयुक्त गीतों के माध्यम से दी है। उनके नाटकों में आये गीत सोद्देश्य हैं जो पात्रों के चरित्र को उभारने के साथ ही नाटकीय घटना–व्यापार को सघन बनाने और गति प्रदान करने का काम करते हैं। इसी सन्दर्भ में आलोचक विजय मोहन सिंह लिखते हैं – "प्रसाद के नाटकों में प्रयुक्त 'गीत' महज अलंकरण अथवा अवांतर प्रसंग मात्र नहीं हैं। वे उनके चरित्रों की भावगत विशेषताओं तथा बहुधा वस्तुगत स्थितियों की भी संवेगात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं जो उनके नाटकीय क्रिया–व्यापार को अधिक आवेगशील बनाकर उनकी सम्प्रेषण क्षमता में भी वृद्धि करती हैं।" किन्तु गीतों की बहुलता के कारण नाटकीय व्यापार में बाधा पैदा होने का डर भी बना रहता है।

'स्कन्दगुप्त' नाटक के पाँच अंकों में छोटे–बड़े कुल सत्रह गीत हैं। इन गीतों को आमोद–गीत, प्रार्थना–गीत, उद्‌बोधन–गीत, प्रेम–गीत, वेदना–गीत आदि कई श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। इनमें पाँच गीत अकेले देवसेना ने ही गाए हैं। एक गीत देवसेना की सखी ने देवसेना के लिए गाया है। दो गीत विजया ने, दो गीत नर्तकियों ने, दो गीत मातृगुप्त ने गाए हैं। एक गीत स्कन्दगुप्त ने, दो गीत नेपथ्य से, एक गीत दुखी स्त्रियों द्वारा और एक सामूहिक उद्‌बोधन गीत है।

देवसेना द्वारा गाए गए सारे गीत भावुक हृदय के उदगार हैं जिनमें कहीं प्रेम है, कहीं करुणा है तो कहीं वेदना है। देवसेना पहला गीत 'भरा नैनों में मन में रूप' पहले अंक के सातवें दृश्य में उस विकट समय गाती है जब मालव–दुर्ग शकों और हूणों की सम्मिलित वाहिनी से आक्रान्त हैं, भयानक युद्ध से पहले देवसेना अपने प्रिय गान को गा

लेना चाहती है। दूसरे अंक के प्रथम दृश्य में मालव में शिप्रा–तट–कुञ्ज पर विजया से प्रेम पर बातें करते हुए देवसेना 'घने प्रेम–तरु–तले' गीत में प्रेम–भाव की शीतलता और कोमलता का बखान करती है :

घने प्रेम–तरु–तले
बैठ छाँह लो भव आतप से तापित और जले।
छाया है विश्वास की श्रद्धा–सरिता–कूल,
सिंची आंसुओं से मृदुल है परागमय धूल,
यहाँ कौन जो छले!

तीसरे अंक के छठे दृश्य में देवसेना की सखी द्वारा गाया गीत 'माझी! साहस है खे लोगे!' भी देवसेना–केन्द्रित ही है जिसमें विपरीत परिस्थितियों में जीवन–नौका को गतिवान रखने का सन्देश है। पाँचवें अंक के दूसरे दृश्य में देवसेना 'शून्य गगन में खोजता जैसे चन्द्र निराश' गीत में अपने वेदनामय जीवन को अभिव्यक्त करती है। पाँचवें अंक के तीसरे दृश्य में देवसेना द्वारा गाए गीत 'देश की दुर्दशा निहारोगे' में जीर्ण–क्षीण राष्ट्र की विपन्नावस्था के प्रति नागरिकों की उदासीनता से उत्पन्न व्यथा व्यक्त हुई है। पाँचवें अंक के छठे दृश्य में 'आह! वेदना मिली विदाई' स्वगत–गीत में देवसेना अपने जीवन के भावी सुख, आशा और आकांक्षा आदि से विदा लेती है। नाटक के अंत में विजयश्री पाने के बावजूद देवसेना और स्कन्दगुप्त के वियोग को दर्शाता यह गीत पाठक/दर्शक पर एक अलग ही तरह का मर्मस्पर्शी भाव छोड़ जाता है। इस गीत का एक अंश दृष्टव्य है :

आह! वेदना मिली विदाई
मैंने भ्रमवश जीवन सन्चित,
मधुकरियों की भीख लुटाई
छलछल थे सन्ध्या के श्रमकण
आँसू–से गिरते थे प्रतिक्षण
मेरी यात्रा पर लेती थी
नीरवता अनन्त अँगड़ाई।

विजया द्वारा गाए दोनों गीतों में उसके चरित्र के अनुरूप यौवन और मादकता का चित्र है। पहला गीत 'उमड़ कर चली भिगोने आज' वह भटार्क के लिए गाती है तो दूसरा 'अगरू धूम की श्याम लहरियां उलझी हों इन अलकों में' स्कन्दगुप्त को आकर्षित करने के लिए।

नर्तकियों द्वारा प्रथम अंक के दूसरे दृश्य में गाए गए 'न छेड़ना उस अतीत स्मृति को' गीत की योजना सम्राट कुमारगुप्त की राजसभा में आमोद–प्रमोद की दृष्टि से की गई है जबकि भटार्क के शिविर में गाये गये दूसरे गीत 'भाव–निधि में लहरियां उठतीं तभी' की योजना भटार्क की भ्रमित बुद्धि को पुनः सत्पथ पर लाने के उद्देश्य से की है।

मातृगुप्त द्वारा गाया गया पहला गीत 'प्रिय! संसृति के वे सुन्दरतम क्षण यों ही भूल नहीं जाना' –उसके स्वगत कथन के बीच में आया है जिसमें वह कश्मीर में बिताए गए सुखद जीवन की मधुर और स्वप्नमयी स्मृतियों का स्मरण करते हुए भावुक हो जाता है।

'स्कन्दगुप्त' में कुछ प्रार्थना–गीत भी हैं। उदाहरणतः पहले अंक के छठे दृश्य में आया मातृगुप्त का दूसरा गीत 'उतारोगे अब कब भू–भार' प्रार्थना–स्वरूप है जो हूणों के राक्षसी अत्याचार से त्रस्त होकर प्रस्फुटित हुआ है। यहीं पर हूणों के दुर्व्यवहार से आतंकित स्त्रियों द्वारा भी 'हमारे निर्बलों के बल कहाँ हो' प्रार्थना–गीत गाया है

जिसमें ईश्वर से कष्ट–निवारण की आर्त–पुकार की गयी है। इसी प्रकार चौथे अंक के छठे दृश्य में थका–हारा, हताश–निराश स्कन्द 'बजा दो वेणु मनमोहन! बजा दो'– स्वगत–गीत में ईश्वर से विमल स्वातंत्र्य का मन्त्र फूँकने और भीति–बंधन से छुड़ाकर जीवन को आनंदमय बनाने की प्रार्थना करता है।

पाँचवें अंक के पाँचवें दृश्य में रणक्षेत्र में स्कन्दगुप्त, भटार्क, चक्रपालित, पर्णदत्त, मातृगुप्त, भीमवर्मा इत्यादि मिलकर महान भारत–भूमि पर स्वयं को न्योछावर करने को प्रस्तुत करते हुए गाते हैं –'हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार' –यह गीत स्कन्दगुप्त के नेतृत्व में आर्यावर्त को मिलने वाली भावी विजय का पूर्व–घोष लगता है। यह गीत प्रसाद–साहित्य का ही नहीं, समूचे हिन्दी साहित्य के देशभक्ति–परक गीतों में गिना जाता है। प्रस्तुत गीत का अंतिम अंश दृष्टव्य है :

> वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान।
>
> वही है शान्ति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य संतान।
>
> जियें तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष।
>
> निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।

नेपथ्य–गीतों का भी 'स्कन्दगुप्त' नाटक में विशेष प्रयोजन है। तृतीय अंक के दूसरे दृश्य में विजया देवसेना को श्मशान में ले आती है। यहीं जीवन की नश्वरता का वर्णन करता नेपथ्य से गाया गीत 'सब जीवन बीता जाता है' – विजया और प्रपंचबुद्धि द्वारा देवसेना की बलि के षड्यंत्र की पृष्ठभूमि–सा दिखता है। इसी अंक के चतुर्थ दृश्य में नेपथ्य–संगीत के रूप में 'पालना बनें प्रलय की लहरें' गीत बन्दीगृह में देवकी और रामा के जीवन की अनिश्चितता और अनन्तदेवी द्वारा रचे गए षड्यंत्र के भयावह माहौल को और अधिक सघन बनाता है।

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में गीतों पर विचार करते हुए महेश आनंद लिखते हैं कि "प्रसाद के गीत उन स्थलों पर आवश्यक लगते हैं, जहाँ पात्रों की अनुभूतियों या स्थितियों को उभारने में गद्यात्मकता असमर्थ हो जाती है। ऐसे स्थलों पर कई गीत, स्वगत या संवाद के रूप में अथवा सीधे दर्शकों से संबोधित होते हुए, पात्रों की मानसिकता के सूक्ष्म स्तरों का परिचय कराते हैं।" 'स्कन्दगुप्त' नाटक के गीतों पर भी यही बात लागू होती है। पात्रों के अंतर्मन को अभिव्यक्त करने के साथ नाट्य–परिस्थितियों को उभारने में इस नाटक के गीत काफी प्रभावी हैं। नाटक पढ़े जाने पर ये गीत आकर्षित भी करते हैं कितु रंगमंचीय–प्रस्तुति में गीतों की बहुलता नाटक को अनावश्यक रूप से लम्बा बनाते हुए संप्रेषणीयता को ठेस भी पहुँचा सकती है।

7.6 देश–काल और वातावरण

नाटक को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए देश, काल और वातावरण का काफी महत्त्व है। प्रत्येक नाटक की कथावस्तु किस देश, किस काल और किस वातावरण से संबंधित है– नाटक की संप्रेषणीयता में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसका लाभ यह है कि दर्शक/पाठक नाटक के कथ्य से सहजता से जुड़ जाते हैं।

'स्कन्दगुप्त' का रचना काल सन् 1928 ई. है। उस समय भारत में जैसे–जैसे भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन तीव्र गति को प्राप्त कर रहा था, वैसे–वैसे ब्रिटिश शासन का अत्याचार भी बढ़ता जा रहा था। गाँधी जी के नेतृत्व में चला असहयोग आन्दोलन किन्हीं कारणों से वापस ले लिया गया था। ऐसे समय में स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय भारतीय युवा पीढ़ी में कुछ समय के लिए अवसाद और निराशा का भाव भर गया था। 'साइमन कमीशन' की घोषणा ने युवाओं को फिर से सक्रिय किया। अंग्रेजों

की विभाजनकारी नीति के परिणामस्वरूप एक ओर साम्प्रदायिक दंगे लगातार बढ़ रहे थे तो दूसरी ओर स्वाधीनता आन्दोलन में रजवाड़ों द्वारा कोई सहयोग नहीं किया जा रहा था। रजवाड़ों को पेंशन या उपाधि का लालच देकर स्वाधीनता आन्दोलन से दूर रखने में भी अंग्रेजों को सफलता मिल रही थी। उद्योग धंधों पर ब्रिटिश सरकार का कब्जा था जिससे भारत में आर्थिक विषमता भी बढ़ती जा रही थी। उस दौर में भारतीय नागरिकों की एक पीढ़ी ऐसी भी थी जो अंग्रेजी सरकार की नौकरियाँ करते हुए उनकी अत्याचारपूर्ण नीति का अंधाधुंध पालन कर रही थी। साथ ही, कुछ युवा ऐसे भी थे जो अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने और पाश्चात्य रहन–सहन अपनाने के बाद स्वयं को सामान्य भारतवासियों से उच्च स्तर का समझ रहे थे, उन्हें भारत की स्वतंत्रता से कोई लेना–देना नहीं था। इन्हीं सब देशकालगत विषम परिस्थितियों के आलोक में प्रसाद ने स्वर्णिम इतिहास का सहारा लेकर 'स्कन्दगुप्त' नाटक की रचना की।

'स्कन्दगुप्त' नाटक में भारत देश के इतिहास के गुप्त–काल की घटनाओं को आधार बनाया गया है, जिसका उल्लेख प्रसाद जी ने प्रस्तुत नाटक की भूमिका में विस्तार से किया है। गुप्त–सम्राट स्कन्दगुप्त के नेतृत्व में शकों और हूणों की पराजय, राष्ट्र–रक्षा के लिए स्कन्दगुप्त का संघर्ष करना, मालव राज्य का स्कन्दगुप्त के नेतृत्व में सम्मिलित होना, सौतेले भाई पुरगुप्त के साथ आंतरिक द्वंद्व का होना आदि गुप्त–काल की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं के साथ कुछ काल्पनिक प्रसंगों और चरित्रों की सृष्टि ने प्रस्तुत नाटक के देश–काल को विश्वसनीय आधार प्रदान किया है।

कथावस्तु के नाट्य–व्यापार के अनुरूप ही प्रस्तुत नाटक में वातावरण की सृष्टि की गयी है। उज्जयिनी, कुसुमपुर, मगध की राजसभाओं व प्रकोष्ठों से संबंधित वातावरण ने इस नाटक की ऐतिहासिकता को बरकरार रखा है। अवन्ति दुर्ग, गांधार की घाटी का रण–क्षेत्र, कुम्भा का रण–क्षेत्र, भटार्क के शिविर आदि में युद्ध के वातावरण की सर्जना हुई है। काल्पनिक प्रसंगों के अंतर्गत मालव में शिप्रा–तट कुंज, उपवन, नगर–प्रान्त का पथ आदि के माध्यम से प्राकृतिक वातावरण की सृष्टि इस नाटक में हुई है। साथ ही, श्मशान, अनन्तदेवी के प्रकोष्ठ, बन्दीगृह वाले दृश्यों में भयावह वातावरण की रचना भी प्रसाद जी ने की है। मठ, बोधि–विहार, बौद्ध–स्तूप आदि का भी नाटक के कथ्य के अनुरूप वातावरण–निर्माण में प्रसाद जी ने सहारा लिया है।

देश–काल–वातावरण की दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' नाटक की सीमा यह है कि इसके सभी दृश्यों में स्थान और समय की अत्यधिक दूरी है। नाटक को पढ़ते समय तो यह स्थिति अधिक बाधा उत्पन्न नहीं करती किन्तु मंचित करते समय रंगकर्मियों के सामने चुनौती बन जाती है।

7.7 उद्देश्य

'स्कन्दगुप्त' नाटक की गिनती ऐतिहासिक नाटकों में होती है किन्तु इस नाटक का उद्देश्य आज भी प्रासंगिक है। डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. गोविन्द चातक जैसे विद्वान इस बात पर सहमत है कि इस नाटक का उद्देश्य केवल भारतीय इतिहास का स्वर्ण–युग कहे जाने वाले गुप्त–काल का महिमामंडन करना नहीं है, बल्कि तत्कालीन भारतीय जनता को राष्ट्रीय एकता के लिए सन्नद्ध करना है। जैसाकि हम पहले भी पढ़ चुके हैं कि प्रसाद जी ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक की रचना 1928 ई. में की थी। यदि हम उस समय के भारतीय परिदृश्य को देखें तो पाएँगे कि ब्रिटिश शासन का अत्याचार बढ़ता जा रहा था। गाँधी जी द्वारा चलाया गया असहयोग आन्दोलन कुछ घटनाओं के कारण वापस ले लिया गया था। गाँधी जी के इस निर्णय से भारतवासियों, विशेषकर युवा पीढ़ी में कुछ समय के लिए अवसाद और निराशा का भाव भर गया था। हालाँकि 'साइमन कमीशन' की घोषणा के विरुद्ध भारतवासी पुनः एकजुट हुए। उस समय भारत में साम्प्रदायिक दंगे लगातार बढ़ रहे थे। राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

रजवाड़ों द्वारा कोई सहयोग नहीं किया जा रहा था। आर्थिक विषमता बढ़ती जा रही थी –इन सारी परिस्थितियों की झलक 'स्कन्दगुप्त' नाटक के विभिन्न दृश्यों में देखने को मिलती है। नाटक में दिखलाए गए ब्राह्मण–बौद्ध संघर्ष में प्रसादकालीन भारत में होने वाले विभिन्न साम्प्रदायिक दंगों की झलक मिलती है। समावेशी और सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार ही इन दंगों का समाधान हो सकता है –'स्कन्दगुप्त' में प्रसाद जी ने यह सन्देश बहुत सशक्त ढंग से दिया है।

जयशंकर प्रसाद एक दूरद्रष्टा नाटककार थे। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में उन्होंने अपने युग और भविष्य की भी आवश्यकता के अनुरूप महती उद्देश्य को अभिव्यक्त किया है। इस नाटक में व्यक्त विश्व–मैत्री, राष्ट्र–प्रेम, साम्प्रदायिक और जातीय सद्भाव की आवश्यकता भारत को आज भी उतनी ही है जितनी प्रसाद के समय में थी और गुप्त–काल में भी थी। इस रूप में 'स्कन्दगुप्त' नाटक आज भी प्रासंगिक है। सुदृढ़ गुप्त–साम्राज्य को तोड़ने और पतन की ओर ले जाने वाली धार्मिक, राजनीतिक और विदेशी शक्तियाँ आज भी किसी–न–किसी रूप में हमारे चारों ओर विद्यमान हैं। युवा स्कन्दगुप्त का चरित्र अपनी व्यक्तिगत परिस्थितियों की प्रतिकूलता के बावजूद राष्ट्र की अखंडता और सुरक्षा के लिए विघटनकारी परिस्थितियों से संघर्ष करता है और अंततः जीतता है। इस रूप में प्रस्तुत नाटक प्रसाद के समकालीन युवा और आज के युवा को उद्बोधित और प्रेरित करता है कि राष्ट्र–धर्म से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, कोई प्रेम नहीं है। 'स्कन्दगुप्त' की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना के विषय में डॉ. दशरथ ओझा ने गहराई से विचार किया है। वे लिखते हैं –"... इसमें गुप्तकालीन राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक महत्त्व के साथ–साथ समसामयिकता की गहरी छाप झलकती है। नाटक–रचनाकाल में भारत स्वातंत्र्य–युद्ध के विरोधियों को प्रबल बनाने वाले धार्मिक कलह और संकीर्ण भावों की ओर जैसा संकेत इस नाटक में उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र नहीं। पृथ्वीसेन, पर्णदत्त, बन्धुवर्मा जैसे रत्नों के बलिदान के कारण ही किसी काल में देश का गौरव बढ़ता है। देश–रक्षा का सबसे आकर्षक स्वर इस नाटक में सुनाई पड़ता है। भारत का गौरव–गान धातुसेन जिन शब्दों में करता है, वे इसकी महत्ता के प्रमाण हैं।" वस्तुतः 'स्कन्दगुप्त' नाटक व्यक्तिगत राग–द्वेषों, इच्छा–आकांक्षाओं से ऊपर उठकर, स्वयं के लिए कुछ भी न चाहते हुए राष्ट्र के लिए सर्वस्व न्योछावर करने का पाठ सिखाता है।

मानवीय धरातल पर यह नाटक उन साधारण मनुष्यों के भीतरी संघर्ष को उभारता है जो सामाजिक–राजनीतिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करते–करते स्वयं हताश, निराश और एकाकी हो गये हैं। मानव–जीवन में अनेक बार ऐसे क्षण आते हैं जब परिस्थितियों के घात–प्रतिघात से हृदय भग्न हो जाता है, दिशा दिग्भ्रमित हो जाती है –ऐसी स्थिति में मानव का भीतरी संघर्ष चलता है और अन्ततः संघर्षों से उबरकर जीवन की भावी दिशा तय की जाती है। स्कन्दगुप्त और देवसेना ऐसे मनुष्यों का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रस्तुत नाटक को मानवीयता का सहज संस्पर्श देते हैं।

7.8 रंगमंचीयता

कोई भी नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत होकर ही सम्पूर्णता प्राप्त कर पाता है। रंगमंच की अपनी सीमाएँ और विशिष्टताएँ होती हैं जिनके अनुरूप ही कोई नाटक सफल या असफल कहा जाता है। महत् उद्देश्य के बावजूद 'स्कन्दगुप्त' नाटक लम्बी अवधि तक रंगकर्मियों की उपेक्षा पाता रहा, जिसके कई कारण रहे।

'स्कन्दगुप्त' नाटक के पाँच अंकों में कुल तैंतीस दृश्य हैं। नाट्य–प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से यह संख्या अत्यधिक कही जाती है। इस दृश्य–बहुलता का कारण घटनाओं का विस्तार है– ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण 'स्कन्दगुप्त' नाटक के घटना–व्यापार का

विस्तार उज्जयिनी, कुसुमपुर, मगध, अवन्ति दुर्ग, राजसभा, प्रकोष्ठ, बन्दी–गृह, गांधार की घाटी का रण–क्षेत्र, कुम्भा का रण–क्षेत्र, भटार्क का शिविर, मालव में शिप्रा–तट कुंज, उपवन, पर्णकुटी, नगर–प्रान्त का पथ, श्मशान, मठ, बोधि–विहार, बौद्ध–स्तूप आदि तक फैला हुआ है। प्रसाद जी ने इस नाटक में लगभग सभी अंकों के विभिन्न दृश्यों का स्थल अलग–अलग रखा है। उदाहरण के लिए, प्रथम अंक का पहला दृश्य उज्जयिनी में गुप्त साम्राज्य के स्कन्धावार, दूसरा दृश्य कुसुमपुर के राज–मंदिर में सम्राट कुमारगुप्त और उनकी परिषद्, तीसरा दृश्य पथ में मातृगुप्त, चौथा अनन्तदेवी के सुसज्जित प्रकोष्ठ, पाँचवाँ अन्तःपुर के द्वार, छठा नगर–प्रान्त के पथ, सातवाँ अवन्ति के दुर्ग से सम्बन्धित है। शेष अंकों के दृश्यों की स्थिति भी लगभग समान है। ऐसी स्थिति में इन दृश्यों को एक–के–बाद–एक मंच पर दिखला पाना अत्यंत दुसाध्य कार्य है।

इस नाटक के लम्बे और दार्शनिकता पूर्ण संवाद, स्वगत–कथनों की बहुलता भी इसकी अभिनेयता और संप्रेषणीयता को ठेस पहुँचाते हैं। ऐसे संवादों की भाषा अपेक्षाकृत अधिक क्लिष्ट भी है।

कई दृश्यों में पात्रों का आकस्मिक प्रवेश–विधान प्रस्तुति को अस्वाभाविक बना देता है। संभवतः प्रसाद जी ने इस प्रकार का विधान नाटक में चमत्कार पैदा करने के लिए रखा हो किन्तु ऐसा विधान दर्शक/पाठक को बहुत बार अविश्वसनीय और अतार्किक भी लग सकता है।

रंगमंच की दृष्टि से उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद आधुनिक हिन्दी रंगमंच में कुछ कल्पनाशील और प्रयोगशील रंगकर्मियों ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक के महत् उद्देश्य की प्रासंगिकता समझते हुए इसकी रंगमंचीय संभावनाओं पर सूझ–बूझ से विचार किया और आवश्यक संशोधन के साथ सफलतापूर्वक मंच पर प्रदर्शित किया। ऐसे रंगकर्मियों में ब. व. कारंत, शांता गाँधी, राम गोपाल बजाज जैसे दिग्गज रंग–निर्देशकों का नाम प्रमुख है। इन सभी ने इस धारणा का खंडन किया कि 'स्कन्दगुप्त' मंचन के योग्य नाटक नहीं है। कारंत जी ने 'स्कन्दगुप्त' के प्रस्तुति–आलेख को अपनी निर्देशकीय दृष्टि से तैयार किया जिसमें उन्होंने प्रसाद के अन्य नाटकों के गीतों को भी सम्मिलित किया, कई स्थानों पर पूरे गीत के स्थान पर उसके एक हिस्से का ही प्रयोग किया गया, लम्बे संवादों को छोटा किया गया, क्लिष्ट भाषा को सरल बनाया गया। कई प्रसंगों को छोड़ दिया गया। यह नाटक भोपाल के भारत भवन के मुक्ताकाशी मंच पर प्रस्तुत हुआ था। इस प्रस्तुति के सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध रंग–आलोचक महेश आनंद ने लिखा – "कारंत द्वारा निर्देशित स्कन्दगुप्त अपनी सीमाओं के बावजूद एक नई और सार्थक रंग शैली की तलाश के कारण उत्तेजित करता है। दृश्य रचना, विशाल रंगस्थल के नाटकीय उपयोग, प्रवेश–प्रस्थान, कार्य व्यापार एवं सहज बनाने के प्रयास से लेकर नाटक की सम्पूर्ण व्याख्या तक की प्रक्रिया में यह तलाश नजर आई।" (जयशंकर प्रसाद : रंग सृष्टि/रंगमंच के लिए नाटक) इससे पूर्व सुविख्यात रंग–निर्देशिका शांता गाँधी भी अपनी विशिष्ट रंग–दृष्टि के आलोक में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के अंतर्गत 'स्कन्दगुप्त' नाटक के संपादित आलेख को प्रस्तुत कर चुकी थीं। विभिन्न रंग निर्देशकों द्वारा इस नाटक की प्रस्तुति की विशेषता को रेखांकित करते हुए नाट्यालोचक महेश आनंद का कहना है–

"शांता गाँधी ने स्कन्दगुप्त का संपादन (नटरंग, अंक 5, जनवरी–मार्च, 1966) करते हुए स्कंद में ऐसे कर्मयोगी नायक की कल्पना की है, जिसके व्यक्तित्व में अदम्य साहस, योग्यता और 'अधिकार–सुख' के नशे के प्रति उदासीनता जैसे असामान्य गुणों का समन्वय हो। वह राष्ट्रीय विघटन को रोकने के लिए एकता की शक्ति जागृत करने में समर्थ हो। ब. व. कारंत ने इसी नाटक की प्रस्तुति (1984) में दृश्यों की परिकल्पना एवं संयोजन इस प्रकार किया, जिससे वर्तमान राजनैतिक स्थितियों के संदर्भ सहजता से उभरते गए।"

जयशंकर प्रसाद स्वयं रंगमंच की आवश्यकताओं से परिचित नाटककार थे –कई उनके निबंध इस बात के सूचक हैं। 'स्कन्दगुप्त' नाटक के विभिन्न दृश्यों में दिए गए अभिनय संबंधी, पात्रों के प्रवेश–प्रस्थान संबंधी, ध्वनि, संगीत और नृत्य संबंधी, नेपथ्य संबंधी रंग–संकेत भी प्रसाद जी की रंगमंच के प्रति सजगता को प्रमाणित करते हैं। वस्तुतः जिस समय प्रसाद ने यह नाटक लिखा उस समय हिन्दी में पारसी रंगमंच के अंतर्गत लम्बी अवधि के नाटक अधिक लोकप्रिय थे, जिनकी अशालीन छवि को तोड़ने और सहृदय को अच्छा संस्कार देने के लिए प्रसाद ने अपने नाटकों की रचना की। इस सोद्देश्य और सायास कोशिश के कारण ही 'स्कन्दगुप्त' रंगमंच–प्रस्तुति की दृष्टि से थोड़ा दुसाध्य लगता है।

कुछेक रंगमंचीय सीमाओं के बावजूद 'स्कन्दगुप्त' का कथ्य रंगकर्मियों को आकर्षित करता रहा है। नाट्यालोचक महेश आनंद द्वारा संपादित 'जयशंकर प्रसाद : रंगसृष्टिः रंगमंच के लिए नाटक' नामक पुस्तक में सन् 1938 से लेकर 1990 तक 'स्कन्दगुप्त' की पंद्रह मुख्य प्रस्तुतियों का उल्लेख मिलता है। ये प्रस्तुतियाँ देश–भर के विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के साथ राष्ट्रीय और राज्य स्तर की विभिन्न नाट्य–संस्थाओं द्वारा आयोजित की गयीं। दशरथ ओझा, आर. एन. नागर, अमृतलाल नागर, शक्तिशेखर बनर्जी, रामकुमार वर्मा, शांता गाँधी, राम गोपाल बजाज, राजेन्द्र उपाध्याय, शिवमूरत सिंह, ब.व. कारंत, भूपेन्द्रनारायण सिंह जैसे निर्देशकों के निर्देशन में अलग–अलग शैलियों में 'स्कन्दगुप्त' सफलतापूर्वक प्रस्तुत हुआ। ब. व. कारंत के निर्देशन में तैयार की गई प्रस्तुति के पचास से भी अधिक प्रदर्शन हुए।

बोध प्रश्न

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उचित विकल्प का चयन करके दीजिए:

1. 'स्कन्दगुप्त' नाटक में निम्न में से कौन आत्मघात कर लेती है?
   - क) कमला
   - ख) देवसेना
   - ग) विजया
   - घ) जयमाला
2. 'अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है'– किस पात्र के स्वगत कथन का अंश है?
   - क) देवसेना
   - ख) अनन्तदेवी
   - ग) स्कन्दगुप्त
   - घ) मातृगुप्त
3. 'स्कन्दगुप्त' नाटक में 'आह! वेदना मिली विदाई' गीत कौन–सा पात्र गाता है?
   - क) देवसेना
   - ख) रामा
   - ग) जयमाला
   - घ) मातृगुप्त

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक–एक शब्दों में दीजिए :

1. किस निर्देशक के निर्देशन में 'स्कन्दगुप्त' नाटक के पचास से अधिक प्रदर्शन हुए?

 ....

2. 'स्कन्दगुप्त' नाटक के चरित्रों पर किस पाश्चात्य नाट्य–सिद्धांत का प्रभाव है?

 ....

3. 'हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार' गीत प्रस्तुत नाटक में किस स्थल पर गाया जाता है?

 ....

(ग) निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. 'स्कन्दगुप्त' नाटक में ... अंक और ... दृश्य हैं।
2. 'स्कन्दगुप्त' नाटक में सर्वाधिक आंतरिक द्वंद्व से ग्रस्त पात्र ... है।
3. प्रस्तुत नाटक में .... गुप्त–कुल के वृद्ध सेनापति हैं।
4. 'हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार' गीत 'स्कन्दगुप्त' नाटक के .... अंक के .... दृश्य से लिया गया है।
5. पाँचवें अंक के तीसरे दृश्य में देवसेना द्वारा .... गीत गाया जाता है।
6. अनन्तदेवी स्कन्दगुप्त की .... है।
7. 'स्कन्दगुप्त' का रचना काल सन् .... है।
8. 'स्कन्दगुप्त' में बौद्ध कापालिक का नाम ..... है।
9. शर्वनाग की पत्नी का नाम .... है।
10. भटार्क हूणों की मदद करने के लिए .... का बाँध तोड़ देता है।

(घ) निम्नलिखित दीर्घ उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर लगभग 6–7 पंक्तियों में दीजिए :

1. 'स्कन्दगुप्त' नाटक के उद्देश्य पर विचार कीजिए।

 ....
 ....
 ....
 ....
 ....
 ....
 ....

2. 'स्कन्दगुप्त' नाटक के रंगमंचीय पक्ष पर लेख लिखिए।

 ....
 ....
 ....
 ....

....

....

3. स्कन्दगुप्त का चरित्र–चित्रण कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

7.9 सारांश

'नाट्य–शिल्प' से तात्पर्य किसी नाटक के तत्वों का विश्लेषण करना है। 'स्कन्दगुप्त' जयशंकर प्रसाद का सुप्रसिद्ध नाटक है। इस नाटक में भारतीय और पाश्चात्य – दोनों दृष्टियों से नाटकगत तत्वों का निर्वाह प्रसाद जी ने किया है। प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु पाँच अंकों के कुल तैंतीस दृश्यों में विभाजित है, जिसमें गुप्त–कुल के राजसिंहासन को प्राप्त करने के लिए किये जाने वाले षड्यंत्रों के साथ विदेशी आक्रमणकारियों से राष्ट्र की रक्षा का भाव भी प्रसाद जी ने रेखांकित किया है। 'स्कन्दगुप्त' पात्र–बहुल नाटक है। प्रसाद जी ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक के पात्रों के निजी जीवन के राग–द्वेषों के समानांतर राष्ट्र–यज्ञ में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका को एक साथ साधा है। पाश्चात्य नाट्य सिद्धांत की दृष्टि से 'व्यक्ति वैचित्र्य' नाटक का प्रधान गुण है, जिसके अंतर्गत विभिन्न परिस्थितियों में फँसे पात्रों को अपने मूल चरित्र से अलग विचित्र व्यवहार करते हुए दिखलाया जाता है। 'स्कन्दगुप्त' के कई पात्रों पर 'व्यक्ति वैचित्र्य' का प्रभाव देखा जा सकता है। इस नाटक के सभी चरित्रों का विकास मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक की भाषा काव्यात्मक, प्रतीकात्मक, व्यंजना–प्रधान, भाव–प्रधान, बिम्ब–प्रधान और मुहावरेदार है। इस नाटक में पात्रों की पृष्ठभूमि और स्वभाव के अनुरूप विभिन्न प्रकार के संवाद देखने को मिलते हैं। प्रसाद जी ने स्वगत कथनों के माध्यम से पात्रों के मानसिक उद्वेलन को उभारने का अच्छा प्रयास किया है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में सत्रह गीत हैं। ये गीत आमोद, प्रार्थना, उद्बोधन, प्रेम, वेदना आदि विभिन्न भावों से सम्बन्धित हैं। पात्रों की मनःस्थिति को अभिव्यक्त करने के साथ नाट्य–परिस्थितियों को उभारने में ये गीत काफी प्रभावी हैं। देश–काल–वातावरण की दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' नाटक में भारत देश के इतिहास के गुप्त–काल की घटनाओं को आधार बनाया गया है। कथावस्तु के नाट्य–व्यापार के अनुरूप ही प्रस्तुत नाटक में राजसभा, युद्ध, शिप्रा–तट कुंज, बौद्ध–मठ आदि से सम्बन्धित दृश्यों में यथोचित वातावरण की सृष्टि की गई है। स्कन्दगुप्त' नाटक में प्रसाद जी ने अपने युग और भविष्य की आवश्यकता के अनुरूप विश्व–मैत्री, राष्ट्र–प्रेम, साम्प्रदायिक और जातीय सद्भाव की आवश्यकता जैसे महत्वपूर्ण उद्देश्यों को व्यक्त किया है। रंगमंच की दृष्टि से कुछ व्यावहारिक सीमाओं के बावजूद आधुनिक हिन्दी रंगमंच में कुछ कल्पनाशील और प्रयोगशील रंगकर्मियों ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक के मूल पाठ में आवश्यक संधोधन करते हुए इसे सफलतापूर्वक मंच पर प्रदर्शित किया है।

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

(क)	1.	ग,	2.	ग,	3.	क
(ख)	1.	ब. व. कारंत,	2.	व्यक्ति–वैचित्र्य,	3.	रण–क्षेत्र
(ग)	1.	पाँच, तैंतीस,	2.	स्कन्दगुप्त,	3.	पर्णदत्त,
	4.	पंचम, पंचम,	5.	देश की दुर्दशा निहारोगे,		
	6.	विमाता,	7.	1928 ई.,	8.	प्रपंचबुद्धि,
	9.	रामा,	10.	कुम्भा।		

(घ) 1. उत्तर के लिए देखिए 7.7।

2. उत्तर के लिए देखिए 7.8।

3. उत्तर के लिए देखिए 7.3.1।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8: भीष्म साहनी एवं उनके नाट्य साहित्य का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 भीष्म साहनी का जीवन परिचय, रचनाएँ और गतिविधियाँ

8.3 भीष्म साहनी के नाटक

8.4 आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य और भीष्म साहनी के नाटक

8.5 भीष्म साहनी के नाटकों का वैशिष्ट्य

8.6 सारांश

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.8 उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

- भीष्म साहनी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो सकेंगे;
- भीष्म साहनी के नाटकों की कथावस्तु को जान सकेंगे;
- आधुनिक हिंदी नाट्य –लेखन की परम्परा में भीष्म साहनी का स्थान निर्धारित कर सकेंगे; और
- भीष्म साहनी के नाटकों का वैशिष्ट्य निरूपित कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

भीष्म साहनी आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के प्रमुख स्तम्भों में से एक हैं। इन्हें हिंदी साहित्य में प्रेमचंद की परम्परा का लेखक माना जाता है क्योंकि ये अपने लेखनी में सदैव मानवीय मूल्यों के हिमायती रहे। साहित्य के प्रति अपने समर्पण , अथक परिश्रम और सतत साहित्य साधना के द्वारा भीष्म साहनी ने हिन्दी साहित्य जगत में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। भीष्म साहनी ने उपन्यास, कहानी, नाटक , निबन्ध और आत्मकथा आदि गद्य विधाओं में सृजन कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इनकी लेखनी में मानवीय संवेदना के साथ–साथ सामाजिक सरोकार, जीवन मूल्य, यथार्थवादी दृष्टिकोण हमेशा दिखाई पड़ता है। इनका रचनात्मक संसार जीवन के विस्तृत उतार–चढ़ाव और मोड़ों के बावजूद संवेदना के स्तर पर अविचलित रहा है। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न भीष्म साहनी ने अपने नाटकों के माध्यम से समकालीन हिन्दी नाटककारों में एक विशिष्ट स्थान बनाया है। भीष्म साहनी के सभी नाटक युगीन समस्याओं तथा जनसामान्य की पीड़ा और व्यथा का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली रूप में करते हैं। इनके नाटकों की विषयवस्तु लगभग इतिहास, पुराण, मिथक, लोक–कथा और किंवदंतियों पर आधारित हैं। उन्होंने नाटकों के माध्यम से आज के युग की किसी न किसी मानवीय स्थिति का संवेदनात्मक रूप में उद्घाटन किया है।

8.2 भीष्म साहनी का जीवन परिचय, रचनाएँ और गतिविधियाँ

भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त 1915 को रावलपिण्डी (पाकिस्तान) में हुआ था। सन् 1947 में देश विभाजन के पश्चात ये कुछ समय तक बम्बई में रहे। इसके बाद अम्बाला और अमृतसर में अध्यापक रहने के बाद दिल्ली आ गए और वहीं स्थायी रूप से रहे। इनके पिता हरवंशलाल साहनी आर्य समाजी थे, व्यापारी होने के बावजूद वे अध्येता और समाजोन्मुख थे, पुरुषार्थ में आशा रखते थे। भीष्म साहनी की माँ लक्ष्मीदेवी धर्मपरायण, सेवाभावी, प्रेम व त्याग की प्रतिमूर्ति थीं। वह आर्य समाज से प्रभावित उदार विचारों वाली महिला थीं। भीष्म साहनी के बड़े भाई बलराज साहनी, हिंदी फिल्मों के जाने माने अभिनेता थे। इन्हीं पारिवारी संस्कारों का प्रभाव था कि आगे चलकर भीष्म साहनी समाजोन्मुख हुए। 1937 में उन्होंने गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर से अंग्रेज़ी साहित्य में एम. ए. किया तथा सन 1958 में पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। पंजाबी मातृ भाषा के अतिरिक्त उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी, रूसी और उर्दू भाषाओं की जानकारी थी। साहित्यिक परिवेश तो उन्हें बचपन से ही मिला था। इनके पिता फ़ारसी के सूफी कवि शेख सादी के प्रेमी और कबीर के भक्त थे। भीष्म साहनी को बचपन से ही अपने पिता से शेरो शायरी और नज़्में सुनने का अवसर मिलता रहता था। माँ और दादी से कहानियाँ, गीत और भजन सुनते रहते थे। इस तरह बचपन से ही इनकी साहित्यिक अभिरुचियों को विकसित होने का अवसर मिला और लेखन कार्य में प्रवृत्त हो गए। साहित्यिक जगत में प्रेमचंद की मानवीय सद्भावनाओं ने इन्हें काफी प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त सुदर्शन, जैनेन्द्र, अज्ञेय और यशपाल से भी वे प्रभावित व प्रेरित हुए।

भीष्म साहनी की रचनाएँ– उनके रचना संसार को आप निम्नलिखित वर्गों में रखकर समझ सकते हैं–

उपन्यास– 1. झरोखे 2. कड़ियाँ 3. तमस 4. बसन्ती 5. मय्यादास की माड़ी 6. कुन्तो 7. नीलू नीलिमा नीलोफर

कहानी संग्रह– 1. भाग्य रेखा 2. पहला पाठ 3. भटकती राख 4. पटरियाँ 5. वाङ.चू 6. शोभायात्रा 7. निशाचर 8. पाली 9. डायन

नाटक– 1. हानूश 2. कबिरा खड़ा बजार में 3. माधवी 4. मुआवज़े 5. रंग दे बसन्ती चोला 6. आलमगीर

जीवनी– बलराज माय ब्रदर

निबन्ध– अपनी बात

आत्मकथा– आज के अतीत

बाल साहित्य– 1. गुलेल का खेल 2. वापसी

सम्पादन– 1. 'साहित्यकार' पत्रिका 2. 'नई कहानियाँ' पत्रिका 3. मेरे साक्षात्कार 4. आधुनिक हिन्दी उपन्यास

इसके अतिरिक्त उन्होंने ढेर सारा अनुवाद कार्य भी किया है जिसमें लगभग दो दर्जन रूसी पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद तथा हिन्दी व पंजाबी की कई कहानियों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रमुख हैं।

हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें अनेक पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया। इन्हें 1975 में 'तमस' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1980 में एफ्रो एशियन राइटर्स एसोसिएशन का 'लोटस अवार्ड', 1983 में सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड तथा 1998 में भारत सरकार के पद्मभूषण अलंकरण से अलंकृत किया गया।

भीष्म साहनी के बारे में यह बताना जरूरी है कि आपने साहित्य लेखन की शुरूआत स्वतंत्रता प्राप्ति के दौर से की और नाट्य लेखन की शुरूआत आठवें दशक से।

गतिविधियाँ– नाटक और रंगमंच के प्रति लगाव और आकर्षण उनमें बचपन से ही था, जो विभिन्न परिस्थितियों एवं रूपों में आजीवन बना रहा। अपने बड़े भाई बलराज साहनी के साथ बालपन में ही अभिनय करने का उल्लेख उन्होंने अपनी आत्मकथा में किया है। चौथी कक्षा में स्कूली नाटक 'श्रवण कुमार' में नायक की भूमिका निभाकर अभिनय की शुरूआत भी कर दी थी। लाहौर में एम.ए. करते हुए अपने कॉलेज के नाट्य दल के सक्रिय सदस्य के रूप में इन्होंने दो नाटकों में बूढ़ी स्त्रियों के किरदार को भी सफलतापूर्वक निभाया था। बंगाल अकाल के दिनों में रावलपिंडी में हुए 'इप्टा' (इंडियन पीपुल थिएटर एसोसिएशन) के नाट्य प्रदर्शन से वे इतने प्रभावित हुए कि जिंदगी भर किसी न किसी रूप में 'इप्टा' से जुड़े रहे। भारत विभाजन से पूर्व भीष्म साहनी अपने भाई बलराज साहनी से मिलने बम्बई गए तो उन्होंने अहमद अब्बास के बलराज साहनी द्वारा निर्देशित 'इप्टा' के नाटक 'जुबैदा' में न केवल एक छोटी सी भूमिका निभाई बल्कि रावलपिंडी लौटकर उन्होंने यह नाटक भी प्रस्तुत किया। दिल्ली में रहते हुए भीष्म साहनी 'सहमत' और जन नाट्य मंच के नुक्कड़ नाटकों के साथ सक्रिय रूप से जुड़े रहे और कुछ वर्षों तक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के वाइस चेयरमैन के रूप में उसकी रंग गतिविधियों में अर्थपूर्ण रचनात्मक भूमिका का निर्वाह भी करते रहे। 1976 से 1986 तक भीष्म साहनी राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव रहे । साथ ही दिल्ली की नाट्य मंडली 'प्रयोग' के अध्यक्ष रहे जहाँ से उनके नाटक 'हानूश', 'कबिरा खड़ा बजार में' और 'माधवी' नाटकों के अनेक बार मंचन हुए। इन सबके अलावा भीष्म साहनी ने कई फिल्मों और धारावाहिकों में अभिनय भी किया। उन्होंने 'गुंजन', 'मोहन जोशी हाजिर हो' और 'गाँधी' जैसी प्रसिद्ध फिल्मों में चर्चित भूमिका निभाई और 'तमस' धारावाहिक में सरदार हरनाम सिंह का सफल चरित्र अभिनीत किया। भीष्म साहनी एक सक्रिय रचनाकार थे। उन्होंने लेखक संगठनों से लेकर रंगमंच और कुछ धारावाहिकों में यादगार भूमिका निभाई। 1970 के आसपास वे अफ्रो–एशियाई लेखक संघ के क्रियाकलापों में भी हिस्सा लेने लगे। इस सिलसिले में उन्होंने कई देशों की यात्राएं भी कीं और नए–नए अनुभव अर्जित किए।

भीष्म साहनी ने तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों की विसंगतियों को समझा और अपने लेखन के माध्यम से उस यथार्थ को पाठकों के समक्ष उपस्थित करने में सफल हुए। भीष्म साहनी का दृष्टिकोण हमेशा सकारात्मक रहा। उनके साहित्य में निम्न वर्ग की समस्याएं, जाति–संघर्ष व मानवतावादी दृष्टिकोण के अंतर्गत पात्रों का संघर्षमय चित्रण है। जहाँ उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक व आर्थिक बुराइयों का सर्वत्र विरोध किया हैं वहीं उन्होंने सामाजिक, नैतिक व मानवीय मूल्यों को स्थापित करने का भी प्रयास किया है। उनके चिंतन का धरातल ही है–जनहित। इन्हीं विचारों के कारण कबीर के व्यक्तित्व ने उन्हें प्रभावित किया। अपने युग की धर्मांधता, बाह्याचार, तानाशाही और मिथ्या अवधारणाओं के विरुद्ध निर्भीक,दृढ़ और बेपरवाह रहने वाले कबीर ने उनके हृदय पर गहरी छाप छोड़ी और उन्होंने कबीर के जीवन को आधार बनाकर 'कबिरा खड़ा बज़ार में' नाटक की सर्जना की। सामाजिक गतिविधियों को देखकर कथा–साहित्य से नाट्य साहित्य की ओर मुड़े और हानूश, कबीर, माधवी जैसे पात्रों को चुना जो अपने समय समाज से संघर्ष रत हैं।

8.3 भीष्म साहनी के नाटक

भीष्मसाहनी ने आठवें दशक से नाटकों का लेखन शुरू किया और एक के बाद एक छः नाटकों का सृजन किया–'हानूश', 'कबिरा खड़ा बजार में', 'माधवी', 'मुआवजे', 'आलमगीर' और 'रंग दे बसंती चोला'। इन्हें निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है–

1. लोक कथा पर आधारित–'हानूश'
2. पौराणिक कथा पर आधारित–**माधवी**
3. इतिहास पर आधारित–**कबिरा खड़ा बजार में**, **आलमगीर** और **रंग दे बसंती चोला**
4. समसामयिक परिवेश पर व्यंग्य आधारित– **मुआवज़े**

रचनाक्रम के अनुसार इनके नाटकों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है–

हानूश

'हानूश' भीष्म साहनी का पहला नाटक है, जो 1977 ईस्वी में प्रकाशित हुआ था। नाटककार ने इस तीन अंक के नाटक में एक कलाकार की सृजनेच्छा और संकल्प को, उसकी विवशताओं को तथा उसकी संकटापन्न स्थिति को पूरी तरह पहचाना है। 1960 ईस्वी के आसपास भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा के साथ चेकेस्लोवाकिया की राजधानी प्राग घूमने गए थे। प्राग शहर में घूमते– घूमते संयोगवश उन्होंने वहाँ की एक ऐतिहासिक मीनारी घड़ी से जुड़ी एक कथा सुनी, जिसका सार इतना है कि बारह साल तक घड़ी बनाने की कोशिश करने वाले हानूश को जब सफलता मिली , तो हानूश को तत्कालीन बादशाह द्वारा अजीब तरीके से पुरस्कृत किया गया। बादशाह ने हानूश की आँखें निकलवा लीं। शायद इसलिए कि हानूश दोबारा इस तरह की घड़ी न बना सके। बादशाह द्वारा कलाकार को अजीब तरह से सम्मानित किए जाने की बात भीष्म साहनी जी को विचलित कर गई जो एक नाटक के रूप में अभिव्यक्त हुई। इस छोटी सी दंत कथा को आधार बनाकर उन्होंने एक रंगमंचीय क्षमता वाला सफल नाटक लिखा। जिसमें नाटककार ने मध्ययुग का एक भरा पूरा परिवेश गढ़ा, काल्पनिक घटना विन्यास द्वारा कथावस्तु का निर्माण किया । पुरानी दंत कथा पर आधारित होते हुए भी नाटककार ने उसमें इतने प्राण भर दिए कि नाटक दर्शकों के सामने सजीव हो उठता है। इसकी कहानी भारतीय परिवेश की न होते हुए भी यहाँ के जन–मानस को अपनी सी लगती है। छोटे से गरीब मजदूर को सत्ता के द्वारा उत्पीड़ित किए जाने की यह मार्मिक कथा है। हानूश का चरित्र इस नाटक की सबसे बड़ी उपलब्धि है जिसमें एक साथ संघर्ष और पराजय, सुख और दुख, निराशा और क्षोभ के दर्शन होते हैं। साथ ही एक कलाकार की कल्पनाशीलता व सृजनशीलता के बीच आशा–निराशा के भाव दिखाई देते हैं।

यह 15वीं शताब्दी के एक ऐसे ताला बनाने वाले मजदूर की कथा है जो विषम परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए अपनी जवानी के सत्रह साल चेकेस्लोवाकिया की मीनारी घड़ी बनाने में खपा देता है। अंततः जब कलाकार अपने सृजन में सफल हुआ और घड़ी प्राग नगरपालिका की मीनार पर लगाई गई तो बादशाह ने प्रसन्न होकर एक ओर देश का गौरव बढ़ाने वाले उस गरीब कलाकार को पुरस्कृत और सम्मानित किया तो दूसरी ओर उसकी दोनों आँखें निकाल लेने का हुक्म भी दे दिया जिससे वह दूसरी घड़ी न बना सके। कारण यह है कि हानूश ने यदि दूसरी घड़ी बनाई तो पहली घड़ी का महत्व कम हो जाएगा, जो नगर के चौराहे पर लगी है। चेक इतिहास की यह छोटी सी घटना इस नाटक की आधार कथा है।

'हानूश' एक संघर्षशील कलाकार की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है। यह नाटक न तो ऐतिहासिक नाटक है और न ही इसका उद्देश्य घड़ी के आविष्कार की कहानी कहना है। इस ऐतिहासिक संदर्भ के माध्यम से एक कलाकार के संघर्ष को दिखाते हुए भीष्म साहनी ने इस सत्य का प्रतिपादन किया है कि विघ्नों और आपदाओं की उपस्थिति, आर्थिक कठिनाइयाँ, धर्म और सत्ता के हस्तक्षेपों के बावजूद कलाकार को जिस तरह हानूश अपने लक्ष्य के प्रति अडिग रहा और सफलता प्राप्त की उसी तरह अड़चनों के

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

बावजूद भी कलाकार को अपने रचनाकर्म में लगे रहना चाहिए। इस नाटक में एक रचनाकार की दुर्दमनीय सृजनेच्छा, उसकी विवशता, निरीहता और उसकी संकटापन्न अवस्था को नाटककार ने पूरी तरह पहचाना है। मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में साहित्यकार के अंतर्द्वंद्व को उठाया गया था लेकिन उसकी सृजनेच्छा की आंतरिक आकुलता और पीड़ा को इतनी सघनता तथा तीव्रता से चित्रित नहीं किया था। 'हानूश' में लेखक की सम्पूर्ण चेतना इसी द्वंद्व और पीड़ा पर केंद्रित है। नाटक में कूटनीति , क्रूरता, स्वार्थपरता आदि के प्रसंग होने के बावजूद भी इसे हिंदी में लिखे गए कई अन्य नाटकों की तरह व्यंग्य प्रधान राजनैतिक नाटक नहीं कहा जा सकता। बल्कि इस नाटक का मूल स्वर है–सामान्य मनुष्य और उसकी कलात्मक संवेदनशीलता, सृजन की छटपटाहट, कलाकार का पारिवारिक तनाव, आर्थिक संकट, घरेलू वातावरण आदि। हानूश के जीवन के सत्रह वर्षों के इतिहास में संघर्ष के अनेक स्तर हैं– पहला स्तर घर है– घर का तनावपूर्ण माहौल, दूसरा स्तर है– दंड और पुरस्कार की एक साथ घोषणा, संघर्ष का तीसरा स्तर तब आता है जब हानूश को अपने प्रतिशोध से जूझना पड़ता है क्योंकि घड़ी को उसे दुरुस्त करना है। जब घड़ी दुरुस्त करने के लिए हानूश को ले जाया जाता है तब वह अकेले में मौका पाकर उसे तोड़ना चाहता है, परंतु जैसे ही वह उसको हाथ लगाता है, उसकी नीयत बदल जाती है। हानूश की अंतरात्मा उसको घड़ी तोड़ने नहीं देती और वह उसे दुरुस्त कर देता है। इस तरह पूरा नाटक एक तनावपूर्ण स्थिति से आरंभ होता है और अंत तक तनाव बना रहता है।

कबिरा खड़ा बाज़ार में

'कबिरा खड़ा बाज़ार में' भीष्म साहनी का दूसरा नाटक है, जो सन् 1981 ई. में प्रकाशित हुआ था। तीन अंकों में विभक्त इस नाटक में भीष्म साहनी ने प्रमुख पात्रों के माध्यम से मध्ययुगीन परिवेश में प्रत्येक स्तर पर संघर्ष कर रहे कबीर को उनके पारिवारिक और सामाजिक संदर्भों के साथ प्रस्तुत किया गया हैं। कथावस्तु कबीर का सारा जीवन है, जिसमें कबीर का शरारती बचपन, मस्तमौलापन, किसी पर भी बिना डरे कविता करना, निर्भीक वृत्ति आदि सभी बातों को एक–एक प्रसंग के द्वारा व्यक्त किया गया है। ऐतिहासिकता का आभास देकर इस नाटक में आधुनिक युग बोध को उद्घाटित किया गया है। भीष्म साहनी ने इस नाटक में एक ओर मध्ययुगी महात्मा कबीर के निडर, सत्यवादी और अन्याय के विरुद्ध सदा एक संघर्ष करने वाले व्यक्तित्व का चित्रण किया है, तो दूसरी ओर समाज में साम्प्रदायिक तत्व, बाह्य आडम्बर, परम्पराओं का अंधा अनुकरण करने वाले समाज पर भी गहरा आघात किया है। नाटक के केंद्र में है– कबीर। अतः सभी दृश्य योजना कबीर से ही सम्बन्धित हैं, चाहे रूढ़ि विरोध हो या सत्संग या शास्त्रार्थ, कोतवाल का दरबार हो या सिकन्दर का काशी पड़ाव–प्रत्येक दृश्य कबीर के व्यक्तित्व को उजागर करने वाले हैं। केवल पहले अंक का पाँचवाँ दृश्य, जिसमें बशीरा अपने पूर्वजों का इतिहास बताते हुए मुहम्मद बिन तुगलक और तैमूर लंग के जमाने में पहुँच जाता है तथा दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में लोई के विवाह–पूर्व प्रणय प्रसंग का विस्तार– नाटक के केंद्रीय प्रवाह को खण्डित करने वाला है। इसके अतिरिक्त घटना क्रम में कोई घुमाव और पेचीदगी नहीं है।

रंगमंच की दृष्टि से यह नाटक कमजोर है। क्योंकि नाटक की गति शिथिल है, गति कम है, चरित्रों का विकास संवाद के द्वारा ही अधिक है, घटनाओं द्वारा कम। अतः अभिनय के लिए गुंजाइश कम है। दृश्य विभाजन और दृश्य विधान की दृष्टि से यह नाटक रंगमंच के अनुकूल है। रंग संकेत भी नाटककार ने पर्याप्त दिए हैं। नाटक में पात्रों की संख्या भी कम है। इस नाटक का मूल नाम 'कबीरदास' था जिसमें कबीर के दस पद खड़ी बोली में थे। अप्रैल 1981 में जब एम. के. रैना ने इस नाटक को 'त्रिवेणी' मुक्ताकाशी मंच पर मंचित किया तब इसका नाम रखा– 'कबिरा खड़ा बजार में'। नाटक में पदों की संख्या को उन्होंने बढ़ाकर सत्रह कर दिया और पदों को लोक संगीत की धुनों में ढाला दिया।

माधवी

'माधवी' भीष्म साहनी का तीसरा नाटक है, जो 1984 ई. में प्रकाशित हुआ था। नाटक की कथावस्तु तीन अंकों में विभक्त है जिसमें कल्पना का आधार लेकर पौराणिक कथा की नयी व्याख्या प्रस्तुत की गई है और मूल कथा में नवीनता लाई गई है। माधवी से पूर्व 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक को भीष्म साहनी मध्यकालीन परिवेश पर लिख चुके थे। 'माधवी' नाटक में कल्पना का आधार लेकर पौराणिक कथा की नई व्याख्या की गई है। एक रेल सफर के दौरान त्रिलोचन शास्त्री से जब उन्होंने माधवी की कहानी सुनी तो उन्हें इसमें नाटकीय तत्व नजर आए और उन्होंने माधवी को केन्द्र में रखकर पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री के शोषण व उपेक्षा को उजागर करने के निमित्त से 'माधवी' नाट्यकृति की रचना की। इस नाटक में कल्पना का आधार लेकर पौराणिक कथा की नई व्यवस्था प्रस्तुत की गई है और मूल कथा में भी नवीनता का समावेश किया गया है।

'माधवी' नाटक में आधुनिक काल में होने वाले नारी शोषण को माधवी के माध्यम से प्रकट करने का सफल प्रयास साहनी जी ने किया है। इसमें उन्होंने पौराणिक कथा चुनी है, महाभारत की कथा, जिसका संबंध ययाति से है। लेकिन इसके प्रस्तुतीकरण का मुख्य उद्देश्य आधुनिक नारी की समस्याओं को प्रस्तुत करना है। चाहे कितनी भी शक्तिशाली गुणवती कन्या क्यों न हो , माता–पिता विवश होकर अपनी बेटी को किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ में सौंप देते हैं जहाँ उसका व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। जैसा कि नाटक में ययाति ने किया। केवल अपने आप को संसार का सबसे बड़ा दानी सिद्ध करने के लिए गालव जैसे स्वार्थी व्यक्ति के हाथ माधवी को दान कर देते हैं। गालव भी माधवी का उपयोग करता है। अपने आपको सबसे बड़ा दानी सिद्ध करने के लिए माधवी को विभिन्न राजाओं को भेंट करता रहता है। वह माधवी को न घर का छोड़ता है न घाट का। किसी दूसरे के साथ माधवी का रहना उसे पसंद भी नहीं है लेकिन स्वार्थ की पूर्ति हेतु भेजता भी रहता है। फिर अनुष्ठान करके उसे स्वीकार करता है। बार–बार इस प्रक्रिया द्वारा वह माधवी को अपमानित करता रहता है। भीष्म साहनी इसके माध्यम से दिखाना चाहते हैं कि पुरुष के लिए स्त्री मात्र देह ही है, जिसे वह अपनी इच्छा से ग्रहण करता है और अपनी इच्छा से त्याग देता है। एक पुत्री, एक प्रेमिका, एक पत्नी के रूप में सभी दायित्वों का बोझ सहज रूप से निभाती माधवी अंत में अनुष्ठान पूर्वक स्वयं को युवती बनाना नहीं चाहती। अपने निजी अस्तित्व को वह ढूँढ़ ही लेती है। अपना भविष्य अपने आप चुनती है–स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में। इस बार न तो वह पुत्री है, जिसने पिता को दानवीर की उपाधि दिलाई, न प्रेमिका –जिसने गालव की उद्देश्य पूर्ति हेतु अपने जीवन को कुर्बान कर दिया, न केवल पत्नी– जो केवल वंश वृद्धि का मशीन है; इस बार वह केवल एक जागी हुई स्त्री है, एक मुक्त स्त्री है पूर्ण मनुष्य है। धारा के विपरीत तैरती आई माधवी पूरे पितृसत्तात्मक समाज को ठेंगा दिखाते हुए कहती है– संसार बड़ा विशाल है गालव! उसमें निश्चय ही मेरे लिए स्थान होगा।' इस तरह निष्ठा, प्रेम, कर्तव्य और कामना के विभिन्न कोणों से उलझे हुए मानवीय मन की द्वंद्वात्मक स्थिति एवं संघर्ष का उद्घाटन करने में यहाँ भीष्म साहनी काफी सफल दिखाई देते हैं।

मुआवज़े

'मुआवज़े' भीष्म साहनी का चौथा नाटक है, जो सन् 1993 ई. में प्रकाशित हुआ था। इनके प्रारम्भिक तीनों नाटकों की विषय वस्तु अतीत से ली गई है । इस नाटक में भीष्म साहनी ने पहली बार ज्वलन्त वर्तमान में प्रवेश किया है। यह नाटक भिन्न कथ्य और भिन्न शैली में साम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखा गया है और दंगों के पीछे के सच को लेखक ने उजागर लेखक ने किया है। भीष्म साहनी स्वयं अपने जीवन में जिन स्थितियों से गुजरे थे, सम्भवतः उन्हीं स्थितियों का साक्षात्कार वे

इस नाटक के माध्यम से कराना चाहते थे। बारह दृश्यों के माध्यम से यह नाटक नगर में सांप्रदायिक दंगे उठने की आशंका से ग्रस्त समाज और सरकार के विविध वर्गों की तैयारी, मानसिकता और मंसूबों का दिलचस्प दृश्य प्रस्तुत करता है। पूरे नाटक में परिवेश और घटनाएँ इतनी महत्वपूर्ण हैं कि चरित्र की आवश्यकता ही नहीं रहती। यहाँ प्रधान चरित्र के रूप में भाव ही हैं। 'मुआवज़े' में समाज के एक–एक व्यक्ति का चेहरा सामने लाकर रखने का सफल प्रयास है। नेता, मंत्री, अफसर से लेकर झुग्गी का गरीब व्यक्ति– सभी भ्रष्ट हैं; सभी मुआवज़ाख़ोर हैं। नाटक का केंद्रीय विषय है–मुआवज़ा। मुआवज़ा का अर्थ है–हर्जाना। जैसा कि नाटक के शीर्षक से ध्वनित है, यह नाटक साम्प्रदायिक दंगों से अधिक उसकी विडम्बना का मखौल उड़ाने वाला है। किसके लिए हर्जाना – उन जिंदगियों के लिए जो खत्म हो गईं हैं, उन मूल्यों के लिए नहीं, जो हमेशा के लिए खत्म हो गए हैं। दंगे आपदा नहीं अवसर है– आर्थिक लाभ का। 'मुआवजे' में यथार्थ का जलजला ऐसा है कि दंगे के दौरान स्वयं मरकर परिवार को मुआवज़ा दिलाने के लिए लोग तत्पर हैं। दंगा भी प्रयोजित है, मुआवज़ा भी नियोजित है। मृत्यु भुनाई जा रही है। यही है आज की तस्वीर! इक्कीसवीं सदी में हम किन मूल्यों और आदर्शों के साथ जी रहे हैं–इसी विषय को लेकर पूरे नाटक का ताना बाना बुना गया है। बारह दृश्यों वाले इस नाटक में साम्प्रदायिक दंगा उठने की आशंका से ग्रस्त समाज और सरकार के विविध वर्गों की तैयारी , मानसिकता और मंसूबों का चित्रण किया गया है।

दंगा हुआ नहीं है पर होने की पूरी संभावना है। नाटक के पहले दृश्य में मंत्री व कमिश्नर यानी शासन और प्रशासन–इंतज़ार कर रहे हैं दंगों का और उस दौरान अपनी–अपनी छवि बनाने की तैयारियाँ भी कर रहे हैं, एडवांस में। दंगा न हो गोया 1857 का स्वाधीनता संग्राम हो। सभी अपने–अपने फिराक में हैं कि किसको क्या हासिल होगा। कहीं वह कुछ हासिल करने से वंचित न रह जाए, इसलिए तैयार और सजग हो रहे हैं। सबकी प्राप्ति और प्रगति का सुअवसर बनकर आ रहा है–दंगा। दंगे के दौरान घायलों और मृतकों को मुआवज़ा जो देना है। दूसरे दृश्य में भीष्म साहनी राजनेताओं के चरित्र को उजागर करते हैं, जो वोट के लिए तो घर–घर दौड़ लगाते हैं, तरह –तरह के वादे करते हैं पर चुनाव जीतने के बाद उनका पता नहीं चलता। नेता भी दंगा होने पर अपनी वाह–वाही लूटने के लिए योजना बद्ध तरीके से लोक लुभावन भाषण तैयार कराता है। मिनिस्टर का सेक्रेटरी मिनिस्टर से भी दो कदम आगे है। पिछले मंत्री के दंगे भड़काने की घटना के दौरान लिखे भाषण को पेश करके कहता है– 'आलरेडी मेड'। इस नाटक के माध्यम से भीष्म साहनी ने आधुनिक रिश्तों पर भी प्रकाश डाला है। अपने नाटक के पात्र नरगिस दास के माध्यम से नए जमाने के माँ–बेटे के रिश्ते को दिखाते हैं। नरगिस जो नए जमाने का पुरुष है– अपनी माँ को बहाने से अपने छोटे भाई के घर छोड़ देता है। कुछ हद तक इस नाटक को महानगरीय भागदौड़ या आपा–धापी का एक कोलाज भी कहा जा सकता है। आदमी के बदलते मुखौटों में उसके असली चेहरे को ढूँढ़ने की कोशिश के रूप में भी इस नाटक को देखा जा सकता है। आज के जटिल समय में 'मुआवज़े' नाटक समाज की परतों को स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करने में सक्षम कृति है। **प्रहसन** जीवन में व्याप्त अटपटेपन और बेहूदेपन को एक हँसोड़ अंदाज में, वस्तुस्थिति को एक व्यंग्यपरक ढंग से प्रस्तुत करने की एक नाट्य शैली है। 'मुआवज़े' प्रहसन का ही आधुनिक संस्करण है। बारह दृश्यों में संयोजित इस नाटक में अंक नहीं हैं।

रंग दे बसन्ती चोला

भीष्म साहनी की पाँचवीं नाट्य कृति – 'रंग दे बसंती चोला' साम्राज्यवादी सत्ता और मानवता की करुण दास्तान के रूप में आता है। कुल तीन अंकों में यह नाटक बँटा हुआ है। तीन अंकों में कुल दस दृश्य हैं। इस नाटक में कोई कथा नहीं, घटनाएँ हैं।

यह नाटक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक ऐसी घटना से जुड़ा है, जिसने देश के निवासियों के ही नहीं अपितु अनेक विदेशियों के मन में भी भयंकर उथल–पुथल मचा दी थी। यह घटना थी–जलियाँवाला बाग गोलीकाण्ड। इसी घटना को आधार बनाकर यह नाटक लिखा गया है। इस नाटक में लेखक ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के उन पन्नों को खोला है, जो इस देश के संघर्ष , बलिदान और त्याग की बेमिसाल कहानी प्रस्तुत करते हैं। नाटक में पंजाब की तत्कालीन स्थिति, जलसों पर पाबन्दी, बैसाखी पर्व आदि का वर्णन मिलता है। प्रतीक रूप में अंत में जनरल डायर की आत्मा का स्वयं को कोसना मानो हरेक भारतीय इंसान का उसे कोसना प्रतीत होता है।

आलमगीर

'आलमगीर' भीष्म साहनी कृत छठवीं नाट्य कृति है, जो 1999 में प्रकाशित हुई थी। इस नाटक में बादशाह औरंगजेब के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का उद्घाटन किया गया है अतः पूरा कथानक उत्तर मुगल काल के इतिहास से जुड़ा हुआ है। इस नाटक में लेखक ने भिन्न–भिन्न मानसिक स्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए चित्रित करने का प्रयास किया हैं। नाटक के केंद्र में अत्यंत क्रूर मुगल सम्राट आलमगीर अर्थात औरंगज़ेब है, जो नाटक के आरम्भ से अंत तक शक के घेरे में फँसा हुआ अपने द्वारा बुने गए जाल के कारण अपने सारे रिश्ते नातेदारों को खोकर अकेला पड़ जाता है, लेकिन अपना जिद्दी स्वभाव अंत तक नहीं छोड़ता। उसकी यही विवशता इस नाटक में अंकित की गई है। इस नाटक में भी अंक नहीं है। पूरा नाटक दस दृश्यों में प्रस्तुत है। यह पूरा नाटक राजदरबार के वातावरण में लिखा गया है जिसमें व्यक्ति और सत्ता के आंतरिक चरित्रों का संघर्ष तथा राजनीति का घिनौनापन की अभिव्यक्ति है।

बोध प्रश्न–1

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. भीष्म साहनी ने उपन्यास, कहानी, नाटक , निबन्ध और आत्मकथा आदि.... .... में सृजन कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान किया है।
2. भीष्म साहनी के बड़े भाई................ हिंदी फिल्मों के जाने माने अभिनेता थे।
3. उनके नाटक 'हानूश', 'कबिरा खड़ा बजार में' और 'माधवी' नाटकों के अनेक बार............ हुए।
4. भीष्म साहनी ने 'गुंजन','मोहन जोशी हाजिर हो' और 'गाँधी' जैसी प्रसिद्ध. .... में चर्चित भूमिका निभाई ।
5. भीष्म साहनी ने कबीर के जीवन को आधार बनाकर .... नाटक की सर्जना की।

(ख) सही / गलत बताइए

1. भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त 1915 को रावलपिण्डी (पाकिस्तान) में हुआ था।
2. 'तमस' भीष्म साहनी की प्रमुख नाट्य कृति है।
3. भीष्मसाहनी ने छः नाटकों का सृजन किया।
4. भीष्म साहनी दिल्ली की नाट्य मंडली 'प्रयोग' के अध्यक्ष रहे।
5. 'माधवी' लोक कथा पर आधारित नाटक है।
6. 'नीलू नीलिमा नीलोफर' भीष्म साहनी का प्रमुख कहानी संग्रह है।

(ग) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 5–8 पंक्तियों में दीजिए–

1. भीष्म साहनी का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....

2. भीष्म साहनी की प्रमुख कहानी संग्रहों के नाम बताइए।

....
....
....
....
....
....
....
....

4. भीष्म साहनी को किन किन पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है?

....
....
....
....
....

8.4 आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य और भीष्म साहनी के नाटक

यद्यपि हिन्दी नाटकों से हम इकाई 1 में आपको परिचित करा चुके हैं परन्तु भीष्म साहनी के नाटकों का मूल्यांकन करने से पहले संक्षेप में हिंदी नाट्य परम्परा को भी समझना जरूरी है। आधुनिक युग में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने नाटकों को युगीन समस्याओं, राजनैतिक स्थितियों, राष्ट्रीय चेतना और मनुष्य की संवेदना से जोड़ा तथा नाटक और रंगमंच की परस्पर सम्बद्धता को महसूस करते हुए नाटकों का मंचन भी किया। इसी परम्परा को फिर जयशंकर प्रसाद ने आगे बढ़ाया। जिन्होंने नाटक में भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं को आत्मसात करते हुए समूचे राष्ट्रीय संघर्ष और अपने समय के प्रश्नों को प्रस्तुत किया। प्रसाद युग में रोमांचकारी नाटक, पौराणिक नाटक, ऐतिहासिक नाटक आदि नाटकों के कई रूप विकसित होते हैं–जिसमें पौराणिक ऐतिहासिक कथा–प्रसंगों एवं पात्रों को समसामयिक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं की अभिव्यक्ति और व्याख्या का माध्यम बनाया गया। जयशंकर प्रसाद के नाटक 'अजात

शत्रु', स्कन्दगुप्त, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी इसी कोटि के नाटक हैं। प्रसादोत्तर युग में हिंदी नाटकों का विकास दो धाराओं में हुआ– पहली धारा के अंतर्गत राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना और दूसरी यथार्थवादी चेतना। इस काल के प्रमुख नाटककार लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गाविंद दास, हरिकृष्ण प्रेमी हैं।

कालांतर में उदय शंकर भट्ट के नाटक 'अम्बा', मत्स्यगंधा', 'विश्वामित्र', 'अश्वत्थामा', रांगेय राघव के नाटक 'स्वर्गभूमि का यात्री' और लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक 'नारद की वीणा', 'चक्रव्यूह' में पौराणिक आख्यानों की पृष्ठभूमि में आधुनिक सामाजिक समस्याओं पर नाटकों का लेखन मिलता है। ऐतिहासिकता के साथ नाटकों का लेखन करने की परंपरा में उदय शंकर भट्ट के 'विक्रमादित्य', 'सिंध पतन' ,'मुक्ति पथ'; द्वारिका प्रसाद मौर्य के 'हैदर अली'; च्रंद्रगुप्त' विद्यालंकार के 'अशोक'; गोविंद वल्लभ पंत के 'राजमुकुट'; कैलाशनाथ भटनागर के 'कुणाल'; उपेंद्रनाथ अश्क के 'जय पराजय'; हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्षा बंधन', 'शिव साधना'; लक्ष्मी नारायण मिश्र के 'गरुण ध्वज', वत्सराज', 'वितस्ता की लहरें'; वृंदावनलाल वर्मा के 'झाँसी की रानी', पूर्व की ओर'; जगदीश चंद्र माथुर के 'कोणार्क'; रामकुमार वर्मा के 'कौमुदी महोत्सव'; को गिना जा सकता है।

इन नाटककारों ने अतीत के संदर्भों को वर्तमान के प्रिरिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त किया। स्वतंत्रता पूर्व के भारतेन्दु, जयशंकर प्रसाद आदि नाटककारों ने प्राचीन कथाओं को अपने नाटकों में इस प्रकार संयोजित किया था ताकि वे स्वदेशानुराग की भावना उत्पन्न कर सकें। किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का भारत वैसा भारत नहीं था, जिसका स्वप्न देखा गया था। अफसरशाही तंत्र द्वारा गठित पूँजीवादी व्यवस्था ने भोली जनता के सपनों पर पानी फेर दिया। भ्रष्टाचार के खुले प्रदर्शन के कारण स्वातंत्र्योत्तर युग के नाटककारों ने अपने नाटकों में इस भ्रष्ट व्यवस्था का खुलासा कर प्रेक्षक को इससे परिचित कर समाज को बदलने का रास्ता अपनाया। यथार्थवादी नाटककारों ने भ्रष्टाचार, पूँजीवादी व्यवस्था के विविध रूप को अपने नाटकों का विषय बनाया, उन मानवीय संबंधों को भी अपने नाटकों में स्थान दिया, जो पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण के कारण चरमराकर बिखर गए थे या टूटने की स्थिति में थे। इसी के साथ ही नारी की दयनीय स्थिति, कलाकार के अस्तित्व से संबधित समस्याओं तथा पर्यावरण से संबंधित समस्याओं जैसे मुद्दों को भी अपने नाटकों का विषय बनाया। उपेंद्रनाथ अश्क ने 'अलग अलग रास्ते' शीर्षक नाटक में माँ बाप द्वारा थोपे गए विवाह संबंधों से स्त्री जाति पर होने वाले अत्याचार का खुलासा किया है। 'उड़ान' शीर्षक नाटक में उन्होंने ऐतिहासिक विकास क्रम में स्त्री–पुरुष –संबंधों की निर्धारक प्रतिगामी धारणाओं से ग्रस्त पुरुषों के प्रति स्त्री के विरोध को दर्ज किया है।

हिंदी नाटकों में स्वातंत्र्योत्तर युग में आधुनिक बोध का आरम्भ भुवनेश्वर प्रसाद के नाटकों से माना जाता है। 1950 के बाद हिंदी नाटकों की दृष्टि से विशिष्ट काल है जब जगदीश चंद्र माथुर के नाटक 'कोणार्क' में नए तरह का नाट्य प्रयोग दिखाई देता है। इनके नाटकों में मनुष्य के आंतरिक संघर्ष को पूरी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया गया।

'कोणार्क' में कलाकार और राजसत्ता के बीच तथा कलाकार की अपनी प्रेरणा के विभिन्न स्रोतों और स्थितियों के बीच संघर्ष का चित्रण है। इस नाटक में इतिहास सिर्फ इतना ही है कि कोणार्क का मंदिर नरसिंह देव ने निर्मित कराया था और सबकुछ नाटककार ने अपनी कल्पना से संजोया है। इसी तरह 'शारदीया' और 'पहला राजा' नाटकों में भी अंतर्द्वंद्वों का चित्रण है। 1954 में रामकुमार वर्मा का नाटक 'कौमुदी महोत्सव' प्रकाशित हुआ जिसमें इतिहास के उज्ज्वल पक्ष को सामने लाकर नई पीढ़ी को प्रेरणा प्रदान करने की कोशिश की गई। हिंदी नाट्य परम्परा में धर्मवीर भारती के 'अंधा युग',

नाटक से एक नया मोड़ आता है। महाभारत के प्रचीन कथानक पर आधारित यह एक काव्य नाटक है। महाभारत के 18वें दिन की संध्या से लेकर प्रभास तीर्थ में श्री कृष्ण की मृत्यु तक की पौराणिक कथा पर आधारित यह नाटक रंगमंच की दृष्टि से बहुत सफल रहा। इसमें लोक जीवन में विख्यात कथानक को नवीन संदर्भों से जोड़कर बड़ी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें पौराणिक काल की आस्था और आधुनिक युग की शंका के बीच सेतु बनाते हुए नाटक के पात्र अतीत, वर्तमान और भविष्य का चेहरा हमें दर्पण की तरह दिखाते हैं।

साठोत्तरी हिंदी नाटककारों में मोहन राकेश का नाम विशेष उल्लेखनीय है। रंगमंच ने भी इनके नाटकों को हाथों हाथ लिया। धर्मवीर भारती के नाटक 'अंधा युग' में विषयवस्तु की आधुनिकता , कथ्य की तीखापन अवश्य था किंतु वह एक काव्य नाटक था किंतु गद्य नाटक के क्षेत्र में मोहन राकेश का नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में नाट्य लेखन की अनेक विशेषताएँ मौजूद हैं। इस नाटक में इतिहास का सहारा लेने के बावजूद रचनाकार की आंतरिक आवश्यकता और द्वंद्व तथा स्त्री–पुरुष–संबंधों का अन्वेषण है। यहाँ से आधुनिक नाटक की शुरूआत मानी जाती है। ऐतिहासिक कथा एवं चरित्रों का आधुनिक संदर्भ में उपयोग, कथ्य एवं शिल्प का सामंजस्य, बाह्य एवं आंतरिक यथार्थ का प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण और पात्रों के अंतर्द्वंद्व को अभिव्यक्त करने में यह नाटक बेहद सफल रहा। मोहन राकेश का अगला नाटक 'लहरों के राजहंस' में आधुनिक मनुष्य के द्वंद्व और जटिलता को तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता और आधुनिकता के संदर्भों में स्त्री–पुरुष–संबंधों को व्यक्त किया गया है। इनका अगला नाटक 'आधे अधूरे' समकालीन मनुष्य के अनुभव को सामान्य बोलचाल की भाषा में अभिव्यक्त करने के कारण सर्वाधिक चर्चित रहा।

मोहन राकेश के अतिरिक्त कई अन्य नाटककार भी छठवें दशक में अपने–अपने ढंग से हिंदी नाटक और रंगमंच के विकास में अपना योगदान दे रहे थे। जिनमें लक्ष्मी नारायण लाल, सर्वेश्वर दयाल, मणि मधुकर सुरेंद्र वर्मा, रमेश बख्शी आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। साठोत्तरी नाटकों में शंकरशेष द्वारा रचित नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' में महाभारत कालीन गुरु द्रोणाचार्य के जीवन की घटनाओं के आधार पर समकालीन शिक्षा –व्यवस्था में शिक्षकों की स्थिति को उजागर किया गया है। यह नाटक मध्यवर्गीय परिवार में पत्नी की स्थिति और आज के मूल्यहीन सामाजिक वातावरण में आदमी की विवशता, दुर्बलता को सामने लाता है। आठवें–नवें दशक में नाट्य साहित्य में कथ्यगत नवीनताओं का अनेक स्तरों पर विकास हुआ। जीवन की विविधता, विषमता एवं जीवन–मूल्यों को शैली एवं शिल्प की विविधताओं में अभिव्यक्त किया जाने लगा। मानवीय संवेदनाओं को सूक्ष्मता से उभारने का प्रयास किया जाने लगा। स्त्री–पुरुष–संबंध को कथ्य बनाकर नाट्य रचनाएँ प्रस्तुत की गईं। राजनीति की दिशाहीनता, स्वार्थपरकता को नाटक के कथ्य के रूप में स्वीकारा गया। शोषण एवं भ्रष्टाचार की परतें उघाड़ी जाने लगीं। समाज का छोटा से छोटा तबका भी नाट्य रचना के केंद्र में आया। विशेषकर मध्य वर्ग की समस्याओं को नाटक में स्थान मिला। इस समय के नाटकों में मुद्राराक्षस का नाटक 'तिलचट्टा' और मृदुला गर्ग के नाटक 'एक और अजनबी' में स्त्री–पुरुष–संबंधों का रूपायन है। शंकर शेष के नाटक 'कोमल गांधार' में पौराणिक परिदृश्य में पुरुष द्वारा नारी के शोषण की सनातन परम्परा और उसके विरुद्ध एक नारी के निजी विद्रोह की त्रासदी का मार्मिक वर्णन है।

इसी परम्परा में भीष्म साहनी का नाटक 'माधवी' आता है जिसमें महाभारत की कथा के आधार पर स्त्री शोषण और पुरुषवादी मानसिकता को व्यक्त किया गया है। महाभारत के प्रचीन कथानक पर आधारित धर्मवीर भारती के काव्य–नाटक 'अंधा युग' में भी लोकजीवन में विख्यात कथानक को समकालीन समस्याओं के साथ जोड़कर बड़ी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

8.5 भीष्म साहनी के नाटकों का वैशिष्ट्य

भीष्म साहनी के नाटकों का एक संक्षिप्त परिचय आपने प्राप्त किया, जिसके आधार पर उनके नाटकों की सामान्य विशेषताओं को आप निम्नलिखित बिंदुओं में समझ सकते हैं–

1. स्वाभाविक यथार्थपूर्ण चरित्रों की जीवंत सृष्टि

चरित्र विधान भीष्म साहनी के नाटक का केंद्रीय तत्व है। इसी के माध्यम से नाटककार नाटक के अर्थ को सम्प्रेषित करता है। भीष्म साहनी के सभी नाटकों के पात्र जीवंत हैं। अनेक आर्थिक, पारिवारिक संकटों के बावजूद उसकी लगन कम नहीं होती। 'हानूश' नाटक में हानूश को जिस कलात्मक उपलब्धि के लिए सम्मान मिलना चाहिए उसके लिए उसे निरंकुश सत्ता द्वारा दण्ड मिलता है। जिसके कारण उसके भीतर असंतोष, वितृष्णा और प्रतिशोध का भाव जाग उठता है। वह घड़ी तोड़ने का इरादा करता है। लेकिन तभी उसके भीतर का कलाकार जाग उठता है और वह घड़ी तोड़ने के बजाय उसे ठीक कर देता है। सच्चा कलाकार हमेशा ध्वंस नहीं सृजन ही करेगा, भले ही सत्ता और समाज की अनुकूलता उसे न प्राप्त हो। स्वभावतः कोमल हृदय वाला हानूश जीवन के कटु सत्य को भोगने वाला रचनाशील चरित्र है। एक तरफ घड़ी बन जाने पर उसका आह्लाद और सादगी मन को छूने वाली है तो दूसरी तरफ महाराज के आदेश के बाद उसकी हताशा, कुण्ठा, अवसाद, अकेलेपन का एहसास दर्शकों और पाठकों को संवेदनशील बना देने वाले प्रसंग हैं।

इसी प्रकार जीवन्त चरित्रों को लेकर इनके दूसरे महत्वपूर्ण नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' का चरित्र कबीर आत्मसंघर्ष करते हुए सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ आवाज़ उठाता हैं। नाटक का मूल प्रतिपाद्य है– बाह्याचार, ढोंग, जात–पाँत, साम्प्रदायिक वैमनस्य के विरुद्ध संघर्ष करते हुए कबीर का व्यक्तित्व उजागर करना। नाटक के सभी तत्व उस उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हैं। पात्र योजना, दृश्य योजना, संवाद योजना, घटनाएँ, परिवेश योजना सभी कुछ नाटक के मूल उद्देश्य – कबीर के व्यक्तित्व को बनाने और विकसित करने वाली शक्तियों, परिस्थितियों और प्रेरणाओं का विश्लेषण– विवेचन करने के साथ उनके चरित्र को समग्रता में अभिव्यक्त करने में सहायक हैं। 'माधवी' नाटक में पौराणिक आधार को लेकर वर्तमान युग के नारी पात्रों की जटिलता और विसंगतियों को अत्यंत मार्मिक रूप में चित्रित किया गया है। माधवी एक ऐसी नारी के रूप में चित्रित है, जो नारी के शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाती है। कौमार्य की दहलीज पार करने के पहले ही पिता ययाति अपने को सर्वश्रेष्ठ दानी सिद्ध करने के निमित्त माधवी को गालव के हाथों सौंप देते हैं। जहाँ उसे अनेकानेक कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है फिर भी वो हार नहीं मानती। नारी की जिजीविषा को उद्घाटित करके लेखक ने मानवीयता के प्रति अपने आग्रह को व्यक्त किया है। भीष्म साहनी ने अपने नाटक में कार्य–व्यापार और यथार्थ जीवन को ध्यान में रखकर पात्रों की सृष्टि की है। उनके पात्र आज के मानव के प्रतिनिधि पात्र हैं। माधवी, ययाति, गालव आदि ऐतिहासिक पात्र हैं लेकिन नाटककार ने आज के संदर्भ में इन ऐतिहासिक पात्रों को देखा और अंकित किया है। महाभारत की मूल कथा तीन पुरुष पात्रों –ययाति, गालव और विश्वामित्र की भूमिका तक केंद्रित है। भीष्म साहनी ने कथा को तो यहाँ से लिया परंतु नाटक के केंद्र में माधवी आ गई। नाटक के रूप में यह माधवी की कथा बनकर पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की अवहेलना और शोषण की कहानी भी बन गई।

2. मानवीय संवेदना

हिंदी साहित्य में भीष्म साहनी के नाटकों का महत्व उनके अंतर्वस्तु के कारण है। अपनी अंतर्वस्तु में ये नाटक मानवीय संवेदनाओं से गहरे सरोकार रखते हैं। व्यक्ति और

समाज, व्यक्ति और सत्ता, व्यक्ति और परम्परा के अंतर्सम्बंधों, जटिलताओं, सामंजस्य और विरोध की स्थितियों के मध्य वह मानवीय अस्तित्व और अस्मिता के प्रश्नों को बड़ी सहजता के साथ उठाते हैं। इनके सभी नाटकों का मूल उद्देश्य है– सर्व मानवीय, सर्व सुखद मानवीय संवेदना से युक्त समाज–व्यवस्था। इनके नाटक यदि एक ओर समाज के आम आदमी की नियति और उनकी विवशता, यंत्रणा और संघर्षों का साक्षात्कार कराते हैं तो दूसरी ओर बहुविध शोषण, सामाजिक–राजनैतिक परिवेश की विसंगतियों, उत्पीड़न एवं आतंक की स्थिति को बेनकाब करते हैं। उनके नाटक व्यक्ति के स्वार्थ और लोलुपता, उनकी कर्त्तव्यहीनता, उत्तरदायित्वहीनता, नैतिक पतन और भ्रष्टाचार का नग्न चित्र प्रस्तुत करते हैं। 'हानूश' एक कलाकार, संघर्षशील कलाकार की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है। हानूश के जीवन में उलझाव और भटकाव दोनों एक साथ प्रस्तुत होते हैं। मीनार की घड़ी में अकेला अंधा हानूश, उसकी एक–एक हरकत, हर वाक्य, हर कोशिश उसकी सृजन की छटपटाहट का हिस्सा है।

पराश्रित स्त्री की वेदना को भीष्म साहनी भलीभाँति समझते हैं। सत्य एवं तथ्य की गहराई को समग्रता से पकड़ने में वे समर्थ हैं। माधवी नाटक में भीष्म साहनी ने विश्वामित्र के शिष्य गालव और माधवी की प्रसिद्ध पौराणिक कथा को आधुनिक संदर्भ में जोड़कर सदियों से पशुवत जीवन व्यतीत करती हुई, भारतीय नारी की पीड़ा को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। महाभारत की कथा की माधवी में प्रतिरोध का कोई स्वर नहीं था और न ही माधवी के प्रति कोई सहानुभूति का भाव था। भीष्म साहनी ने इसे बदल दिया। माधवी के भीतर प्रतिरोध पैदा किया और पाठकों व दर्शकों के मन में संवेदनशील ढंग से स्त्री की स्थिति को रखकर माधवी के प्रति सहानुभूति को जगा दिया। 'रंग दे बसंती चोला' नाटक की संवेदना साम्राज्यवादी सत्ता के यथार्थ और उसके विरुद्ध होने वाले स्वतंत्रता आंदोलनों के इर्द गिर्द घूमती है। ऐतिहासिक घटना जलियाँवाला बाग हत्या काण्ड और जनरल डायर की नृशंसता को आधार बनाकर नाटक की रचना हुई है और इन्हीं स्थितियों के बीच मानवीय संवेदना को खोजने का प्रयास किया गया है।

3. प्रतिरोध का स्वर

अपने नाटकों के माध्यम से साहनी जी शोषक, अमानवीय, रूढ़िवादी एवं साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों पर प्रहार करते हुए आम जनता को सचेत और सक्रिय होने की प्रेरणा देते हैं। इनके नाटक आम जनता को सत्ता के क्रूर, जटिल और शोषणकारी चरित्र से अवगत कराने के साथ ही इसके शिकंजे से मुक्त होने का रास्ता भी सुझाते हैं। एक ठोस समझ और विवेक के साथ वे जीवन के यथार्थ की पड़ताल करते हैं और उन शक्तियों–स्थितियों की खिलाफत करते हैं जो मनुष्यता को विद्रूप बनाती है। चाहे सत्ता द्वारा संचालित कठोर दमन–चक्र हो, भ्रष्टाचार में डूबी सत्ता–व्यवस्था का चरित्र हो या पुरुष–सत्तात्मक समाज में धर्म और संस्कृति के नाम पर शोषित होती नारी हो, वे सबकी खबर लेते हैं। माधवी, स्त्री के प्रति जड़ पूर्वाग्रहों की कलई को खोलते हुए कौमार्य के प्रति प्रचलित अवधारणा का विरोध करती है, उपभोग के रूप में स्त्री को आँके जाने का विरोध करती है।

4. सत्ता के शोषणकारी रूप का यथार्थ

इनके नाटकों में सता व राजनीति के अनैतिक, अमानवीय, क्रूर, स्वार्थी तथा आतंकी चरित्र का प्रकटीकरण बखूबी किया गया है। समकालीन परिस्थितियों तथा प्रसंगों के माध्यम से अमानवीय राजनीतिक स्थितियों , भ्रष्टाचार आदि के कारण स्थापित विसंगत परिवेश के त्रासद परिणामों से पाठकों और दर्शकों को अवगत कराते हुए आगाह कराना इनके नाटकों की रचनाओं का मूल उद्देश्य है।

हानूश, के चरित्र के माध्यम से भीष्म साहनी ने धर्म, समाज और सत्ता की विसंगतियों को बखूबी व्यक्त किया है। साथ ही परिस्थितियों और विसंगतियों से उसके चरित्र में द्वंद्व

भी दर्शाया गया है। यह नाटक ऐतिहासिक नाटक नहीं है और न ही इसका अभिप्राय घड़ियों के आविष्कार की कहानी बताना है। कथानक के दो तथ्यों को छोड़कर सभी कुछ काल्पनिक है। नाटक एक मानवीय स्थिति को मध्ययुगीन परिप्रेक्ष्य में दिखाने का प्रयास मात्र है। यह नाटक राजनीति और व्यवस्था के अनैतिक पक्ष को उद्घाटित करता है जिसके कारण कलाकार का अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। हानूश द्वारा घड़ी बनाए जाने पर राजा उसे अजीब तरीके से पुरस्कृत करना चाहता है, वह नहीं चाहता कि ऐसी घड़ी दोबारा बने इसलिए हानूश की आँखें निकालने का आदेश दिया जाता है, जो सत्ता की क्रूरता की पराकाष्ठा है। 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में पात्रों के संवाद उस समय के धार्मिक, राजनैतिक वातावरण को प्रस्तुत करते हैं। जैसे कि पहले दृश्य में नीरू नीमा का संवाद कबीर के क्रांतिकारी विचारों का परिचय देने वाला है, दूसरे दृश्य में कोतवाल की बातचीत में जाति–पाँति, धर्माडम्बर, अस्पृश्यता तथा अनेक धर्म–सम्प्रदायों के बारे में जानकारी मिलती है। कुछ घटनाएँ, जैसे कि महन्त की शोभा यात्रा, अंधे भिखारी को कोड़े से मारना–तत्कालीन परिवेश को साकार करता है।

पौराणिक कथानक को लेकर प्रस्तुत किए गए 'माधवी' नाटक में – पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति को उद्घाटित किया गया है। स्त्री को अपनी सम्पत्ति मानकर एक वस्तु की तरह इस्तेमाल करना पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता रही है। इस व्यवस्था ने स्त्रियों की आत्मनिर्भरता छीनी है। आत्मसम्मान छीना है गर्वोन्नत होने का भाव छीना है भीष्म साहनी ने अपनी इस नाट्य कृति के माध्यम से पितृसत्तात्मक व्यवस्था की वर्चस्ववादी अंकुश की नीति के साथ ही हाशिए पर खदेड़ दी गई स्त्री की स्थिति को प्रदर्शित किया है। भीष्म साहनी का चौथा नाटक 'मुआवज़े' नाट्य वस्तु की दृष्टि से एक कथा विहीन नाटक है। यहाँ भीष्म साहनी पुराणों का दामन छोड़कर अपने समय में सीधे प्रवेश करते हैं और निकाल लाते हैं राजनीति, प्रशासन की सत्ता को और जनता की सत्ता को और सब कुछ बदल जाता है– गुण्डाराज की सत्ता में। समकालीन परिवेश और पात्रों के जरिए आज की सामाजिक प्रशासनिक, राजनैतिक और धार्मिक विसंगतियों और विडंबनाओं को हास्य व्यंग्य के जरिए उजागर करने वाली है यह कृति।

'रंग दे बसंती चोला' साम्राज्यवादी सत्ता और मानवता की करुण दास्तान के रूप में आता है। इस नाटक में अंग्रजों की क्रूरता का यथा तथ्य चित्रण किया गया है साथ ही अंग्रेजी साम्राज्यवाद की नींव हिलाने वाले रोलैट ऐक्ट का विरोध कर रहे क्रांतिकारियों के पराक्रम, देशभक्ति तथा जलियाँवाला बाग हत्याकांड की हृदय विदारक घटना का सजीव चित्रण किया गया है। साथ ही इस नाटक में यह भी दिखाया गया है कि साम्राज्यवादी सत्ता अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किस प्रकार दमनात्मक तरीके अपनाती है। ब्रिटिश सरकार की 'फूट डालो राज करो' की नीति तथा भारतीय सामंतों के बल पर शासन करने की रणनीति को भी उजागर किया गया है। भीष्म साहनी का अंतिम नाटक है– 'आलमग़ीर', जो औरंगजेब द्वारा राज्य के लिए की गई कारस्तानियों का दस्तावेज़ है। इस नाटक के माध्यम से धर्मांधता के अमानवीय और घातक रूप को दिखाया गया है।

5. आत्मसंघर्ष और जीवन संघर्ष का द्वंद्व

आत्मसंघर्ष और जीवन संघर्ष का द्वंद्व नाटकों की खास विशेषता है। इनके पहले नाटक 'हानूश' को देखिए तो आप पाएँगे कि इसमें एक प्रतिबद्ध कलाकार के आत्मसंघर्ष और जीवन संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है।

स्पष्ट है कि 'हानूश' नाटक सत्ता के समक्ष संघर्ष का पक्षधर है। इस नाटक में धर्म और राजनीति की सत्ता बनाम कला की सर्जनशीलता का त्रिकोण बनता है। हानूश एक मामूली ताला बनाने वाला मिस्त्री है और उसकी घड़ी बनाने की इच्छा है, जिसमें उसे

17 वर्ष लग जाते हैं। इस दौरान हानूश को आर्थिक और धार्मिक संकटों का सामना करना पड़ता है। हानूश की विपन्नता से उसका पादरी भाई और पत्नी कात्या काफी परेशान हैं। घर में चूल्हा तक नहीं जल पाता। सर्दी से बचाव के पर्याप्त साधन न होने के कारण उसे अपना बेटा तक खोना पड़ता है। परिस्थितियों से मजबूर होकर कई बार घड़ी बनाने का काम छूट जाने के बावजूद वह अपनी सर्जनात्मक इच्छा को दबा नहीं पाता। परिस्थितियों में थोड़ा सुधार होते ही वो पुनः घड़ी बनाने के काम में लग जाता है। हानूश को सर्जन प्रक्रिया में केवल आर्थिक संकट का ही सामना नहीं करना पड़ता धर्म से भी टक्कर लेनी पड़ती है। हानूश को गिरजे से मिलने वाली उमदाद बंद हो जाती है और पादरी उसे ईश्वर विरोधी ठहराकर उसके आविष्कार का विरोध करता है। अपनी सत्ता के लिए खतरा बनती सर्जनशीलता को सत्ताधारी कुचल देना चाहते हैं। लाट पादरी हानूश को शैतान और घड़ी निर्माण को खुदा की तौहीन मानता है। बादशाह भी अपनी सत्ता बचाए रखने के लिए धर्म की शरण में है। यूरोप में गिरजे की भूमिका किंग मेकर की रही है। इसलिए बादशाह प्रत्येक कार्य करने से पहले लाट पादरी का मुँह देखता है। अतः बादशाह सलामत भी हानूश के पक्ष में नहीं है और हानूश को अंधा कर देता है साथ ही नगरपालिका पर घड़ी लगाने की मंजूरी देकर व्यापारी वर्ग को भी खुश कर देता है। हानूश एक कलाकार के आंतरिक द्वंद्व को अभिव्यक्त करने वाला नाटक है। रचना प्रक्रिया से लेकर पुरस्कृत और प्रतिबंधित होने तक के द्वंद्व को इसमें साहनी जी ने बखूबी उभारा है। सर्जनशीलता पर पाबंदी और अंधापन हानूश को तिल तिल मरने को मजबूर करता है उस पर हानूश को राज दरबारी बनाए जाने पर उसकी पीड़ा और बढ़ जाती है। मानवीय जीवन की विडम्बना का सबसे बड़ा उदाहरण है कि एक ओर उसे अंधा बना दिया जाता है दूसरी ओर राजदरबारी बना दिया जाता है। घड़ी बजने पर उसे लगता है कि सब उस पर हँस रहे हैं। प्रतिक्रियास्वरूप उसपर अजीब से पागलपन छा जाता है। उसके मन की द्वंद्वात्मक स्थिति को संवादों और क्रियाकलापों के द्वारा भीष्म साहनी ने बखूबी व्यक्त किया है। कथ्य को उभारने के लिए हानूश के साथ अन्य पात्रों की योजनाएँ भी हैं। जैसे– पत्नी कात्या, बेटी यान्का, ऐमिल, जेकब, पादरी, बूढ़ा लोहार, महाराज, जार्ज, टाबर आदि। ये सब अपने पारिवारिक संबंधों व राजनैतिक, धार्मिक अंतर्विरोधों द्वारा हानूश के चरित्र को साकार करते हैं।

6. ठोस सामाजिक आधार

भीष्म साहनी ने नाटक की तथाकथित जड़ता को तोड़ने और हिंदी नाटक को पारम्परिक स्वरूप और संरचना से थोड़ा अलग करते हुए उसे ठोस सामाजिक आधार देने का प्रयास किया है। समसामयिक समस्याओं, सामाजिक विसंगतियों, नारी की स्थिति, राजनीति और नैतिक पतन व भ्रष्टाचार को नाट्यवस्तु की संरचना में समाहित करके उन्होंने समसामयिक यथार्थ के प्रति उदासीन रहने के भाव को तोड़ने का सार्थक प्रयास किया है। जीवन यथार्थ के विविध पहलू जैसे कि– संघर्ष, तनाव, भटकाव आदि उनके नाटकों में जीवंत परिवेश और पात्र योजना के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं। व्यक्ति और समाज, व्यक्ति और सत्ता, व्यक्ति और परम्परा के अंतर्सम्बंध, जटिलताओं और सामंजस्य और विरोध के साथ मानवीय अस्मिता के प्रश्नों को बड़ी सहजता से उठाते हैं। समकालीन समय समाज के साथ–साथ ऐतिहासिक और पौराणिक मान्यताओं की गहरी समझ के साथ ही व्यक्ति के अंतर्मन में भीष्म साहनी की गहरी पैठ है। सत्ता और कला का द्वंद्व, पितृसत्तात्मक समाज में शोषित नारी, औपनिवेशिक भारत में ब्रिटिश सत्ता की क्रूरता और जनता का संघर्ष –इनके नाटकों की विषय वस्तु है। कहीं इतिहास, कहीं पौराणिक संदर्भ, कहीं दंत कथा और कहीं समकालीन जीवन के माध्यम से इन्होंने अपने नाटकों के कथानक को रचा है। इस प्रकार समसामयिक समस्याओं तथा अपने समय के यथार्थ को अतीताश्रित कथावस्तु में पिरो देने में भीष्म साहनी अत्यंत कुशल दिखाई देते हैं।

7. कथात्मकता की अधिकता

साहनी जी के नाटकों को एक कथाकार के नाटक कहा जाता है क्योंकि इनके नाटकों में नाटकीय कार्य–व्यापार की अपेक्षा कथात्मकता की अधिकता, संवादों और शब्दों में अभिधात्मकता है। इनके नाटकों का महत्व नाटकों की अंतर्वस्तु के कारण है। इनके कथा–विन्यास में सरलता और चरित्रांकन में सहजता है।

8. रंगमंचीयता

भीष्म साहनी के नाट्य लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके नाटक प्रायः रंगमंच पर अभिनीत होने के बाद प्रकाशित हुए। अतः इनके नाटक रंगमंचीय दृष्टि से काफी सफल हैं। भीष्म साहनी स्वयं अपने नाटकों में पात्र के रूप में भाग लेते थे। इनके नाटक जनचेतना के संवाहक होने के साथ–साथ रोचक एवं कौतूहलपूर्ण घटनाक्रमों की योजना, संवेदनशील प्रसंगों की सूक्ष्म पकड़, सहज नाटकीय प्रसंगों की उद्‌भावना, विडम्बनापूर्ण स्थितियों की पहचान, तथा तनावपूर्ण मनः स्थितियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में पूर्णतया सफल हैं।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि भीष्म साहनी के नाटक चेतना को झकझोरते हैं क्योंकि इनमें यथार्थ जीवन के विविध पहलू, संघर्ष ,तनाव, भटकाव, जीवन्त परिवेश और पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं। हिंदी साहित्य में भीष्म साहनी के नाटकों का महत्व उनके अंतर्वस्तु के कारण है। अपनी अंतर्वस्तु में ये नाटक मानवीय संवेदनाओं से गहरे सरोकार रखते हैं। व्यक्ति और समाज, व्यक्ति और सत्ता, व्यक्ति और परम्परा के अंतर्सम्बंधों, जटिलताओं, सामंजस्य और विरोध की स्थितियों के मध्य वह मानवीय अस्तित्व और अस्मिता के प्रश्नों को बड़ी सहजता के साथ उठाते हैं। उनके पास समकालीन यथार्थ, इतिहास और परम्परा की जितनी मुकम्मल समझ है, उतनी ही व्यक्ति के अंतर्मन में भी पैठ है। लोक कथा, इतिहास और सामाजिक यथार्थ से युक्त इनके नाटकों में विचारों का आरोपण नहीं है, उपदेशों का सिलसिला नहीं है, बल्कि पाठकों को सोच के स्तर तक सहजता से ले जाता है।

बोध प्रश्न–2

(क) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. भीष्म साहनी ने नाट्य लेखन की शुरूआत ....की।
2. हानूश', 'कबिरा खड़ा बजार में' और 'माधवी' नाटकों के अनेक बार मंचन ....से हुए।
3. उनके चिंतन का धरातल .... है।
4. लोक कथा पर आधारित नाटक ....है।
5. पौराणिक कथा पर आधारित नाटक.............. है।
6. इतिहास पर आधारित नाटक ....हैं।
7. समसामयिक परिवेश पर व्यंग्य आधारित नाटक .... है।
8. ....भीष्म साहनी का पहला नाटक है।
9. 'हानूश' .... दंत कथा पर आधारित नाटक है।
10. कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में कुल ....अंक हैं।
11. 'माधवी का प्रकाशन........... हुआ था।
12. भीष्म साहनी के चिंतन का धरातल .... है।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के लगभग 5–7 पंक्तियों में उत्तर दीजिए–

1. भीष्म साहनी के नाटकों की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

2. मीनारी घड़ी की दंत कथा क्या है?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3. आठवें दशक के नाटकों की विशेषताएं बताइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

8.6 सारांश

भारतीय जनमानस से गहराई से जुड़े भीष्म साहनी बीसवीं सदी के हिंदी के प्रमुख कथाकार एवं नाटककार हैं। उनकी मान्यता है कि रचनाकार अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के द्वारा रचना को मानवीय संवेदना के ऐसे धरातल पर पहुँचा देता है, जहाँ पूरी मानवता का स्वर सुनाई देता है। कथा–साहित्य भीष्म साहनी के साहित्य सर्जना के केन्द्र में है। साथ ही उन्होंने नाटक, निबन्ध, आलोचना, आत्मकथा, जीवनी आदि विधाओं में भी अपनी लेखनी चलाई है। अपनी रचनाओं के माध्यम से भीष्म साहनी ने अपने समय व समाज की शिनाख्त की है तथा सत्ता व समाज की विद्रूपताओं का पर्दाफाश किया है। उन्हें अपने वर्तमान समय व समाज की जितनी मुकम्मल समझ है, उतनी ही इतिहास एवं परम्परा की भी।

मूलतः कथाकार होते हुए भी उन्होंने सशक्त नाट्य लेखन किया है। जनवादी सरोकार और रंगमंचीय प्रस्तुति की दृष्टि से उनके नाटक महत्वपूर्ण हैं। इनके नाटकों में न्यायमूलक व्यवस्था की मांग, मानवीय संवेदना के प्रति सरोकार एवं सामाजिक जीवन की विसंगतियों का उद्घाटन की कामनाओं को स्पष्ट देखा जा सकता है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भीष्म साहनी समकालीन यथार्थ के साथ मिथकों व ऐतिहासिक

संदर्भों का सर्जनात्मक प्रयोग करते दिखाई देते हैं। साहित्य हमें बेहतर इंसान बनाता है–इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही भीष्म साहनी की लेखनी चलती है।

भीष्म साहनी के पास जीवन को देखने की व्यापक दृष्टि है। मानवीयता उनके नाटकों की आधार भूमि है। व्यक्ति एवं समाज के जटिल संबंधों को सहजता से जीवंत बना देना उनकी विशेषता है। कला और सत्ता के विरोधाभासी चरित्रों की जितनी सशक्त अभिव्यक्ति उनके नाटकों में हुई है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। विषय चाहे ऐतिहासिक हो या काल्पनिक , वे समकालीन समस्याओं एवं विसंगतियों को गहरी सूझ बूझ के साथ प्रदर्शित करते हैं। नाटककार के रूप में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

8.7 उपयोगी पुस्तकें

1. तनेजा डॉ. जयदेव, आज के हिन्दी रंग नाटक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2011
2. मोहन डॉ. नरेन्द्र, समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2009
3. सं. नेमिचन्द्र जैन : आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच, मैकमिलन कम्पनी, नई दिल्ली, सं. 1978

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

(क) 1. गद्य विद्याओं 2. बलराज साहनी
3. मंचन 4. फ़िल्मों
5. कबिरा खड़ा बाजार में

(ख) 1. सही 2. गलत 3. सही 4. सही
5. गलत 6. गलत

(ग) 1. उत्तर के लिए देखिए 8.2 2. उत्तर के लिए देखिए 8.2
3. उत्तर के लिए देखिए 8.2

बोध प्रश्न–2

(क) 1. आठवें दशक से 2. 'प्रयोग' नामक संस्था से
3. जनहित 4. हानूश
5. माधवी
6. कबिरा खड़ा बजार में, आलमगीर और रंग दे बसंती चोला
7. मुआवज़े 8. हानूश
9. ऐतिहासिक मीनारी घड़ी से जुड़ी दंत कथा पर
10. तीन 11. 1984 में
12. जनहित

(ख) 1. उत्तर के लिए देखिए 8.5
2. उत्तर के लिए देखिए 8.3
3. उत्तर के लिए देखिए 8.4

इकाई 9: 'माधवी' नाटक का कथ्य और शिल्प

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 महाभारत में 'माधवी' की मूल कथा

9.3 'माधवी' की कथा का नाट्य रूपांतरण

9.4 'माधवी' का कथ्य

9.5 'माधवी' का शिल्प

9.5.1 वस्तु–विन्यास प्रयोग

9.5.2 चरित्र योजना

9.5.3 संवाद योजना

9.5.4 देशकाल और वातावरण

9.5.5 भाषा

9.5.6 शैली

9.6 रंगमंच और अभिनेयता की दृष्टि से 'माधवी'

9.7 सारांश

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- महाभारत में माधवी की मूल कथा जान सकेंगे;
- भीष्म साहनी ने महाभारत की कथा को कैसे नाटक के रूप में लिखा– यह समझ सकेंगे;
- नाटक के माध्यम से भीष्म साहनी क्या दर्शाना चाह रहे हैं– इसका विश्लेषण कर सकेंगे;
- नाटक का शिल्पगत विवेचन कर सकेंगे; और
- रंगमंच की दृष्टि से 'माधवी' नाटक का मूल्यांकन कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

भीष्म साहनी द्वारा लिखित 'माधवी' नौंवे दशक का नाटक है। जिसमें महाभारत की कथा को आधार बनाकर भारतीय समाज–व्यवस्था में नारी की स्थिति को दर्शाया गया है।

हिंदी नाटकों की परंपरा में पौराणिक आख्यानों के आधार पर अनेक सशक्त नाटक लिखे गए। जिनमें जगदीशचंद्र माथुर का 'कोणार्क' और 'पहला राजा' शंकर शेष का 'एक और द्रोणाचार्य', सुरेन्द्र वर्मा का 'द्रौपदी', मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन' 'आधे–अधूरे' और 'लहरों के राजहंस', रमेश बख्शी का 'देवयानी का कहना है', गिरिराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो' के नाम प्रमुख हैं। इन नाटककारों ने समकालीन संवेदना को विश्वसनीयता और प्रामाणिकता का आधार देने के लिए पौराणिक आख्यानों का सहारा लिया। इसी परंपरा में भीष्म साहनी द्वारा लिखा गया नाटक 'माधवी' है। इनमें

से मोहन राकेश के नाटकों को आधुनिक मनुष्य के अंतर्द्वंद्व और संशयों की गाथा होने के साथ–साथ रंगमंच पर भी शानदार सफलता मिली। नाट्य सर्जना की दृष्टि से भीष्म साहनी मोहन राकेश की परम्परा में आते हैं अर्थात् इनके नाटक अपने समय के यथार्थ को ही व्यक्त नहीं करते अपितु उसे पूरी सफलता के साथ रंगमंच पर प्रस्तुत भी किया जा सकता है। इस नाटक में कल्पना का आधार लेकर पौराणिक कथा की नई व्याख्या की गई है। एक रेल सफर के दौरान त्रिलोचन शास्त्री से जब उन्होंने माधवी की कहानी सुनी तो उन्हें इसमें नाटकीय तत्व नजर आए और उन्होंने माधवी को केन्द्र में रखकर पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री के शोषण व उपेक्षा को उजागर करने के निमित्त माधवी नाट्यकृति की रचना की। इस नाटक में कल्पना का आधार लेकर पौराणिक कथा की नई व्यवस्था प्रस्तुत की गई है और मूल कथा में भी नवीनता का समावेश किया गया।

9.2 महाभारत में 'माधवी' की मूल कथा

नहुष कुल में उत्पन्न राजा ययाति की पुत्री है–माधवी। माधवी की कथा का वर्णन महाभारत के उद्योग पर्व के 106 वें अध्याय से 123वें अध्याय तक आता है। माधवी थी तो राजपुत्री पर उसके पिता ययाति ने उसे इसलिए गालव ऋषि को सौंप दिया था ताकि गालव, माधवी को अन्य राजाओं को सौंपकर गुरु विश्वामित्र को गुरु दक्षिणा में देने के लिए 800 अश्व प्राप्त कर सकें। गालव ऋषि ने माधवी को तीन राजाओं और अंत में अपने गुरु विश्वामित्र को सौंपा। आइए, कथा विस्तार से जानते हैं– गालव ऋषि विश्वामित्र के बड़े प्रिय शिष्य थे। जब उनका अध्ययन पूर्ण हुआ तो नियमानुसार गुरु से दीक्षा लेकर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने की अनुमति लेने का अवसर प्राप्त हुआ। गालव ने सोचा, यही अवसर है, जबकि गुरु के प्रति अपनी अपार भक्ति एवं श्रद्धा का कुछ परिचय दे सकूँगा। उन्होंने निश्चय किया कि अपनी शक्ति के अनुसार कोई–न–कोई गुरु–दक्षिणा देकर ही आश्रम से विदा लेंगे। किंतु उनके गुरु विश्वामित्र से गालव की स्थिति छिपी नहीं थी। फलतः गालव के अनेक अनुरोधों एवं दुराग्रहों को विश्वामित्र ने उन्होंने उन्हें गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने की अनुमति प्रदान कर दी। किंतु गालव भी अपने निश्चय पर डटे रहे और विश्वामित्र के बहुत समझाने–बुझाने के बाद भी गुरु दक्षिणा देने का हठ करते रहे। विश्वामित्र गालव के दुराग्रह से विचलित हो उठे और क्रोध में उन्होंने गुरु दक्षिणा के रूप में 800 श्यामकर्णी अश्व को गुरु दक्षिणा में माँग लिया, गालव के लिए बहुत कठिन था। गालव ने गुरु से कुछ समय की मोहलत माँगी। विश्वामित्र ने स्वीकार कर लिया।

गालव की पक्षिराज गरुड़ से विशेष मैत्री थी। गरुड़ के साथ मिलकर गालव ने अश्वमेधी घोड़ों की तलाश में भूमण्डल की प्रदक्षिणा कर डाली। किंतु सफलता नहीं मिली। गालव निराश होकर आत्महत्या पर उतारू हो गए। किंतु गरुड़ ने इस समय भी उनका साथ नहीं छोड़ा। अपनी सूझ–बूझ से गालव के प्राणों की रक्षाकर अंत में गरुड़ ने गालव को अभीष्ट सिद्धि के लिए ययाति की शरण में जाने की प्रेरणा दी। महाराज ययाति का उन दिनों धरती के राजाओं में सर्वाधिक सम्मान था। अपने अतिथियों, यज्ञों एवं प्रजा के कल्याणकारी कार्यों के लिए ययाति को कुछ भी अदेय नहीं था। जब गरुड़ ने उन्हें अपने आने का प्रयोजन बताया और 800 अश्वमेधी घोड़ों की इच्छा जाहिर की तब ययाति भी दुविधा में पड़ गए। क्योंकि संयोगवश उस समय उनकी स्थिति वैसी नहीं थी, जैसी गरुड़ समझते थे। अनेक राजसूय यज्ञों और अश्वमेध यज्ञों में उन्होंने अपना सम्पूर्ण कोष खाली कर दिया था। कुछ क्षण गंभीर सोच विचार करने के बाद उन्होंने अपनी त्रैलोक्य सुंदरी कन्या माधवी को उन्हें सौंप दिया। माधवी को दैवी वरदान प्राप्त था जिसके अनुसार राजवंशों की प्रतिष्ठा का वह माध्यम थी। ययाति ने कहा कि ऐसी कन्या के बदले में कोई भी राजा अश्वमेधी घोड़ों को अवश्य दे देगा। आठ सौ अश्वमेधी घोड़ो को माधवी के माध्यम से लेने के बाद माधवी को वापस कर देना होगा। ययाति की

पुत्री माधवी को संग लेकर गरुड़ और गालव सर्वप्रथम अयोध्या के राजा हर्यश्च के पास पहुँचे, जो उस समय न केवल अपनी दानवीरता, शूरता व समृद्धि के कारण प्रसिद्ध थे, बल्कि संसार भर के चुने हुए अश्वों को रखने के कारण भी विख्यात थे। किंतु विडम्बना यह थी कि उनके पास वैसे श्याम कर्णी अश्वों की संख्या केवल दो सौ थी। हर्यश्च ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए गालव और गरुड़ को सुझाव दिया कि आपको मेरे समान ही अन्य राजाओं से भी माधवी के शुल्क के रूप में वैसे श्यामकर्णी अश्वों की प्राप्ति का उपाय करना होगा। क्योंकि मेरे पास केवल दो सौ ही अश्व हैं, अतः मैं माधवी से पुत्रोत्पत्ति के बाद केवल दो सौ ही अश्व दे सकता हूँ। दूसरा कोई उपाय न होने के कारण गालव और गरुड़ ने अयोध्यापति हर्यश्च की बात मान ली और माधवी को हर्यश्च के पास कुछ दिनों के लिए छोड़कर अन्यत्र चले गए। यथासमय माधवी को वसुमना नामक पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। गालव और गरुड़ आए और हर्यश्च से शुल्क रूप में प्राप्त दो सौ घोड़ों को कुछ दिनों के लिए अयोध्या में ही छोड़कर माधवी के संग पुनः वैसे ही घोड़ों की खोज में निकल पड़े और दिवोदास के दरबार में पहुँचे। यहाँ भी माधवी से पुत्र प्राप्ति के बाद दो सौ अश्वमेधी घोड़े मिलने की बात हुई और प्रतर्दन नामक पुत्र की प्राप्ति के बाद माधवी पुनः ऋषि कुमार के साथ किसी अन्य राजा की तलाश में निकल पड़ी। इस बार गालव और माधवी पक्षिराज गरुड़ के साथ भोजराज उशीनर के पास पहुँचे। संयोग से उनके पास भी दो सौ ही श्यामकर्णी अश्वमेधी घोड़े थे। यहाँ भी माधवी से शिवि नामक पुत्र की प्राप्ति के बाद उसे दो सौ घोड़े मिले। इस तरह कुल छः सौ घोड़े मिलने के बाद भी अभी दो सौ घोड़ों की जरूरत थी। अब गालव के पास अपने गुरु विश्वामित्र की शरण में जाने के अलावा कोई भी उपाय शेष नहीं था। अतः शेष बचे दो सौ घोड़ों के शुल्क के रूप में माधवी को देने का प्रस्ताव रखा। गरुड़ ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया जिसे विश्वामित्र ने स्वीकार किया और माधवी से उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। इन चारों पुत्रों की उत्पत्ति के बाद माधवी ने गालव को उऋण करा दिया और वापस अपने पिता के पास आ गई। पिता के पास वापस आने पर ययाति ने माधवी का स्वयंवर करने का विचार किया किंतु माधवी ने किसी अन्य को पति के रूप में वरण करने के स्थान पर तपोवन का मार्ग ग्रहण कर लिया।

महाभारत के इसी कथा –प्रसंग को भीष्म साहनी ने भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति को दर्शाने के उद्देश्य से नाटक के रूप में लिखा, जिसमें उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा प्रभावी ढंग से संवेदनशील रूप में अनेक परिवर्तन भी किए। यही कारण है कि मूल कथा का नाट्य रूपांतरण इतना हृदयग्राही बन गया।

9.3 माधवी की कथा का नाट्य रूपांतरण

महाभारत में आई इस मूल कथा को नाटककार भीष्म साहनी ने अपनी नाट्य कृति में कैसे प्रस्तुत किया है, कहाँ–कहाँ पर मूल कथा में नाटकीय तत्वों को जोड़ा– इसे जानने के लिए आपको माधवी नाटक का सारांश अंकों और दृश्यों के आधार पर जानना जरूरी है।

'माधवी' नाटक में तीन अंक हैं–प्रथम अंक में तीन दृश्य, दूसरे में चार व तीसरे में तीन दृश्य है। लगभग प्रत्येक दृश्य का आरम्भ कथावाचक की उद्घोषणा से होता है।

प्रथम अंक के प्रथम दृश्य का आरम्भ कथावाचक की उद्घोषणा से 'महाभारत' में मुनिकुमार गालव और ययाति का परिचय प्राप्त होता है। गरुड़ का संदर्भ भी आता है। लेकिन महाभारत की कथा की तरह गरुड़ प्रत्येक स्थान पर यहाँ गालव के साथ नहीं दिखाई देता। केवल कथावाचक से पता चलता है कि विष्णु भगवान के आदेश से गरुड़ पृथ्वी पर आकर गालव को गुरु दक्षिणा की समस्या के समाधान के लिए ययाति

के पास जाने का सुझाव देता है। इसके बाद पूरे नाटक में गरुड़ कहीं भी नहीं दिखाई देता। रंगमंच की दृष्टि से ऐसा परिवर्तन उचित ही है।

पहले दृश्य के ययाति और आश्रमवासियों के संवादों में महाराज ययाति द्वारा राजपाट छोड़कर आश्रम में रहने तथा प्रशंसा सुनने की आदत और दानी होने के गर्व का बोध होता है। इसी समय आश्रम में गालव का प्रवेश होता है और विश्वामित्र का शिष्य होने और गुरु दक्षिणा में आठ सौ अश्वमेधी घोड़े देने की समस्या का समाधान करने के लिए ययाति की शरण में आने का पता चलता है। ययाति स्वयं को दानवीरों में श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए अपनी एकमात्र पुत्री को बिना उसकी इच्छा के दान में दे देते हैं। इसी दृश्य में यह भी पता चलता है कि राजज्योतिषियों की गणना के अनुसार माधवी के गर्भ से उत्पन्न होने वाली संतान चक्रवर्ती राजा बनेगी। उसे चिर कौमार्य का वर भी प्राप्त है। माधवी के ये गुण ही उसके पिता ययाति और गालव के स्वार्थ पूर्ति के साधन बन गए। ये भी नाटककार की मौलिक कल्पना ही है। इस वरदान की परिकल्पना के माध्यम से नाटक के अंत में माधवी के स्वाभिमानी व्यक्तित्व को दर्शाना आसान हो गया है।

दृश्य दो का संबंध वन से है। माधवी और गालव अश्वमेधी घोड़ों की तलाश में वन में घूम रहे हैं जिसमें संवादों के माध्यम से यह निकलकर आता है कि माधवी गुरु दक्षिणा की निमित्त मात्र है जिसे पिता के आदेश का अनुपालन करना है। स्वयं उसकी चाहत का कोई माने नहीं है। इस तरह के संवाद में हम माधवी के भीतर बीज रूप में प्रतिरोध को जन्म लेते देख सकते हैं जिसकी परिणति अंत में स्वविवेक से स्वयंवर में वर के रूप में आए गालव का अस्वीकार से होती है। इसी दृश्य में गालव और माधवी के प्रेम का बीजारोपण होता भी दिखाई देता है (मूल कथा में प्रेम का यह भाव कहीं नहीं है)। साथ ही गालव के मन की दुविधा और माधवी का अपने भाग्य की क्रूर विडम्बना के प्रति दुख का भाव भी व्यक्त होता है। एक तरफ स्वप्न में देखे गए राजकुमार के रूप में गालव से मिलना लेकिन प्रतिज्ञा पूर्ति हेतु अलग होने की विवशता। अश्वमेधी घोड़ों की प्राप्ति के लिए उत्तराखण्ड की ओर प्रस्थान करते समय माधवी कहती है– "उत्तराखण्ड की ओर हम लम्बे–लम्बे मार्ग से जाएँगे, ताकि हम अधिक समय तक एक–दूसरे के साथ रह सकें। वनों–पर्वतों को तुम्हारे साथ लाँघते हुए मुझे अच्छा लगेगा। चलो, गालव।" इन संवादो से माधवी के प्रति मानवीय संवेदना को जगाने में भीष्म साहनी को पर्याप्त सफलता मिली है। स्त्री का प्रेम के प्रति समर्पण भाव यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है।

दृश्य तीन में अयोध्या के राजा हर्यश्च का दरबार है जिसमें माधवी को लेकर गालव उपस्थित है। माधवी को देकर उनसे अश्वमेधी घोड़े लेने की प्रार्थना की है–गालव ने। यहाँ माधवी का मोलभाव होता है। मानों वह इंसान न होकर कोई वस्तु हो। माधवी को एक छोटी सी पीठिका पर खड़ा करके उसके एक–एक अंग का निरीक्षण किया जाता है। यहाँ तक कि उसको मुँह खोलकर दिखाने का भी निर्देश दिया जाता है। कंठ का निरीक्षण करने के लिए कुछ बोलने को कहा जाता है। भरी सभा में राजज्योतिषी उसके अंग प्रत्यंगों का बखान करके उसके राजकन्या होने की पुष्टि करता है। इस प्रकार के दृश्य योजना के द्वारा वस्तु रूप में नारी को समझे जाने की मानसिकता को भीष्म साहनी ने सहज ही व्यक्त कर दिया है। माधवी के शारीरिक गुणों की प्रशंसा सुनकर राजा हर्यश्च उसे रनिवास में रखने को राजी हो जाता है और पुत्र–प्राप्ति के बाद दो सौ अश्वमेधी घोड़े देने का सौदा तय होता है। यहीं पर गालव को अपने चिर कौमार्य की बात बताकर माधवी अपने प्रेम के खातिर त्याग करने को तैयार हो जाती है और जल्दी ही गुरु दक्षिणा की प्रतिज्ञा से मुक्त होकर मिलन की आशा में राजा के रनिवास में चली जाती है। चिर कौमार्य के वरदान की परिकल्पना करके भारतीय समाज में स्त्री शुचिता संबंधी अवधारणा को संकेतित किया गया है।

यहीं पहला अंक समाप्त हो जाता है और नाटक का दूसरा अंक शुरू होता है। **दूसरे अंक में चार दृश्य हैं– पहले दृश्य** का आरम्भ होता है– कथावाचक की उद्घोषणा से। कथावाचक सीता सावित्री की कथा के माध्यम से स्त्री की तुलना पृथ्वी से करता है। मानो संकेत है कि अभी माधवी को पृथ्वी की भाँति संसार भर का बोझ कर्त्तव्य मानकर वहन करना है। स्त्री का प्रमुख गुण है–त्याग और सेवा। माधवी त्याग और सेवा की प्रतिमूर्ति है, एक तरफ माधवी का प्रेमी गालव माधवी को भूलकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए और अश्वमेधी घोड़ों की तलाश में घूम रहा है और दूसरी तरफ माधवी के पिता ययाति अपनी बेटी के दुख को दरकिनार कर अपने आश्रम में पूजा–आराधना का पुण्य कमा रहे हैं। पुनः दृश्य ययाति के आश्रम का है। ययाति और मारीच के संवाद से ययाति को अपनी दानवीरता के बारे में गर्व ही करते दिखाया गया है। माधवी के बारे में उसे थोड़ी भी चिंता नहीं दिखाई देती। वह माधवी की बलि देकर भी अपने यश को बरकरार रखना चाहता है। मारीच कहता है– ''अपनी पुत्री की स्थिति को देखते हुए भी आपको अपना यश अधिक प्यारा है। भले ही इसके लिए माधवी की बलि देनी पड़े।'' ययाति और मारीच के संवाद से ही माधवी को पुत्र–रत्न की प्राप्ति होने तथा ऋषि विश्वामित्र के पास दो सौ अश्वमेधी घोड़ों के जाने की सूचना मिलती है।

दृश्य दो में अयोध्या के उत्सव का समाँ है। अब माधवी एक बच्चे की माँ है लेकिन उसे अपना मातृत्व भाव व्यक्त करने का अवसर नहीं है क्योंकि उसे तो शेष बचे अश्वमेधी घोड़ो की प्राप्ति के लिए किसी दूसरे राजा के रनिवास में जाना होगा। वह गालव की प्रतिज्ञा पूर्ति के निमित्त अपने राजसी सुख और संतान को त्याग देती है। वह गालव को अपने पुत्र वसुमना के बारे में बताती है, उसे देखने की लालसा व्यक्त करती है। किंतु गालव को माधवी की पीड़ा से कोई लेना देना नहीं। वह तो अश्वमेधी घोड़ों को पाने की खुशी में मगन है। जब गालव उसे बच्चे के प्रति भावुक होने से मना करता है तब आहत माधवी कहती है– ''ठीक कहते हो, गालव, वह मेरा लगता ही क्या है....तुम्हें अश्वमेधी घोड़े मिल गए?'' गालव के स्वार्थ के आगे अपनी कोख से पैदा की गई संतान को छोड़ना उसकी मजबूरी है जबकि एक स्त्री जब माँ बन जाती है तो तब उसके लिए बच्चे से बढ़कर कुछ भी नहीं होता। गालव खुश है कि अब वह हर्यश्च के रनिवास से मुक्त है किंतु माधवी तो अब मातृत्व भाव से भरपूर है, पुत्र–मोह में फँसी है। वह कुछ समय अपने बच्चे के साथ बिताना चाहती है। लेकिन ययाति को तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की धुन सवार है। वह कहता है– ''मुझे खेद है माधवी, पर हमें जल्दी से जल्दी दूसरी यात्रा पर चलना होगा।'' पहले अंक में माधवी के भीतर प्रतिरोध के जिस भाव का बीजारोपण होता है, उसे हम यहाँ थोड़ा पल्लवित रूप में देख सकते हैं। धीरे–धीरे परिस्थितियाँ उसके भीतर के प्रतिरोध भाव को पोषित कर रहीं हैं। माधवी गालव से कहती है तुम ऋण मुक्त होने के लिए यह सब कर रहे हो और मैं तुम्हें पाने के लिए।

दृश्य तीन काशी के राजा दिवोदास के प्रासाद का एक कक्ष है जिसमें गालव माधवी को लेकर उपस्थित है। कथावाचक की उद्घोषणा से दिवोदास के रसिक मिजाज और पुत्र प्राप्ति की लालासा का पता चलता है। इस दृश्य में विदूषक और दिवोदास के संवाद में भी यही बात निकलकर आती है। इनके संवाद से ही पता चलता है कि वह सत्रह पुत्रियों का पिता है लेकिन वंश को चलाने वाले पुत्र की चाहत है। उसने माधवी से पुत्र–प्राप्ति के बाद दो सौ अश्वमेधी घोड़ों को देने का वादा तो किया ही साथ ही धमकी भी दी कि यदि पुत्री हो गई तो दोनों को काल कोठरी में बंद करवा देगा।

दृश्य चार का आरंभ नेपथ्य के गर्जन–तर्जन से होता है लोग इधर उधर भाग रहे हैं और आपस में जिज्ञासा वश पूछ रहे हैं जिससे पता चलता है कि वितस्ता नदी में बाढ़ आ गई है जिसमें सैकड़ों अश्वमेधी घोड़े भी बह गए। राजा गाधि ने कभी यज्ञ कराया

था जिसके सम्पन्न होने पर ब्राह्मणों को एक हजार अश्वमेधी घोड़े दान स्वरूप दिए थे। ब्राह्मण इन घोड़ों को उत्तराखण्ड के राजाओं को बेचते थे। बहुत सारे घोड़े तो उन्होंने बेच दिए। शेष बचे घोड़ों को लेकर जब वे वितस्ता नदी पार कर रहे थे तभी बाढ़ आ गई। इतनी सूचनाएँ लोगों की भागदौड़ के बीच होने वाली बातों से, पर्दे के पीछे से ही मिल जाती हैं। इसके बाद ऋषि विश्वामित्र के आश्रम के दृश्य के साथ पर्दा खुलता है और तापस के साथ होने वाले संवादों से ज्ञात होता है कि आर्यावर्त में इस वक्त केवल छः सौ ही अश्वमेधी घोड़े हैं जबकि विश्वामित्र ने आठ सौ घोड़ों की माँग की है। छः सौ घोड़ों के बाद शेष दो सौ घोड़ों के लिए गालव को विश्वामित्र की शरण में आना ही पड़ेगा क्योंकि वितस्ता नदी की बाढ़ से बचे घोड़े विश्वामित्र के आश्रम में ही पहुँचाए जा रहे थे। यह दृश्य योजना भी भीष्म साहनी की मौलिक कल्पना है। माधवी के संघर्ष को चरम रूप देने के लिए गालव के गुरु विश्वामित्र के पास अश्वमेधी घोड़ों के लिए माधवी को भेजे जाने की भूमिका यहाँ बनती दिखाई देती है।

इसके बाद नाटक का **तीसरा अंक** आरंभ होता है जिसमें तीन दृश्य हैं। **पहले दृश्य** में कथावाचक के माध्यम से काशी नरेश के प्रतदर्मन नामक पुत्र के जन्म की तथा भोजनगर के वृद्ध राजा उशीनर के पास गालव और माधवी के पहुँचने की सूचना मिलती है। जिससे माधवी शिवि नामक पुत्र को जन्म देती है। इसके बाद वन में शेष घोड़ों की तलाश में घूमते हुए अचानक माधवी गायब हो जाती है। माधवी के गायब होने पर गालव हताश और निराश है तभी तापस से उसे ज्ञात होता है कि अब आर्यावर्त में और अश्वमेधी घोड़े नहीं है। जो थे, वो वितस्ता की बाढ़ में बह गए।

दूसरे दृश्य में विश्वामित्र के आश्रम का दृश्य है। उनके पास इतने घोड़े हो गए हैं कि पूरा आश्रम घुड़साल बन गया है। एक तो गालव द्वारा भेजे गए छः सौ घोड़े, साथ ही वितस्ता की बाढ़ से बचे घोड़े। तभी माधवी, विश्वामित्र के आश्रम में पहुँचती है और बिना गालव को बताए उसकी गुरु दक्षिणा के लिए शेष दो सौ घोड़ों के लिए विश्वामित्र के आश्रम में रहकर पुत्र रत्न के बदले में दो सौ घोड़े देने का प्रस्ताव रखती है। **तीसरे दृश्य** में कथावाचक की उद्घोषणा से ही ज्ञात होता है कि गालव की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। ययाति के आश्रम में एक साथ माधवी के स्वयंवर और गालव के दीक्षांत समारोह का राजसी धूमधाम से आयोजन है। स्वयंवर में वे राजा गण भी अपनी–अपनी संतानों को लेकर आए हैं, जिनके रनिवास में वह रह चुकी है। उन्हें यह उम्मीद है कि शायद अपने पुत्र को देखकर माधवी उनके गले में जयमाल डाल देगी। गालव भी सज–धजकर सवयंवर में चुने जाने के पूरे विश्वास के साथ आता है और अधीरता से माधवी को ढूँढ़ता है। माधवी के बिना जल से निकाली मछली की भाँति तड़पने की बात करता है। उद्विग्न भी है कि कहीं माधवी किसी राजा का वरण न कर ले। किंतु अचानक ढले देह वाली, लावण्यहीन, अधेड़, अनाकर्षक माधवी को देखकर वह ठिठक जाता है। माधवी से चिर कौमार्य का अनुष्ठान करके पुनः आकर्षक बन जाने का अनुरोध करता है। किंतु माधवी अपने प्रिय के साथ अपने वास्तविक रूप में ही रहना चाहती है। अब प्रेम का दावा करने वाला, राजा के महलों के झरोखों में माधवी की छवि को देखने का आकांक्षी गालव उसे देख जैसे जड़ हो जाता है, उसे स्वतंत्र करने में ही उसे अपनी मुक्ति नजर आती है और तुरन्त मुक्ति का उपाय भी निकाल लेता है, कहता है– "जो स्त्री मेरे गुरु के आश्रम में रह चुकी हो उसे मैं अपनी पत्नी कैसे बना सकता हूँ।"

गालव ने अपनी मुक्ति के लिए कितनी सुन्दर तरकीब सोची। माधवी जिसने अपना यौवन अपने बच्चे, सपने सब कुछ न्यौछावर कर दिया गुरु दक्षिणा जुटाने के लिए उसे सिद्ध साधक गालव तभी अपना सकते हैं जबकि वह पुनः यौवन व कौमार्य को प्राप्त करे। माधवी को जैसी है उसे रूप में उसे स्वीकार्य नही। फिर भी संसार गालव को तपस्वी कहेगा साधक कहेगा और माधवी को दुर्बल मन चंचल स्त्री– जिसका विश्वास

नहीं किया जा सकता– कितना अद्‌भुत न्याय है। ध्यातव्य है कि गुरु के पास रहने की बात कहने के बाद फिर वह माधवी से अनुरोध करता है कि तुम पुनः कौमार्य को धारण कर लो तो फिर से अनुष्ठान कर अपना पहला रूप धारण कर सकती हो और मैं तुम्हें पाकर अपने को धन्य मानूँगा। किन्तु माधवी इसके लिए तैयार नहीं होती। वह कहती है– "यौवन व रूप तो मिल जाएँगे पर अपने इस दिल का क्या करूँगी जो छलनी हो चुका है।" और अंततः वह गालव को मुक्त कर देती है।

9.4 'माधवी' का कथ्य

माधवी नाटक का मूल कथ्य है– पुरुष–प्रधान समाज में नारी की स्थिति को उद्‌घाटित करना। माधवी की त्रासदी संवेदना के त्रिकोण में उभरती है, जिसमें हैं–पिता ययाति, तथाकथित प्रेमी गालव और उसके गर्भ को किराए पर लेने वाले पति और तपस्वी विश्वामित्र। माधवी, पिता, प्रेमी और अस्थायी पतियों –सभी के लिए आकांक्षा पूर्ति का साधन है। पिता ययाति उसका दान सिर्फ इसलिए करता है ताकि उसे जगत में बड़ा दानवीर कहा जाए–**"जब दान दक्षिणा के प्रत्येक प्रसंग में केवल ययाति का नाम लिया जाएगा और लोग कर्ण को भूल जाएँगे।"** अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु बेटी का दान देने वाले ययाति का मानना है कि भाग्य ही सबकुछ करा रहा है। उसे माधवी की मौन चीत्कार नहीं सुनाई देती, जबकि माधवी अपने पिता को दानी के रूप में प्रतिष्ठित करती हुई भयानक परिवेश में फँस जाती है और प्रेमी के लिए गुरु दक्षिणा जुटाती हुई निराश्रय और अकेलेपन का संत्रास भोगती है। गालव, जो गुरु दक्षिणा के लिए हठ करता है, वह ययाति की दानवीरता की प्रशंसा कर उसे अभिभूत कर देता है और आवेश में ययाति उसे अश्वमेधी घोड़ों की बजाए माधवी का दान दे देता है। गालव के लिए भी माधवी एक वस्तु मात्र है, जिससे वह गुरु दक्षिणा का दायित्व पूरा करता है। "मातृत्व के स्वाभाविक अधिकार वात्सल्य से वंचित होने पर जब कभी माधवी अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक होने लगती तभी वह बड़ी निपुणता और अपने कथित प्रेम के प्रदर्शन से माधवी को भावात्मक रूप से पीड़ा देता।" गालव को गुरु दक्षिणा के गुरु भार से मुक्त कर जब माधवी उसके साथ एकांत जीवन का स्वप्न देखती है, तब गालव उसे स्वीकार नहीं करता। ऐसे में माधवी को एहसास होता है कि जिसे अपना भाग्य माना, जिसके लिए क्रूर नरक की अग्नि में जली, जिसके लिए चार–चार प्रसव वेदनाएँ सहकर भी मातृत्व–सुख से वंचित रही, जिसकी प्रतिज्ञा–पूर्ति का साधन बनी, वही गालव माधवी की ढलती देह और यौवन के आकर्षण के समाप्त होने पर अस्वीकार कर रहा है। माधवी चाहती तो केवल अनुष्ठान मात्र से अपने लुप्त यौवन और रूप–वैभव को प्राप्त कर सकती थी, लेकिन जिस प्रेमी के लिए उसने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है, उससे अपना वास्तविक रूप छिपाना उसे स्वीकार नहीं, जबकि गालव पुनः उसी यौवन का आग्रह करता है। फिर मर्यादा के ढोंग से माधवी को छलने का प्रपंच करता है और कहता है– "जो स्त्री अपने गुरु के आश्रम में रह चुकी हो, उसे मैं अपनी पत्नी नहीं मानता।" यहाँ माधवी अपने प्रेमी के वास्तविक रूप को पहचानती है और पुरुष वर्ग द्वारा छले जाने के एहसास को अपने भीतर जगाती है और गालव से कहती है–"दिल में तुम्हारे वासनाएँ कुलबुलाने लगी हैं, ऊपर से तुम आदर्शों और मर्यादाओं की बाते करते हो। कभी कभी मुझे लगता है, मैं कोई दुःस्वप्न देख रही हूँ और मेरे चारों ओर राक्षस और दानव घूम रहे हैं, कर्त्तव्यपरायण दानव सभी कर्त्तव्य के पक्के, सभी महामानव। तुमने मेरे जीवन की आहुति देकर अपनी गुरु दक्षिणा जुटाई है।"

संवेदना के इसी त्रासद क्षणों में उसे बोध होता है कि वह पुरुष समाज द्वारा छली गई है।

माधवी के माध्यम से भीष्म साहनी ने नारी स्वातंत्र्य के सवाल को उठाया है। 'माधवी' नाटक की प्रमुख नायिका है। इस नाटक का मूल आधार है– महाभारत का उद्योग पर्व,

जहाँ माधवी को दायित्व का निर्वाह करने वाली कर्तव्यपरायण, त्यागी, सेवाभाव रखने वाली नारी के रूप में दिखाया गया है, जिसकी न कोई आकांक्षा है, न अधिकार है, जो केवल समर्पण करती है, कोई उपलब्धि नहीं चाहती। पौराणिक कथा में जब उसका पिता ययाति उसे दान में दे देता है, तब वह उसका विरोध नहीं करती, बल्कि चुपचाप गालव के साथ चल देती है। जहाँ गालव ले जाता है, बिना किसी प्रतिरोध के वहाँ चल देती है। किंतु 'माधवी' नाटक में वह पुरुष के शोषण का शिकार तो होती है, लेकिन यहाँ शोषण का विरोध भी करती है। पिता के द्वारा दान में दिए जाने पर वह कोई विशेष प्रतिरोध नहीं कर पाती, लेकिन उसको इस बात का दुख अवश्य होता है कि अगर उसकी माँ होतीं, तो वह कभी भी ऐसा नहीं करतीं। गालव उसे विभिन्न राजाओं के रनिवास में ले जाता है। वह गालव से प्रेम करने लगती है, इसलिए उसे गुरु दक्षिणा में उत्तीर्ण देखना चाहती है। यहाँ तक कि इसके लिए वह गालव के गुरु विश्वामित्र के यहाँ भी जाती है। लेकिन जब मातृत्व के अधिकार से वंचित हो जाती है, तब वह अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक हो जाती है और गालव से कहती है– ''तुमने मुझे किस आग में झोंक दिया।'' यहीं से उसका प्रतिरोध प्रारम्भ होता है, जो नाटक के अंत में लिए गए उसके निर्णय का मार्ग प्रशस्त करता है। जिस गालव को माधवी ने अपना सर्वस्व देकर उत्तीर्ण देखना चाहा, वही माधवी की ढलती देह और यौवन के आकर्षण के समाप्त होने पर जब उसे अस्वीकार कर देता है तब उसका स्वाभिमान जागता है और वह पुरुष समाज पर कटाक्ष करती हुई अपना रास्ता स्वयं चुनती है, गालव के रूप में पूरे पुरुष समाज को ठेंगा दिखाते हुए। वह स्वयंवर में तपस्या करने का निर्णय लेकर गालव के आह्वान को ठुकरा देती है।

बोध प्रश्न–1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्प चुनिएः

(क) माधवी नाटक के रचनाकार कौन है–

(क) जयशंकर प्रसाद (ख) भीष्म साहनी

(ग) मोहन राकेश (घ) जगदीश चंद्र माथुर

(ख) माधवी नाटक की मूल कथा किस ग्रंथ से ली गई है–

(क) रामचरित मानस (ख) महाभारत

(ग) उपनिषद (घ) पुराण

(ग) यह नाटक किस दशक में लिखा गया है–

(क) आठवें दशक (ख) नौवें दशक

(ग) दशवें दशक (घ) बारहवें दशक

(घ) माधवी नाटक में कितने अंक मिलते हैं–

(क) दो अंक (ख) तीन अंक

(ग) चार अंक (घ) पांच अंक

(ङ) विश्वामित्र ने गुरु दक्षिणा के रूप में क्या मांगा है–

(क) 800 अश्वमेधी घोड़े (ख) 800 हाथी

(ग) धनुष (घ) अयोध्या राज्य

(च) माधवी के पिता का क्या नाम है

(क) ययाति (ख) गालव

(ग) गरुण (घ) विश्वामित्र

9.5 'माधवी' का शिल्प

नाटक की अपनी विशिष्ट रचना पद्धति होती है जिसके माध्यम से नाटककार अपने विचार बिंदुओं को कलात्मकता से एक सूत्र में पिरोता है। कथावस्तु, चरित्र चित्रण, भाषा और शैली, संवाद, रंगमंचीयता, देशकाल और वातावरण आदि पर नाटक की नींव खड़ी होती इसे ही नाट्य शिल्प कहा जाता है। भारतीय आचार्यों ने इसे नाटक के तत्व कहा है। नाटक के ये सारे तत्व एक–दूसरे से जुड़े हुए और एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। कथानक नाटक का घटनाक्रम होता है। इस घटनाक्रम में चरित्र की विशेषताएँ जुड़ जाती हैं। कथानक में घटित होने वाली सारी घटनाओं का मुख्य भाग चरित्र होता है। चरित्र अपने क्रिया–व्यापार और संवादों के माध्यम से नाटककार की अनुभूतियों को दर्शकों के सम्मुख रखता है। इसलिए नाटककार केवल चरित्र–निर्माण ही नहीं करता बल्कि उसे जीवंत बनाता है और मंच पर प्रस्तुत करता है। चरित्र जब सक्रिय होता है तब वह संवादों की स्थिति में आ जाता है और भावों और विचारों को स्वर देता है। जिसके कारण नाटक में नाटकीयता, कौतूहल आदि की निर्मित होती है और नाटक कला का रूप धारण करता है। कलात्मकता के संदर्भ में भाषा और शैली का अपना महत्व होता है। भावों को अभिव्यक्त करने का माध्यम भाषा होती है। नाटक को छोड़कर अन्य सभी साहित्यिक विधाएँ केवल पढ़ने के लिए लिखी जाती हैं। इसलिए उन्हें सीधी सरल वाचन शैली में लिखा जाता है। किंतु नाटक एक दृश्य काव्य है, जिसका मंचन दर्शकों के लिए होता है इसलिए नाटक की भाषा कुछ विशेष होती है। भीष्म साहनी के नाटकों में शिल्पगत नए प्रयोगों की विशिष्टता दिखाई देती है, जिसकी वजह से उन्हें प्रयोगधर्मी नाटककार कहा जाता है। इस इकाई में आपको माधवी नाटक की शिल्प योजना का ज्ञान कराया जा रहा है।

9.5.1 वस्तु–विन्यास प्रयोग

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटककारों ने कथावस्तु और कथ्य में नए प्रयोग किए हैं। खासतौर पर वस्तुविन्यास को मानव जीवन के यथार्थ से जोड़ा गया है। वर्तमान जीवन की झाँकी इस वस्तुविन्यास में प्रचुर मात्रा में दिखाई देती है, भले ही नाटक का कथानक ऐतिहासिक, पौराणिक या प्राचीन कथाएँ क्यों न हों? माधवी नाटक पौराणिक कथा पर आधारित आधुनिक जीवन की त्रासदी है जिसमें मुख्य रूप से पाँच प्रसंगों में वस्तु विन्यास किया गया है।

1. **गुरु दक्षिणा**

   पुराण कथाओं में गुरु दक्षिणा संबंधी कथा विशेष प्रसिद्ध है। प्रस्तुत नाटक में गुरु दक्षिणा प्रसंग को महत्व दिया गया है। गालव विश्वामित्र के शिष्य हैं। गुरु दक्षिणा के रूप में उन्होंने 800 अश्वमेधी घोड़ों की माँग की है लेकिन इतनी बड़ी गुरु दक्षिणा के कारण गालव आत्महत्या करने की सोचता है और संयोग से महाराज ययाति के पास पहुँचता है। ययाति अपनी इकलौती बेटी माधवी को गुरु दक्षिणा जुटाने के माध्यम के रूप में दे देते हैं।

2. **माधवी को प्राप्त वरदान**

   माधवी को चिर युवा रहने और चक्रवर्ती पुत्रों की माँ बनने का वरदान प्राप्त है जिसके माध्यम से गालव माधवी को भुनाकर अपनी गुरु दक्षिणा एकत्रित करने का प्रयास करता है। माधवी गालव पर अनुरक्त होने के कारण अपने इन वरदानों का प्रयोग गालव के लिए गुरु दक्षिणा इकट्ठा करने के लिए सहर्ष करती है।

3. गुरु दक्षिणा की पूर्ति

गालव के लिए माधवी, प्राप्त वरदान के आधार पर अयोध्या के राजा हर्यश्च, काशी के दिवोदास और भोजनगर के वृद्ध राजा उशीनर के अंतःपुर में रहकर चक्रवर्ती पुत्रों के बदले में दो–दो सौ करके छः सौ अश्वमेधी घोड़ों को एकत्र करती है। पुत्रों के जन्म के बाद अनुष्ठान के माध्यम से नवयौवन को प्राप्त होती रहती है।

4. शेष गुरु दक्षिणा के लिए विश्वामित्र के आश्रम में माधवी का पहुँचना

यह प्रसंग माधवी के त्याग, समर्पण और पीड़ा का चरमोत्कर्ष है। जब वह अपने प्रेमी के प्रण को पूरा करने के निमित्त, शेष बचे दो सौ अश्वमेधी घोड़ों को पाने के लिए गालव के गुरु, जिनको गुरु दक्षिणा लेनी है, उन्हीं के पास पहुँच जाती है, वो भी बिना गालव को बताए। विश्वामित्र भी माधवी के इस निर्णय पर अचम्भित होते हैं और कहते हैं कि "मैं गुरु दक्षिणा के द्वारा गालव का दम्भ तोड़ना चाहता था, तुमने मेरा दम्भ तोड़ दिया।" अंततः माधवी को अपनी कुटिया रूपी अंतःपुर में रख लेते हैं और गुरु दक्षिणा पूर्ण होती है।

5. दीक्षांत समारोह और माधवी का स्वयंवर

नाटक के अंत में यह दर्शाया गया है कि ययाति के आश्रम में धूमधाम से गालव के दीक्षांत समारोह और माधवी के स्वयंवर समारोह का आयोजन है। यहाँ पर माधवी और गाालव की कुछ देर के लिए मुलाकात होती है। गालव उत्सुक है माधवी से मुलाकात करके विवाह करने के लिए। माधवी भी उसे वर के रूप में चुनने के लिए तैयार है लेकिन बिना अनुष्ठान किए अपने वास्तविक रूप में ही, जबकि गालव उससे अनुष्ठान करके पुनः युवा और आकर्षक बन जाने का अनुरोध करता है। माधवी इसके लिए तैयार नहीं होती और गालव उससे किनारा पाने का उपाय सोच लेता है। माधवी भी उसकी मंशा समझकर उसे मुक्त कर देती है। इस तरह एक त्रासदी के साथ नाटक का अंत हो जाता है।

इस प्रकार, माधवी की मिथकीय कथा को नाटक में परिवर्तित करके भीष्म साहनी ने एक तार्किक समकालीन दृष्टि से इस कथा का मूल्यांकन तो किया ही, साथ ही, माधवी जैसा एक चरित्र भी गढ़ा। महाभारत की मूल कथा तीन पुरुष पात्रों –ययाति, गालव और विश्वामित्र की भूमिका तक केंद्रित है। भीष्म साहनी ने कथा को तो यहाँ से लिया परंतु नाटक के केंद्र में माधवी आ गई। नाटक के रूप में यह माधवी की कथा बनकर पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की अवहेलना और शोषण की कहानी बन गई। महाभारत की कथा की माधवी में प्रतिरोध का कोई स्वर नहीं था और न ही माधवी के प्रति कोई सहानुभूति का भाव था। भीष्म साहनी ने इसे बदल दिया। माधवी के भीतर प्रतिरोध पैदा किया और पाठकों व दर्शकों के मन में संवेदनशील ढंग से स्त्री की स्थिति को रखकर माधवी के प्रति सहानुभूति को जगा दिया। स्त्री के प्रति जड़ पूर्वाग्रहों की कलई को खोलते हुए माधवी कौमार्य के प्रति प्रचलित अवधारणा का विरोध करती है, उपभोग के रूप में स्त्री को आँके जाने का विरोध करती है।

9.5.2 चरित्र योजना

नाटक में पात्र और चरित्र चित्रण का विशेष महत्व है। नाटक के पात्रों का, नाटक की कथा, घटना और परिस्थिति से घनिष्ट और सीधा संबंध होता है। वस्तु–विन्यास और चरित्र योजना का अटूट संबंध नाटक की अंतिम सफलता मानी जाती है। नाटक के पात्रों के घात–प्रतिघात सहायक होकर नाटक के मूल मंतव्य की प्राप्ति करते हैं। नाटक की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसके पात्र सजीव हों, संख्या सीमित हो। एक मुख्य पात्र के साथ अन्य गौण पात्र हों, जो मुख्य पात्र के चरित्रोद्घाटन में

सहायक हों। पात्रों में आंतरिक संघर्ष भी हो जिससे यथार्थ मानव–जीवन के संघर्ष को दर्शाया जा सके।

माधवी नाटक की दो बड़ी खूबियाँ है–उसका अंतर्निहित व्यंग्य और माधवी का ट्रैजिक व्यक्तित्व। ये दो खूबियाँ एक–दूसरे से गुथ गईं हैं। संघर्ष नाटक का प्राण है। आंतरिक और बाह्य संघर्ष आरंभ से लेकर अंत तक विद्यमान है। इस संदर्भ में निम्नलिखित उद्धरण द्रष्टव्य है–''कभी–कभी मुझे लगता है कि मैं कोई दुःस्वप्न देख रही हूँ और मेरे चारों ओर राक्षस घूम रहे हैं, कर्त्तव्य परायण दानव......तीनों राजा मेरे बच्चों को साथ लेकर यहाँ पहुँच गए हैं, जैसे मछली पकड़ने के लिए कांटे में छोटी मछली लगा दी जाती है, मेरे बच्चों को मेरे सामने लाकर प्रलोभन देंगे। सभी कर्त्तव्य के पक्के, सभी महामानव। तुमने मेरे यौवन की आहुति देकर गुरु दक्षिणा जुटाई है।'' भीष्म साहनी ने इस नाटक में आंतरिक संघर्ष, पात्रों की मनोव्यथा और अंतर्दशा को बखूबी रेखांकित किया है। पश्चिमी नाट्य शिल्प के आधार पर संघर्ष को नाटक के केंद्र में रखा है।

'माधवी' नाटक में कथावस्तु गौण और चरित्र प्रधान है। कथावस्तु के धरातल पर पात्रों का चरित्रांकन नाटक को गरिमा प्रदान करता है। भीष्म साहनी ने अपने नाटक में कार्य–व्यापार और यथार्थ जीवन को ध्यान में रखकर पात्रों की सृष्टि की है। उनके पात्र आज के मानव के प्रतिनिधि पात्र हैं। माधवी, ययाति, गालव आदि ऐतिहासिक पात्र हैं लेकिन नाटककार ने आज के संदर्भ में इन ऐतिहासिक पात्रों को देखा है। नाटकों में पात्रों की संख्या सीमित है, इससे नाटक के अभिनय में आसानी होती है। माधवी नाटक में कुल पात्रों की संख्या सोलह है। लेकिन मुख्य पात्र तीन–चार ही हैं। मुख्य पात्र माधवी है जिसके इर्द गिर्द पूरी कथा घूमती है। माधवी के अतिरिक्त इसमें कोई भी स्त्री पात्र नहीं है। गालव, ययाति, विश्वामित्र गौण पात्र हैं। अन्य पात्रों में कथावाचक, राजा हर्यश्च, राजा दिवोदास, तापस, राजज्योतिषी, प्रतर्दन, मंत्री, परिचालक, संचालक आदि हैं। भीष्म साहनी ने इसमें पात्रों के पारंपरिक नामकरण के साथ–साथ विशिष्ट नामों का प्रयोग भी प्रासंगिक रूप में किया है। जैसे– पहले अंक के पहले दृश्य में आश्रमवासी 1, आश्रमवासी 2; अंक तीन के दृश्य दो में परिचारक 1, परिचारक 2; अंक तीन के दृश्य तीन में आश्रमवासी 1, आश्रमवासी 2 दूसरे अंक के चौथे दृश्य में पात्रों के नामकरण में एक आदमी, दूसरा आदमी –इन विशिष्ट नामों का प्रयोग किया है। अपनी छोटी भूमिकाओं और गौण परिस्थितियों के बावजूद ये पात्र अपने वर्ग की मानसिकता का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं साथ ही मूल कथा और प्रमुख चरित्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

इस तरह आप देख सकते हैं कि इस नाटक में चरित्र योजना का सफल निर्वाह किया गया है। पात्रों की सहजता, स्वाभाविकता तथा विश्वसनीयता नाटक को आकर्षक तथा प्रभावी बनाने में पूर्णतया सफल है, जो भीष्म साहनी के नाट्य शिल्प की कुशलता का प्रमाण है।

9.5.3 संवाद योजना

संवाद नाटक का वह तत्व है जो नाटक को साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करता है। नाटक का विकास, चरित्र–चित्रण, उद्देश्य, देशकाल और वातावरण का निर्माण संवादों से ही होता है, इसलिए संवाद को नाटकों का प्राण कहा जाता हैं नाटक के उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरल, संयत, सजीव, सुबोध, प्रभावोत्पादक एवं कलात्मक संवादों की नितांत आवश्यकता होती है ताकि पात्रों के भावों की अभिव्यक्ति हो सके। संवादों को हमेशा पात्रों की योग्यता और देशकाल–वातावरण के अनुकूल होना चाहिए। संक्षिप्तता, विषयानुकूलता, संप्रेषणीयता, प्रवाहमयता, स्वाभाविकता आदि संवाद–योजना के आवश्यक गुण हैं। लम्बे–लम्बे संवाद नाटक को नीरस और ऊबाऊ बना देते हैं।

'माधवी' नाटक में संवाद योजना नाट्यानुकूल और मार्मिक है। एकालाप, संलाप, आकाशवाणी आदि शिल्पगत प्रयोग के माध्यम से साहनी जी ने नाटक में प्राण भर दिए हैं। पहले अंक के दूसरे दृश्य में गालव का **एकालाप** उसके अंतर्द्वंद्व को व्यक्त करने में सफल है। उदाहरण देखिए–**''चक्रवर्ती! चक्रवर्ती राजा को जन्म देगी! जिसे जन्म देगी वो चक्रवर्ती राजा बनेगा, ऐसा ही कहा महाराज ने! क्या माधवी के गर्भ से पैदा होने वाला गालव का पुत्र भी चक्रवर्ती राजा हो सकता है? चक्रवर्ती गालव! मेरे सामने संभावनाओं के कैसे प्रसार खुलने लगे हैं। माधवी को पाने का अर्थ है, चक्रवर्ती राजा तक बन जाने की संभावना!''** यह एक लंबा एकालाप है, जो गालव के मन में चलने वाले अंतर्द्वंद्व को बखूबी व्यक्त करता है। पूरे नाटक में छोटे–छोटे संवादों के माध्यम से भीष्म साहनी ने कथा प्रवाह को गति दी है। एक उदाहरण देखिए :

माधवी– क्या देख रहे हो, गालव?

गालव– तुम कितनी सुंदर हो! तुम्हें पाकर कोई भी राजा धन्य होगा।

माधवी– क्या कह रहे हो, गालव?

गालव– तुम क्या चाहती हो माधवी?

इस संवाद से माधवी और गालव के बीच प्रेम भाव पैदा होने की सूचना मिल रही है।

दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में माधवी और गालव का संवाद से माधवी के भीतर पैदा होने वाले प्रतिरोधी भाव के संकेत मिलने लगते है :

गालव– मैं जानता हूँ, तुम्हारे लिए यह दायित्व निभाना आसान नहीं हो पा रहा है पर, ये दिन बीत जाएँगे, माधवी। मैं तुम्हें सुखी देखना चाहता हूँ।

माधवी– मुझे सुखी देखना चाहते हो? (मुस्कुराती है) मेरे पिता भी मुझे सुखी देखना चाहते थे। अयोध्या– नरेश भी मुझे सुखी देखना चाहते हैं।''

तृतीय अंक के तृतीय दृश्य के संवाद माधवी के प्रतिरोध एवं निर्णय को व्यक्त करते हैं–

गालव– नहीं, माधवी,मैं तुमसे अनुनय करता हूँ। तुम फिर से......

माधवी– तुम भावुक हो रहे हो मुनिकुमार। तुमने अपना कर्त्तव्य पूरा किया, अब मुझे मेरा मेरा कर्त्तव्य पूरा करने दो। (स्नेह से) संसार बड़ा विशाल है, गालव, उसमें निश्चय ही मेरे लिए कोई स्थान होगा।

भीष्म साहनी संवादों के द्वारा पात्रों की मनःस्थिति को व्यक्त करने में कुशल हैं। माधवी अपने पिता ययाति, प्रेमी गालव और चक्रवर्ती पुत्रों के अभिलाषी राजाओं के हाथ की कठपुतली बन चुकी है। वह अपने प्रेम के खातिर अपना सर्वस्व समर्पण कर रही है किंतु उसका मन द्वंद्वात्मक स्थिति में रहता है, जो समय–समय पर संवादों में व्यक्त होता है। वह गालव से कहती है–'' **यह क्या हो रहा है गालव? तुम मुझे कहाँ ले आए हो? मेरे साथ किस जन्म का वैर चुकाने आए हो? मैंने कौन–सा ऐसा पाप किया था, जिसका यह फल मुझे मिल रहा है?''**

सीधे सादे शब्दों में किए गए संवाद पाठकों और दर्शकों पर अपना प्रभाव डालने में पूरी तरह से सफल हैं ।

खण्डित संवाद या वाक्यांशों के द्वारा नाटक में विशेष प्रकार की भावाभिव्यक्ति होती है। माधवी नाटक में भी इस तरह के संवाद मौजूद हैं। अंक दो का दृश्य तीन खण्डित संवाद के लिहाज से विशेष है। जब माधवी काशी नरेश दिवोदास के दरबार में है। पूरे दृश्य में दिवोदास माधवी को लक्ष्य करके बात करता है और हर बार माधवी मौन है। पूरे दृश्य में केवल एक छोटा सा वाक्य बोलती है–जब उससे दिवोदास पूछता है कि

''तुम ययाति की पुत्री हो?'' तब माधवी कहती है– ''हाँ महाराज''। इसके बाद के हर प्रश्न का उत्तर मौन है। माधवी का यह मौन उसके मन की पीड़ा को व्यक्त करता है।

कुछ संवाद ऐसे भी होते हैं जिसमें शब्दों के माध्यम से नहीं आंगिक चेष्टाओं के माध्यम से भावों को व्यक्त किया जाता है। इन्हें **वाच्येतर संवाद** कहा जाता है। इसमें नाटककार रंग निर्देश के द्वारा पात्रों को दिशा प्रदान करता है जिससे पात्र उसी तरह के हाव–भाव का अभिनय करते हैं। ऐसे प्रसंगों में अभिनेता वाणी का प्रयोग नहीं करता फिर भी श्रोता या दर्शक उसके मन की सारी बातों या भावनाओं को समझ लेता है। क्रोध, करुणा, प्रेम, ममता आदि भावों की अभिव्यक्ति में ऐसे संवाद बहुत उपयोगी होते हैं। इन प्रसंगों की गहराई इतनी अधिक होती है कि उसका बोध कराने के लिए आंगिक चेष्टा या भाव–भंगिमा के अतिरिक्त कोई सशक्त माध्यम नहीं है। पहले पुत्र के जन्म के बाद माधवी के भीतर जिस ममत्व भाव का जन्म होता है उसे भीष्म साहनी ने वाच्येतर संवाद से इस प्रकार व्यक्त किया है–**(माधवी देर तक आँखों से ओझल होते बच्चे को देखती रहती है)**

(एक पत्थर पर बैठती है और दोनों हाथों से मुँह ढाँप लेती है)

नाटक के अंतिम दृश्य में गालव के प्रति क्रोध भाव के लिए रंग संकेत देखिए–**(धीरे–धीरे माधवी की उत्तेजना शांत होने लगती है और वह एकटक गालव की ओर देखने लगती है। आँखों में क्रोध के स्थान पर फिर से स्नेह झलकने लगता है। माधवी आगे बढ़ जाती है।)**

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि संवाद योजना के विविध रूपों का प्रयोग माधवी नाटक में हुआ है।

9.5.4 देशकाल और वातावरण

देशकाल से तात्पर्य नाटक में वर्णित रीति–रिवाज, परिस्थिति, रहन–सहन, स्थान आदि के वर्णन से है। नाटक के कथानक और उसके पात्रों का संबंध देशकाल और जीवन की वैविध्यपूर्ण परिस्थिति से होता है। देशकाल चित्रण के अभाव में नाट्य कृति दोषपूर्ण और अविश्वसनीय लगेगी । नाटक की कथावस्तु से संबंधित राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक वातावरण के निर्माण एवं उसी के अनुकूल भाव–भाषा, आचार–विचार, रीति–नीति को उसी के अनुरूप ढालने में जो नाटककार सफल होता है, वही श्रेष्ठ नाटक की सर्जना कर सकता है। विशेष रूप से सामाजिक और ऐतिहासिक–पौराणिक नाटकों में देशकाल और वातावरण की योजना का ध्यान रखना बहुत आवश्यक होता है। माधवी एक पौराणिक कथा पर आधारित नाटक है। अतः इसमें एक प्राचीन सांस्कृतिक परिवेश के अनूकूल दृश्य योजना और क्रियाकलापों की योजना है। गुरु दक्षिणा, स्वयंवर समारोह, दीक्षांत समारोह, आश्रम, राजाओं के दरबार, अंतःपुर, वितस्ता नदी, अश्वमेधी घोड़े, वरदान, आकाशवाणी, राजज्योतिषी, विदूषक कथावाचक आदि की योजना के द्वारा भीष्म साहनी ने 'माधवी' के सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण किया है।

9.5.5 भाषा

नाटक की भाषा जितनी स्वाभाविक एवं सुगठित होगी, नाटक का भाव पक्ष उतना ही सजीव होगा। भाषा दर्शक और रंगमंच से सीधा संपर्क रखती है। भाषा संवाद का अनिवार्य माध्यम है। नाटक में अभिव्यक्ति के समस्त संभाव्य उपकरणों को भाषा के माध्यम से सजीव किया जाता है। साधारणतया नाटक की भाषा के दो प्रमुख रूप होते हैं–पहला–हमारे दैनिक जीवन की ध्वन्यात्मक भाषा और दूसरा अंगाश्रित शरीर की भाषा। इसके अलावा दृश्य परिकल्पना, दृश्य विभाजन, ध्वनि, प्रकाश, संगीत, अंग–संचालन आदि का पर्याप्त निर्देश नाटक में आवश्यक होता है। इन इकाइयों को

मंचीय भाषा कहते हैं। ध्वन्याश्रित शाब्दिक भाषा, अंगाश्रित शरीर भाषा तथा उपकरणों पर आश्रित मंचीय भाषा मिलकर नाट्यभाषा बनती है। नाटक में ऐसी भाषा का प्रयोग होना चाहिए, जिससे पात्रों के मनोगत भाव सरलता से व्यक्त हो सकें। अनावश्यक, जटिल और संदिग्ध वाक्य नाटक में नहीं होने चाहिए।

'माधवी' की भाषा बिलकुल स्पष्ट और सर्वजन ग्राह्य है। बोलचाल की साधारण भाषा में सुंदर भावाभिव्यक्ति इस नाटक की खास विशेषता है। पौराणिक परिवेश के अनुकूल भाषा संस्कृतनिष्ठ है। विश्वामित्र, ययाति, गालव व अन्य राजा–सभी की भाषा में स्वाभविकता, लय और गत्यात्मकता है। माधवी की भाषा में कोमलता और सरसता है। उसमें जीवंतता है। बिम्ब, प्रतीक और अलंकरण की बनावट नहीं है। रोचक और स्वाभाविक भाषा होने के कारण नाटक में कौतूहल बना रहता है।

9.5.6 शैली

संरचना की दृष्टि से 'माधवी' में तीन अंक हैं जो क्रमशः तीन, चार और तीन दृश्यों में विभाजित किए गए हैं। सूत्रधार की तरह कथावाचक का प्रयोग इसकी विशेषता है जो पौराणिक परिवेश के अनुकूल है। इसके माध्यम से भीष्म साहनी ने **कथावाचन शैली** का प्रयोग किया है। यह शैली दर्शकों पर सीधे अपना प्रभाव डालती है। कथावाचक के माध्यम से कथानक का परिचय, कथा–सूत्रों को जोड़ना, प्रतिक्रिया, टिप्पणी, व्याख्या, व्यंग्य, बातचीत सब कुछ अभिव्यक्त किया गया है। हम देख सकते हैं कि कथावाचक का सुर धीरे–धीरे व्यंग्यात्मक होता चला गया है। किंतु कहीं–कहीं कथावाचन का विस्तार रंगमंच की दृष्टि से उबाऊ सा भी हो जाता है।

नाटककार पात्र विशेष में जिस प्रकार की भाषा का आरोपण करता है, वही उसकी शैली कहलाती है। माधवी में निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग देखा जा सकता है :

1. **यथार्थवादी शैली**

   माधवी महाभारत के कथानक पर आधारित यथार्थवादी शैली में लिखा गया नाटक है जिसमें जीवन की स्थितियाँ अपने पारदर्शी रूप में जीती–जागती सामान्य भाषा में अभिव्यक्त हैं। लेखक ने तटस्थ भाव से घटनाक्रम का वर्णन किया है। अपनी तरफ से न तो उन्होंने कोई टिप्पणी की है और न ही सहानुभूति जताते हैं।

2. **व्यंग्यात्मक शैली**

   भीष्म साहनी ने पात्रों की मनःस्थिति के अनुसार व्यंग्यात्मक शैली को भी अपनाया है। उदाहरण के रूप में इस कथन को देखा जा सकता है–''तुम सदा कर्त्तव्य की बात करते हो, गालव! तुम यही कहना चाहते हो कि मैं कर्त्तव्यपरायण नहीं हूँ। एक कर्त्तव्य मेरे पिता का, एक कर्त्तव्य मुनि कुमार गालव का; दोनों के कर्त्तव्य मेरे माध्यम से पूरे हो रहे हैं। फिर भी मैं दुर्बल हूँ। कर्त्तव्यपरायण वही हैं। पिता ने मुझे सौंपकर अपना कर्त्तव्य निभा दिया और मुनि कुमार ने घोड़े बटोरकर अपना कर्त्तव्य पूरा किया। एक दानवीर बन गया दूसरा आदर्श शिष्य। और माधवी? मोह की मारी कर्त्तव्य से गिर गई। वह किसी बड़े काम का दायित्व वहन नहीं कर सकती। यही ना?''

3. **प्रश्नात्मक शैली**

   पात्रों के क्रिया–व्यापार और अतर्द्वंद्व को व्यक्त करने के लिए **प्रश्नात्मक शैली** का भी प्रयोग किया गया है। उदाहरण देखिए–**''क्यों? क्या मैं नाचूँ? गाऊँ? अपने भाग्य पर इठलाऊँ?''**

   ''कौन सी मर्यादाएँ गालव? तुम किस मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हो?''

4. **भावपूर्ण शैली :**

नाटक के आरंभ में गालव को दान में देकर जब माधवी के भाग्य का निर्णय हो जाता है और ययाति से वह अंतिम विदाई लेती है तथा नाटक के अंत में जब गालव माधवी को अपनाने से बचने के लिए बहाने बनाता है और माधवी अपने मार्ग का निर्णय कर लेती है और गालव से अंतिम विदाई लेती है, तब उन संवादों में भावपूर्ण शैली के दर्शन होते हैं।

5. **वर्णनात्मक शैली**

कथावाचक की उद्‌घोषणाओं में वर्णनात्मक शैली को देखा जा सकता है जिसके द्वारा भीष्म साहनी ने कथाओं का वर्णन किया है। वह सूत्रधार बनकर पाठकों के सामने घटनाएँ वर्णित कर देता है।

9.6 रंगमंच और अभिनेयता की दृष्टि से 'माधवी'

नाटक एक दृश्यकाव्य विधा है। अतः नाटक की पूर्णता रंगमंच पर उसकी प्रस्तुति की सफलता—असफलता से है। यों तो प्रत्येक साहित्यकार अपने समय समाज की समस्याओं व विसंगतियों को लेकर संवेदनशील रहता है लेकिन अन्य विधाओं की तुलना में नाटककार को विशेषकर ऐसे प्रश्नों से जूझना पड़ता है जिसका सम्बन्ध कम से कम समाज के किसी समूह से हो क्योंकि नाटक दर्शकों के लिए होता है। इसलिए नाटककार को जीवन जगत और अपने परिवेश की उन्हीं स्थितियों को नाटक में स्वीकार करना पड़ता है जो अधिक से अधिक दर्शक को अपनी अनुभूति लगे। इस दृष्टि से 'माधवी' पूर्णतया सफल है। इसमें नारी की सामाजिक स्थिति के प्रश्न को उठाया गया है, जो आम दर्शकों की अनुभूति के निकट की चीज है।

महाभारत की कथा से सम्बद्ध होने के कारण उस युग का सजीव चित्र प्रस्तुत करना भी आवश्यक था। नाटक के सभी दृश्य इस कार्य को भी सफलता पूर्वक सम्पन्न करते हैं। रंगमंच पर प्रस्तुति के लिए दृश्य योजना ऐसी होनी चाहिए जिनका मंचन हो सके। संभवतः इसीलिए मूल कथा में आए गरुड़ के प्रसंग को भीष्म साहनी ने हटा दिया है। यदि हर जगह गालव के साथ गरुड़ को दिखाया जाता, जैसा कि मूल कथा में है, तो रंगमंच पर उसे प्रस्तुत करना संभव न हो पाता। पात्रों के संवाद स्त्री पुरुष की सामाजिक स्थिति को बखूबी प्रस्तुत करते हैं कुछ घटनाएँ— जैसे माधवी को यश का निमित्त बनाकर दान देना, गालव का माधवी से प्रेम—भाव होने के बावजूद अपने हठ की पूर्ति के लिए तीन—तीन राजाओं के रनिवास में भेजना, पहली बार माँ बनने पर माधवी का हृदय—परिवर्तन आदि जहाँ स्त्री—पुरुष की सामान्य स्थिति को व्यक्त करते है वहीं राजाओं का दरबार, आश्रम, विश्वामित्र का घुड़साल, ययाति के आश्रम का भव्य समारोह तत्कालीन परिवेश को सरकार करता है।

नाटक के केन्द्र में है— माधवी। नाटक के सभी दृश्य माधवी से सम्बन्धित हैं। नाटक में आदि से अन्त तक सुसम्बद्धता है। जो कुछ भी घटित होता है उसमें कार्य—कारण सम्बन्ध है। नाटक निश्चित रूप से लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है। घटनाक्रम में कोई घुमाव, कोई पेचीदगी नहीं है। अतः दर्शक का ध्यान एक ही विषय पर केन्द्रित रहता है— कहीं कोई उपकथानक या प्रासंगिक कथा नहीं है।

किन्तु नाटक की गति में शिथिलता है। घटनाक्रम धीरे—धीरे घटित होते हैं अधिकांश घटनाओं या चरित्र की जानकारी कथावाचक के लम्बे वक्तव्य से मिलती है। कथावाचक का लम्बा वक्तव्य रंगमंच पर दर्शकों की एकाग्रता में बाधक हो सकता है। दूसरे अंक के तीसरे दृश्य में राजा की विलास प्रियता के दृश्य में एवं प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में ज्योतिषी द्वारा माधवी के अंग प्रत्यंगों का वर्णन दृश्यत्व की दृष्टि से खटकने वाला

भी है एवं स्त्री को भोग विलास की वस्तु समझने की मानसिकता को भी व्यक्त करने वाला है।

वातावरण एवं परिवेश की दृष्टि से देखें तो घटना स्थल हैं– ययाति का आश्रम, वन प्रांत, राजाओं के राजमहल, विश्वामित्र का आश्रम– इन सभी दृश्यों को दो, तीन सेटों के माध्यम से दिखाया जा सकता है। रंगमंचीकरण में कोई समस्या नहीं आती। साहित्य की अन्य विधाओं से अलग नाटक में वेशभूषा, प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि–संयोजन, संवाद योजना के व्यवस्थित संयोजन के साथ ही देशकाल व वातावरण का स्पष्ट उल्लेख होना भी अनिवार्य होता है, जो कि इस नाटक में यथास्थान लिखित है। कथ्य को दृश्यत्व तक ले जाने के लिए कथावाचक का प्रयोग, आकाशवाणी, कोरस–आदि रंगमंचीय युक्तियों एवं परम्पराओं का भी इसमें प्रयोग दिखाई देता है। दृश्य कल्पना, दृश्य परिवर्तन व दृश्य विभाजन, पात्र–योजना, संवाद–योजना, वेशभूषा, प्रकाश–व्यवस्था, ध्वनि–संयोजन आदि के पर्याप्त संकेत यथास्थान दिए गए हैं।

बावजूद इसके इस नाट्य कृति में नाटककार की जगह कथाकार भीष्म साहनी का योगदान अधिक है। नाटक की कथावस्तु रोचक है किंतु नाटकीय कार्य–व्यापार के स्थान पर कथात्मकता ही अधिक है, जो प्रायः कमोबेश इनके सभी नाटकों में मिलती है। भीष्म साहनी इस आरोप को स्वीकारते भी हैं। वे कहते हैं कि –''मैं नहीं समझता कि नाटक में कहानी का रंग कहाँ तक आता है। संभव है कि वर्षों तक कहानियाँ लिखते रहने के कारण आता हो, परन्तु उसका आभास मुझे नहीं।'' अतः वे नाटक के निर्देशक से अपेक्षा रखते हैं कि यदि नाट्य लेख में कमजोरी हो, कुछ रंग संभावनाएँ उन्हें दिखाई दे तो वे मंचोपयोगी बनाने में सहायता करें। भीष्म साहनी के नाटकों को निर्देशकों की सहायता मिली भी, जिससे उनके नाटकों में गुणात्मक परिवर्तन आया। 'माधवी' नाटक का मंचन पहली बार 'प्रयोग' नाट्य संस्था ने प्रगति मैदान के 'मंजर' मंच पर एम. के. रैना के निर्देशन में किया गया, जिसमें दीपा साही ने 'माधवी' का भूमिका का निर्वाह किया था।

दृश्यकाव्य होने के कारण नाटक में काव्यत्व व दृश्यत्व का संतुलन निभा पाने में जो नाटककार चर्चित हुए– उनमें जगदीशचंद्र माथुर, लक्ष्मीनारायण लाल, गिरिराज किशोर, शंकर शेष, सुरेन्द्र वर्मा, मणि मधुकर, नरेन्द्र कोहली, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लक्ष्मीकान्त वर्मा के नाम प्रमुख है। भीष्म साहनी का नाम इन्हीं नामों की अगली श्रृंखला में आता है।

बोध प्रश्न–2

2. निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–
    1. भीष्म साहनी का पौराणिक ज्ञान पर आधारित नाटक .... है।
    2. 'माधवी' .... शैली में लिखा गया नाटक है।
    3. इस नाटक में कुल .... पात्र हैं।
    4. माधवी को गालव सर्वप्रथम .... राजा के पास ले गया था।
3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही अथवा गलत के रूप में चुनिए–
    1. भीष्म साहनी ने इस नाटक के माध्यम से पितृसत्ता व्यवस्था में स्त्री के शोषण को उजागर किया है। (सही / गलत)
    2. महाभारत की मूल कथा और माधवी नाटक की कथा में कोई परिवर्तन नहीं मिलता है। (सही / गलत)

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

3. माधवी की कथा का वर्णन महाभारत के उद्योग पर्व के 106वें अध्याय से 123 वें अध्ययन तक मिलता है। (सही / गलत)

4. गालव ने अपने गुरु विश्वामित्र को 600 घोड़े गुरु दक्षिणा के रूप में दिए। (सही / गलत)

5. नाटक के अंत में माधवी गालव को पति के रूप में स्वीकार करती है। (सही / गलत)

6. जगदीश चंद्र माथुर, लक्ष्मी नारायण लाल आदि ने भी पौराणिक कथा पर आधारित नाटकों की रचना की है। (सही / गलत)

4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 6–6 पंक्तियों में दीजिए:

1. 'माधवी' नाटक की भाषा की विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

....

2. 'माधवी' नाटक के देशकाल की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

9.7 सारांश

हिंदी नाटकों की परंपरा में पौराणिक आख्यानों के आधार पर अनेक सशक्त नाटक लिखे गए। जिनमें जगदीशचंद्र माथुर, शंकर शेष, सुरेंद्र वर्मा, मोहन राकेश, लक्ष्मी नारायण लाल, रमेश बख्शी, गिरिराज किशोर के नाम प्रमुख हैं। इन नाटककारों ने समकालीन संवेदना को विश्वसनीयता और प्रामाणिकता का आधार देने के लिए पौराणिक आख्यानों का सहारा लिया। इसी परंपरा में भीष्म साहनी द्वारा लिखा गया नाटक 'माधवी' है जिसमें महाभारत की कथा को आधार बनाकर भारतीय समाज–व्यवस्था में नारी की स्थिति को दर्शाया गया है। भीष्म साहनी द्वारा लिखित 'माधवी' नौंवे दशक का नाटक है। जिस प्रसंग को लेकर इस नाटक की रचना हुई है, साहित्य में यह प्रसंग प्रायः अछूता ही रहा है। महाभारत का विख्यात चरित्र ययाति माधवी का पिता है। दानवीरों में उसका नाम है। इसी नाम को और बढ़ाने की लालसा में द्वार पर आए याचक गालव की आठ सौ अश्वमेधी घोड़ों की मांग को पूरा करने के लिए अपनी एकमात्र कन्या माधवी को दान में दे देता है। माधवी उसका कोई प्रतिरोध नही ंकर पाती। गालव अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के साधन के रूप में माधवी को अलग–अलग राजाओं के पास चक्रवर्ती पुत्र पैदा करने के लिए ले जाता है और उसके बदले में श्यामकर्णी

घोड़े प्राप्त कर लेता है। फिर माधवी को ययाति के पास लौटा देता है। ययाति द्वारा माधवी का स्वयंवर, स्वयंवर में माधवी द्वारा तपोवन का वर रूप में वरण करना–आदि घटनाओं के माध्यम से नाटककार ने दिखाया है कि स्त्री को प्रत्येक स्थान पर पुरुष की इच्छा के अनुसार ही चलना पड़ता है। इस प्रकार भीष्म साहनी ने महाभारतीय कथा के माध्यम से स्त्री–पुरुष–संबंधों के वर्तमान स्वरूप को उठाकर नारी के व्यक्तित्व स्वातंत्र्य के प्रश्न को बड़ी बारीकी से चित्रित किया है। कथ्य के साथ–साथ शिल्प की दृष्टि से भी नाटक उच्चकोटि का है।

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

(क)	भीष्म साहनी,	(ख)	महाभारत,	(ग)	नौवें,
(घ)	तीन,	(ङ)	800 अश्वमेधी घोड़े,	(च)	ययाति

बोध प्रश्न–2

2. 1. माधवी
   2. यथार्थवादी
   3. सोलह
   4. हर्यश्च
3. 1. सही
   2. गलत
   3. सही
   4. गलत
   5. गलत
   6. सही
4. 1. उत्तर के लिए देखिए 9.5.5
   2. उत्तर के लिए देखिए 9.5.4

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 10: 'माधवी' के कथानक का वैशिष्ट्य एवं प्रमुख पात्र

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 'माधवी' के कथानक का वैशिष्ट्य

10.2.1 पौराणिक आख्यान

10.2.2 प्राचीनता में नवीनता

10.2.3 स्त्री संवेदना

10.2.4 सामंती समाज व्यवस्था

10.2.5 नायिका प्रधान कथानक

10.2.6 मानव–मन की द्वंद्वात्मक स्थिति एवं सच्चाइयों का उद्घाटन

10.2.7 रंगमंच की दृष्टि से अनुकूल

10.3 'माधवी' के प्रमुख पात्रों का सामान्य परिचय

10.4 माधवी का चरित्र

10.5 गालव का चरित्र

10.6 ययाति का चरित्र

10.7 अन्य पात्र

10.8 सारांश

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- 'माधवी' नाटक की प्रमुख विशेषताओं को जान सकेंगे;
- 'माधवी' नाटक के प्रमुख अंशों की व्याख्या कर सकेंगे; और
- 'माधवी' नाटक के पात्रों का चरित्रों की प्रमुख विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

'माधवी' नाटक में भीष्म साहनी ने विश्वामित्र के शिष्य गालव और माधवी की प्रसिद्ध पौराणिक कथा को कल्पना का आधार लेकर उसे आधुनिक संदर्भ से जोड़कर पौराणिक कथा की नई व्याख्या की है। इसके कथानक के माध्यम से सदियों से पराधीन जीवन व्यतीत करती हुई, भारतीय नारी की पीड़ा को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। एक तरफ यह नाटक प्रेम के एकनिष्ठ समर्पण भाव और कौमार्य की सामाजिक अवधारणा से जुड़े मूल्यों का संदर्भ उपस्थित करता है, दूसरी तरफ स्त्री–पुरुष–संबंधों में युगानुरूप आए बदलावों और सोच में परिवर्तन की नई दिशाओं का संधान भी करता है। इस नाटक के माध्यम से साहनी जी ने यह बताने का प्रयास किया है कि नारी के विषय में कुछ अलग से सोचने की परम्परा नहीं है, जबकि उसका भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। जिस नारी का जीवन अपने पिता के वचन निभाने और प्रेमी के कर्त्तव्य–पालन में

सहायक होने में बीत गया ,उसका कोई मूल्य या प्रतिदान नहीं मिलता। जहाँ नाटक के अंत में लिया गया माधवी का निर्णय समय –समाज का मूल्यांकन करके स्त्री को स्वाभिमानपूर्ण निर्णय लेने का विवेक देता है, वहीं माधवी को मिले वरदान को स्त्री की शक्ति एवं योग्यता के रूप में तथा ययाति, गालव और विश्वामित्र की प्रतिज्ञाओं को पितृसत्तात्मक व्यवस्था के मिथ्या अहंकार के बड़े प्रश्न के रूप में देखा जा सकता है। समाज में समय के साथ बदलाव होता रहा है। पर प्राचीन काल से लेकर अब तक स्त्रियों के प्रति होने वाला शारीरिक शोषण बदस्तूर जारी ही नहीं है अपितु इस शोषण ने और भी विकृत रूप धर लिया है। ऐसे में भीष्म साहनी द्वारा रचित 'माधवी' (1984) नाटक को आदर्शवादिता और कर्तव्यपरायणता के नाम पर होने वाले स्त्री के शारीरिक और मानसिक शोषण को उजागर करने वाली स्त्री संवेदना की एक महत्वपूर्ण रचना के रूप में देखा जा सकता है।

10.2 'माधवी' के कथानक का वैशिष्ट्य

'माधवी' नाटक के कथानक की विशेषताओं को आप निम्नलिखित बिंदुओं में समझ सकते हैं–

10.2.1 पौराणिक आख्यान

भीष्म साहनी द्वारा लिखित 'माधवी' नौवें दशक का नाटक है। जिसमें महाभारत की कथा को आधार बनाकर भारतीय समाज–व्यवस्था में नारी की स्थिति को दर्शाया गया है। माधवी की कथा का वर्णन महाभारत के उद्योग पर्व के 106 वें अध्याय से 123 वें अध्याय तक आता है। जैसाकि पहले भी बताया गया है कि एक रेल सफर के दौरान त्रिलोचन शास्त्री से जब उन्होंने माधवी की कहानी सुनी तो उन्हें इसमें नाटकीय तत्व नजर आए और उन्होंने माधवी को केन्द्र में रखकर पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री के शोषण व उपेक्षा को उजागर करने के निमित्त से माधवी नाट्यकृति की रचना की।

10.2.2 प्राचीनता में नवीनता

महाभारत की मूल पौराणिक कथा तथा भीष्म साहनी द्वारा रचित नाटक की कथा में परिवर्तन लक्षित होता है। इस नाटक में कल्पना का आधार लेकर पौराणिक कथा की नई व्याख्या प्रस्तुत की गई है और मूल कथा में भी नवीनता का समावेश किया। 'माधवी' के माध्यम से भीष्म साहनी ने नारी स्वातंत्र्य के सवाल को उठाया है। माधवी नाटक की प्रमुख नायिका है। महाभारत के उद्योग पर्व की कथा में माधवी को दायित्व का निर्वाह करने वाली कर्तव्यपरायण, त्यागी, सेवाभाव रखने वाली नारी के रूप में दिखाया गया है, जिसकी न कोई आकांक्षा है, न अधिकार है, जो केवल समर्पण करती है, कोई उपलब्धि नहीं चाहती। जब उसका पिता ययाति उसे दान में दे देता है ,तब वह उसका विरोध नहीं करती, बल्कि चुपचाप गालव के साथ चल देती है। जहाँ गालव ले जाता है, बिना किसी प्रतिरोध के वहाँ चल देती है। जबकि 'माधवी' नाटक में वह पुरुष के शोषण का शिकार तो होती है, लेकिन यहाँ शोषण का विरोध भी करती है। पिता के द्वारा दान में दिए जाने पर वह कोई विशेष प्रतिरोध नहीं कर पाती, लेकिन उसको इस बात का दुख अवश्य होता है कि अगर उसकी माँ होतीं, तो वह कभी भी ऐसा नहीं करतीं। गालव उसे विभिन्न राजाओं के रनिवास में ले जाता है। वह गालव से प्रेम करने लगती है, इसलिए उसे गुरु दक्षिणा में उत्तीर्ण देखना चाहती है। यहाँ तक कि इसके लिए वह गालव के गुरु विश्वामित्र के यहाँ भी जाती है। लेकिन जब मातृत्व के अधिकार से वंचित हो जाती है, तब वह अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक हो जाती है और गालव से कहती है– **'तुमने मुझे किस आग में झोंक दिया।'** यहीं से उसका प्रतिरोध प्रारम्भ होता है, जो नाटक के अंत में लिए गए उसके निर्णय का मार्ग प्रशस्त करता है।

10.2.3 स्त्री संवेदना

यह नाटक पूर्ण रूप से एक स्त्री जीवन की त्रासदी की कहानी है। माधवी प्रत्येक स्थान पर हर एक के लिए भोग्या ही रही। उसकी सुंदरता भी इसका एक निमित्त था। उसे एक वस्तु के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। पहले उसके अपने पिता के द्वारा झूठी दानवीरता और अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के साधन के रूप में गालव के हाथों में सौंप कर और गालव द्वारा अपनी गुरु दक्षिणा चुका पाने के निमित्त के रूप में। माधवी अपने पिता से पूछती है–**"आज मां होती तो क्या वह भी मुझे इस तरह दान में दे देती।"** प्रेम, मातृत्व और त्याग जैसी भावनाओं के साथ माधवी हर एक कदम पर छली जाती है। माधवी कुछ पल अपने पुत्र के साथ रहना चाहती है परंतु वह उस मातृत्व सुख से भी वंचित रह जाती है। माधवी का एक संवेदनशील हृदय भी मौजूद है जब वह कहती है–**"स्वतंत्र? कैसी स्वतंत्रता, गालव? उन दीवारों के पीछे मेरा नन्हा बालक मुँह खोले मेरा स्तन ढूंढ रहा है, और तुम कहते हो मैं स्वतंत्र हूं।"** नाटक में माधवी अपने पवित्र प्रेम के कारण सारे त्याग करती है परंतु उस प्रेम की परिणति वैराग्य धारण से होती है जो उस नाटक को और अधिक मार्मिक और हृदय ग्राही बनाता है।

10.2.4 सामंती समाज व्यवस्था

नाटक का कथानक पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की अवहेलना और उसके शोषण पर आधारित है। इसमें ययाति और गालव पुरुषवादी सामंती सोच के प्रतिनिधि के रूप में मौजूद हैं। अपनी पुत्री को दान स्वरूप देने पर ययाति कहता है–"राज्य ज्योतिषियों ने माधवी के लक्षणों की जाँच की है। इसके गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक चक्रवर्ती राजा बनेगा। सुना मुनीकुमार? ऐसे लक्षणों वाली युवती को पाकर कोई भी राजा तुम्हें घोड़े दे देगा। माधवी को पाकर वह धन्य होगा। तुम निःसंकोच इसे ले जाओ।" अयोध्या के राज महल में माधवी को एक छोटी सी पीठिका पर खड़ा करके राज ज्योतिषी द्वारा उसके अंग प्रत्यंगों का निरीक्षण किया जाता है और उसके राजकन्या होने की पुष्टि की जाती है। यह प्रसंग भी सामंती समाज में स्त्रियों की स्थिति को दर्शाने के लिए पर्याप्त है। गालव भी माधवी की अवहेलना करता है और पूरे नाटक में उसकी संवेदनाओं के साथ खेलता है। वह कहता है– "मैं नहीं जानता था कि संतान पैदा हो जाने पर तुम इतनी दुर्बल हो जाओगी इसीलिए शायद स्त्रियाँ कोई जोखिम का काम नहीं कर सकती हैं, किसी बड़े काम का दायित्व नहीं वहन कर सकतीं।" कथावाचक की उद्‌घोषणाएँ सामंती समाज के दस्तावेज के रूप में ही हैं।

प्रस्तुत नाटक में तीन अंक हैं–प्रथम अंक में तीन दृश्य, दूसरे में चार व तीसरे में तीन दृश्य हैं। लगभग प्रत्येक दृश्य का आरम्भ कथावाचक की उद्घोषणा से होता है। कथावाचक स्त्री के पृथ्वी के समान दायित्व बोध वहन करने वाली, सेवापरायणता, त्याग व सेवा की महिमा का गान करता है– सीता व सावित्री की एकाग्रनिष्ठा की चर्चा करता है और समाज में स्त्री पुरुष की तुलनात्मक स्थिति का बयान करता है। रनिवास में पैंतीस रानियाँ होने के बावजूद काशी नरेश दिवोदास के पुत्र लाभ न होने की सूचना भी कथावाचक से ही मिलती है । खास बात यह है कि वह राजा सत्रह पुत्रियों का पिता है और पुत्र की कामना संजोए हुए है।

तृतीय अंक के प्रथम दृश्य में कथावाचक की एक उद्घोषणा देखिए– ''आखिर थी तो वह नारी ही। नारी भगवान की ऐसी सृष्टि है कि जो अपनी कोमलता के कारण, सदा किसी न किसी का सहारा लिए रहती है जैसे लता को वृक्ष का सहारा चाहिए ..... कहा गया है कि स्त्री रहस्यों की गुथली होती है उसे देवता नहीं समझ पाए तो मनुष्य क्या समझेगा ... पुरुष को भगवान ने धीर गंभीर बनाया है पर स्त्री के स्वभाव में चंचलता होती है। इसीलिए कहा गया है कि नारी की चंचलता पर पुरुष का अंकुश सदा बने

रहना चाहिए। उसमें अन्ततः स्त्री का ही लाभ है।'' अंक दो के दृश्य तीन में कथावाचक की उद्घोषणा है–'धर्मग्रंथों में स्त्री की तुलना पृथ्वी से की गई है। जिस भाँति पृथ्वी संसार भर का बोझ वहन करती है, वैसे ही स्त्री सभी दायित्वों का वहन करती है। इसकी शक्ति सेवा में है। पुरुष महत्वाकांक्षी होता है, पर स्त्री का प्रमुख गुण त्याग है, सेवा है।'' कथावाचक की यह उद्घोषणा पितृसत्तात्मक समाज –व्यवस्था पर व्यंग्य है जिसमें स्त्री की स्थिति को व्यक्त किया गया है। इसी संदर्भ में अंक दो के दृश्य तीन में कथावाचक के कथन को देखिए– ''शास्त्रों में कहा गया है कि जिस राजा को पुत्र –लाभ नहीं होता, वह रंक के समान है। वह राजा अपना इहलोक और परलोक–दोनों खो बैठता है। वंश को आगे ले जाने वाला , सत्ता और सम्पत्ति का अधिकारी , पितरों की आराधना करने वाला, बाप–दादा के यश को और अधिक उज्ज्वल बनाने वाला, पुत्र ही है।'' कथावाचक के इन कथनों के माध्यम से भीष्म साहनी पितृसत्तात्मक समाज की संकुचित सोच को उजागर करते दिखाई देते हैं।

अंक तीन के दृश्य तीन में कथावाचक सूचना देता है– ''आज ययाति के आश्रम में बड़ी धूम है, माधवी का स्वयंवर होने जा रहा है। गालव का दीक्षान्त समारोह भी यहीं होगा।''

ये दृश्य योजना भी सामंती समाज की सोच को व्यक्त कर रही है–मानों स्त्री के जीवन का लक्ष्य विवाह है एवं पुरुष का विद्योपार्जन।

इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि भीष्म साहनी का नाटक 'माधवी' नारी जीवन की त्रासदी का यथार्थ चित्रण करता है। महाभारत की पौराणिक कथा को आधार बनाकर भीष्म साहनी जी ने 'माधवी' नाटक में नारी जीवन की चिरकालीन विसंगतियों को उजागर करने का प्रयास किया गया है। यह नाटक तथाकथित पुरुषार्थ एवं मान्यताओं के खोखलेपन पर करारा तमाचा है। नाटक का कथानक सामंती समाज को प्रस्तुत करने में सफल रहा है।

10.2.5 नायिका प्रधान कथानक

'माधवी' नाट्यकृति में माधवी प्रमुख पात्र है। कथा का क्रम माधवी के इर्द–गिर्द ही घूमता है। माधवी के ही माध्यम से सब के कार्य पूर्ण होते हैं। माधवी को दान करके उसके पिता दानी बनते हैं और माधवी के द्वारा ही गालव को भी 800 अश्वमेधी घोड़े प्राप्त होते हैं। माधवी कहती है–''तुम सदा कर्त्तव्य की बात करते हो गालव! तुम यही कहना चाहते हो कि मैं कर्त्तव्य परायण नहीं हूँ। कर्त्तव्य मेरे पिता का, एक कर्त्तव्य मुनि कुमार गालव का, दोनों के कर्त्तव्य मेरे माध्यम से पूरे हो रहे हैं। फिर भी मैं दुर्बल हूँ। कर्त्तव्य परायण वही हैं। जो पिता ने मुझे सौंपकर अपना कर्त्तव्य निभा दिया और मुनिकुमार ने घोड़े बटोरकर अपना कर्त्तव्य पूरा किया। पहला दानवीर बनाया दूसरा आदर्श शिष्य और माधवी ? मोह की मारी कर्त्तव्य से गिर गई। वह किसी बड़े काम का दायित्व वहन नहीं कर सकती। यही ना।'' महाभारत की मूल कथा से अंतर करते हुए साहनी जी ने 'माधवी' नाटक में माधवी के एक विद्रोही स्वरूप को भी सामने रखा है जिसके कारण माधवी, इस नाट्य कृति में अपना एक प्रमुख स्थान बनाती है। प्रेम में छले जाने के कारण अंतिम दृश्य में माधवी गालव का वरण करने से इंकार कर देती है। वह कहती है– ''तुमने मेरे जीवन की आहुति देकर गुरु दक्षिणा जुटाई है। यौवन व रूप तो मिल जायँगे पर अपने इस दिल का क्या करूँगी जो छलनी हो चुका है'' और वह गालव को मुक्त कर देती है। इस प्रकार भीष्म साहनी ने शीर्षक के अनुकूल माधवी को केंद्र में रखकर कथा की रचना की है।

'मााधवी' नाटक के कथानक की विशिष्टता यह है कि इसमें भीष्म साहनी ने बिना किसी पूर्वाग्रह के, बिना सहानुभूति जताए तटस्थ दर्शक की तरह माधवी के जीवन में आने वाली घटनाओं को पूरी ईमानदारी के साथ दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। माधवी का जीवन पृष्ठ दर पृष्ठ हमारे सामने खुलता है और मिथकीय सन्दर्भ आधुनिक युग बोध से सम्पृक्त हो अधिक प्रासंगिक हो उठे हैं।

10.2.6 मानव–मन की द्वंद्वात्मक स्थिति एवं सच्चाइयों का उद्‌घाटन

एक पुत्री, एक प्रेमिका, एक पत्नी के रूप में अपने सभी दायित्वों का बोझ सहज निभाती माधवी अनुष्ठान कर युवती बनना नहीं चाहती। अपने निजी अस्तित्व को अंत में वह ढूँढ़ ही लेती है। अपना भविष्य अपने आप चुनती है– स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में इस बार न तो वह पुत्री है, जिसने पिता को दानवीर की उपाधि दिलाई, न प्रेमिका जिसने गालव के उद्देश्य पूर्ति हेतु अपने जीवन को कुर्बान कर दिया, न पत्नी जो सिर्फ वंश वृद्धि की मशीन थी– इस बार वह केवल 'स्त्री' थी। मुक्त स्त्री, पूर्ण मनुष्य। उसका व्यक्तित्व विपरीत परिस्थितियों में भी झुकता नहीं। धारा के विपरीत जीती व तैरती हुई माधवी पूरे सामंती समाज व्यवस्था को ठेंगा दिखाती है, जो इतने दोहन के बाद भी उसे तोड़ नहीं पाया। वह कहती है– **'संसार बड़ा विशाल है गालव, उसमें निश्चय ही मेरे लिए स्थान होगा।''** इस तरह निष्ठा, प्रेम, कर्तव्य और कामना के विभिन्न कोणों से उलझे हुए मानव–मन की द्वंद्वात्मक स्थिति एवं सच्चाइयों का उद्‌घाटन करने में यहाँ भीष्म साहनी काफी सफल दिखाई देते हैं।

10.2.7 रंगमंच की दृष्टि से अनुकूल

नाटक का कथानक आदि से अंत तक संगठित है उसमें कहीं भी बिखराव नहीं है। नाटक में कुल 16 पात्र हैं जिसमें माधवी प्रमुख है और सभी दृश्य माधवी से संबंधित हैं। कथानक में रोचकता आदि से अंत तक बनी हुई है। संवाद योजना बेहद अनुकूल और मार्मिक है, संवादों में अनावश्यक विस्तार का अभाव है। संवाद योजना अत्यंत प्रभावी है और उसमें उबाऊपन नहीं मिलता है। संवादों में कहीं–कहीं व्यंग्यात्मकता का पुट भी मिलता है। उदाहरण के लिए माधवी का यह कथन देखिए– **"गालव तुम एक दिन अवश्य ऋषि गालव बनोगे।"** गालव की महत्वाकांक्षा पर माधवी का यह व्यंग्य अत्यंत मार्मिक है। अनावश्यक दृश्यों का ना होना, लंबे–लंबे उबाऊ संवादों का अभाव, सीमित पात्र योजना तथा अंकों और दृश्यों की अधिकता के ना होने के कारण नाटक रंगमंच के सर्वथा अनुकूल है। यह नाटक अपने कथानक की कसावट, संवादों की सांकेतिकता व व्यंजकता, नाटकीयता व अद्‌भुत संप्रेषणीयता के साथ भीष्म साहनी का एक बेहद सशक्त और प्रसांगिक नाटक है। कथ्य को दृश्यत्व तक ले जाने के लिए कथावाचक का प्रयोग आकाशवाणी, कोरस आदि रंगमंचीय युक्तियों एवं परम्पराओं का भी इसमें प्रयोग दिखाई देता है। दृश्य कल्पना, दृश्य परिवर्तन व विभाजन, पात्र योजना, संवाद योजना, वेशभूषा, प्रकाश–व्यवस्था, ध्वनि संयोजन आदि के भी पर्याप्त संकेत हैं।

रंगमंच की दृष्टि से सफल होने के बावजूद इस नाट्‌य कृति में नाटककार की जगह कथाकार भीष्म साहनी का योगदान अधिक है। नाटक की कथावस्तु रोचक है किन्तु नाटकीय कार्य व्यापार के बजाय कथात्मकता की अधिकता है भीष्म साहनी इस आरोप को नकारते भी हैं और स्वीकारते भी हैं– 'मैं नहीं समझता कि नाटक में कहानीकार का रंग कहाँ तक आती है। संभव है वर्षों तक कहानियाँ लिखते रहने के कारण आता हो, परन्तु इसका आभास मुझे नहीं।' अतः वे निर्देशक से आशा रखते हैं कि यदि "नाट्‌यलेख में कमजोरी हो, कुछ रंग संभावनाएँ उन्हें दिखाई दें तो वह मंचोपयोगी बनाने में सहायता करें।" भीष्म साहनी को निर्देशकों की सहायता मिली भी, जिससे उनके नाटकों में गुणात्मक परिवर्तन आया।

10.3 'माधवी' के प्रमुख पात्रों का सामान्य परिचय

चरित्र विधान नाटक का केंद्रीय तत्व है। इसी के माध्यम से नाटककार नाट्‌यार्थ को सम्प्रेषित करता है। माधवी के माध्यम से भीष्म साहनी ने नारी स्वातंत्र्य के सवाल को उठाया है। माधवी, नाटक की मुख्य पात्र है। पूरे नाटक में माधवी, विरोधी स्वभाव की, त्यागी, सेवाव्रती, दायित्वों को निभाने वाली एक जागरूक नागरिक के रूप में चित्रित है। महाभारत का विशिष्ट चरित्र ययाति माधवी नाटक में मातृविहीना माधवी का पिता

है। वह चाहता है कि दानवीरों में उसका नाम सत्य हरिश्चंद्र और कर्ण से ऊपर लिया जाए। दानवीरों की यशस्वी परम्परा में स्वयं को अग्रणी रूप से स्थापित करने के लिए ही वह अपनी बेटी का दान कर देता है, जबकि उसे मालूम है कि गालव की प्रतिज्ञा असंगत है। वह माधवी का दान केवल सम्मान प्राप्त करने के लिए करता है। गालव, विश्वामित्र का शिष्य है जिसे गुरु दक्षिणा के रूप में आठ सौ अश्वमेधी घोड़े देने हैं। राजा हर्यश्च, राजा दिवोदास, तापस, विदूषक ,राजज्योतिषी, मंत्री आदि अन्य पात्र हैं। नाटक के प्रमुख पात्र माधवी, गालव, ययाति आदि का चरित्र चित्रण आगे के बिन्दुओं में किया जा रहा है।

10.4 'माधवी' का चरित्र

माधवी भीष्म साहनी के नाटक 'माधवी' की प्रमुख नारी पात्र है। माधवी, नाटक में उस नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने को तिल–तिल जला कर दूसरों के काम आती है। माधवी की चारित्रिक विशेषताएँ निम्न हैं–

आज्ञाकारी पुत्री

माधवी के चरित्र का सबसे बड़ा गुण एक आज्ञाकारी पुत्री होना है। पिता ययाति द्वारा अपने यश की लालसा की पूर्ति के लिए माधवी को गालव को दान में दे दिया जाता है परंतु माधवी अपने पिता के आदेश का उल्लंघन नहीं करती । वह एक पुत्री के भाव से पिता से प्रश्न तो करती है ''आज माँ होती तो क्या वे भी मुझे इस तरह दान में दे देती।'' परंतु एक क्षण के लिए भी वह अपने मन में पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने का विचार नहीं लाती। पिता के इस निर्णय से माधवी को कष्ट तो पहुँचता है परंतु वह अपने कर्तव्य के आगे घुटने टेक देती है और स्वयं का दान में दिया जाना ही नियति मान लेती है।

वचनबद्धता

वचन को पूर्ण करने का साहस व सामर्थ्य भी माधवी के चरित्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। पुत्र रत्न की प्राप्ति के पश्चात राजा हर्यश्च माधवी को सदा के लिए अपनी पटरानी बनाने को तैयार होते हैं परंतु माधवी अपने वचन से विचलित नहीं होती। जब राजा मंत्री के द्वारा माधवी तक ये समाचार पहुँचाते हैं तो माधवी कहती है'' महाराज को प्रणाम कहें। उनसे कहें कि माधवी भी वचनबद्ध है, अपना वचन पूरा करने के बाद राजप्रासाद के बाहर आ गई है। अयोध्या में रहने का अब कोई प्रयोजन नहीं है, मैं आज ही यहां से चली जाऊँगी, महाराज को मेरा धन्यवाद कहें।''

कर्तव्यपरायण स्त्री

माधवी कर्तव्यपरायण स्त्री पात्र है। कर्तव्य को ही अपना धर्म मान कर माधवी गालव की प्रतिज्ञा पूर्ण करने का साधन मात्र बनने को तैयार हो जाती है। माधवी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है अनेक राजाओं के रनिवास में रहना पड़ता है तथा अपने पुत्रों को भी छोड़ना पड़ता है । परंतु माधवी अपने कर्म पथ से विचलित नहीं होती। वह अपने कर्तव्य का पूर्ण रूप से निर्वाह करती है और अंत में माधवी अपने प्रेमी द्वारा अस्वीकार भी कर दी जाती है।

कोमलता और प्रेम से परिपूर्ण हृदय

माधवी का हृदय बहुत ही कोमल और प्रेम से परिपूर्ण है। वह गालव से प्रेम करती है और उसकी गुरु दक्षिणा पूर्ण कराने के लिए स्वयं तिल–तिल मिटाने को भी तैयार हैं। वह गालव की मुक्ति में अपनी मुक्ति की बीहड़ कंटकपूर्ण राह खोजती है। वह गालव से कहती है– ''तुम ऋणमुक्त होने के लिए यह सब प्रयास कर रहे हो ना? और मैं? ×××× मैं तुम्हें प्राप्त कर पाने के लिए।'' गालव की प्रतिज्ञा पूर्ण कराने के लिए माधवी स्वयं कोई भी पीड़ा सहन करने का साहस रखती है।

ममत्व

प्रेम, भावनाएँ और मातृत्व, ये सभी गुण माधवी के चरित्र में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। माधवी गालव से प्रेम करती है और उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण कराने के लिए कुछ भी करने को तैयार है परंतु जब माधवी प्रथम बार अपने शिशु वसुमना को राजा के पास छोड़ती है तब वह पहले सी माधवी नहीं रहती। तब वह एक स्त्री से माँ बन चुकी होती है और अपने पुत्र के प्रति मोह और पुत्र के छूट जाने का दर्द और ममत्व माधवी के संवादों में साफ दिखाई पड़ता है। वह गालव से कहती है– ''ओ गालव, मैं तुम्हें क्या बताऊं? जब तक बच्चे ने जन्म नहीं लिया था, मैं सारा वक्त तुम्हारे बारे में ही सोचती रहती थी, तुम्हारे बारे में, तुम्हारी गुरु– दक्षिणा के बारे में। पर उसके जन्म लेने की देर थी कि ना जाने मुझे क्या हो गया। मेरे लिए सब कुछ बदल गया। गालव मुझे क्या हो गया है?''

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि माधवी सिर्फ एक आज्ञाकारी पुत्री या कर्तव्यपरायण स्त्री ही नहीं, कोमल हृदय व मातृत्व के स्नेह से भरपूर नारी पात्र है। माधवी का स्त्रियोचित चरित्र उसे महानता के उत्कर्ष पर पहुँचाता है। साथ ही, पुरुष प्रधान समाज में उस उत्कर्ष तक पहुँचने के लिए चुकाई गई कीमतों की ओर संकेत भी करता है।

बोध प्रश्न–1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति उचित शब्दों द्वारा कीजिए :
   - (क) माधवी के लेखक .... हैं।
   - (ख) गालव को .... अश्वमेधी घोड़े प्राप्त होते हैं।
   - (ग) 'माधवी' नाटक में .... अंक है।
   - (घ) 'माधवी' .... से प्रेम करती है।
2. माधवी की कोई तीन चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

10.5 'गालव' का चरित्र

'माधवी' नाटक में गालव, नायक के रूप में पुरुष प्रधान पात्र है। गालव, महर्षि विश्वामित्र का शिष्य है और बारह विद्याओं में पारंगत है। बारह विद्याओं में पारंगत होने के पश्चात में ऋषि विश्वामित्र को गुरु दक्षिणा देने की हठ करता है। उसके हठ से क्रोधित होकर ऋषि विश्वामित्र उसे आठ सौ अश्वमेधी घोड़े गुरु–दक्षिणा के रूप में देने को कहते हैं जिनकी खोज में गालव को इधर–उधर भटकता पड़ता है। गालव के चरित्र को इन बिन्दुओं में विश्लेषित किया जा सकता है–

कर्तव्यपरायण

गालव एक कर्तव्य परायण नायक है। मुँह से निकली बात उसके लिए पत्थर की लकीर के समान है। अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए आश्वमेधी घोड़ों की खोज में भटकता हुआ

गालव अंत में दानवीर राजा ययाति के आश्रम में पहुँच जाता है। ययाति द्वारा समझाने पर कि विश्वामित्र ने क्रोध में आकर गुरु दक्षिणा मांगी है तुम्हें उनसे क्षमा याचना करनी चाहिए, वह नहीं मानता। वह ययाति से कहता है– ''नहीं महाराज, मैं वचनबद्ध हूँ। गुरु दक्षिणा लेकर ही उनके पास जाऊँगा।

हठी

हठी स्वभाव भी गालव के चरित्र की विशेषता है। गुरु दक्षिणा देने की हठ करने के कारण ही ऋषि विश्वामित्र ने क्रोधित होकर गुरु दक्षिणा में आठ सौ अश्वमेधी घोड़े देने को कहा था। अश्वमेधी घोड़े ना मिल पाने के बाद भी वह अपनी हठ नहीं छोड़ता और न ही विश्वामित्र से क्षमा याचना करता है। ययाति के समझाने पर भी वह कहता है– ''नहीं महाराज, मैं वचनबद्ध हूँ। आठ सौ अश्वमेधी घोड़े देने की शपथ ले चुका हूँ। मैं आपके पास अपना वचन निभा पाने के लिए आया हूँ, वचन भंग करने के लिए नहीं आया हूँ।'' गालव के इस हठी स्वभाव का प्रतिफल सर्वत्र माधवी को ही भोगना पड़ता है।

स्वार्थी

गालव एक स्वार्थी व्यक्ति है। माधवी को एक दुष्चक्र में फँसाने वाला गालव ही है। माधवी गालव के लिए एक वस्तु मात्र ही है जिसके माध्यम से वह गुरु दक्षिणा का दायित्व पूरा करता है। माधवी के प्रति उसके मन में स्वार्थ दिखाई पड़ता है। माधवी में चक्रवर्ती बालक उत्पन्न करने का गुण है यह जानकर उसके मन में आशाओं की लहर दौड़ती है वह सोचता है–''क्या माधवी के गर्भ से पैदा होने वाला गालव का पुत्र भी चक्रवर्ती राजा हो सकता है ? चक्रवर्ती गालव! मेरे सामने संभावनाओं के कैसे प्रसार खुलने लगे हैं? माधवी को पाने का अर्थ है चक्रवर्ती राजा तक बन जाने की संभावना!'' लेकिन विचलित मन को काबू में रख कर दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ वह अपनी गुरु दक्षिणा चुकाने के लिए माधवी का भरपूर इस्तेमाल करता है और अंत में अपना वचन पूर्ण कर विजयी होता है।

संवेदनहीन व्यक्ति

गालव संवेदनहीन व्यक्ति है। संपूर्ण नाटक में गालव केवल अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने पर ही विचार व ध्यान केंद्रित रखता है। माधवी के मन की पीड़ा उसकी संवेदना गालव को छू भी नहीं पाती। यहाँ तक कि एक माँ का बार–बार अपने पुत्र को छोड़ने के दर्द का आभास भी नहीं होता। उसे तो बस अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति की ओर ही ध्यान केंद्रित रखना है। माधवी द्वारा अपने पुत्र वसुमना की याद में दुखी होने पर संवेदनहीन गालव कहता है– ''उसे तुम अपना बच्चा क्यों समझती हो माधवी! तुमने तो राजा को एक राजकुमार जुटाया है बस। यही हमारा अनुबंध था।''

महत्वकांक्षी व्यक्ति

महत्वाकांक्षा बस किसी भी तरह आठ सौ अश्वमेधी घोड़े जुटाकर अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहता है ताकि वह ऋषि विश्वामित्र को गुरु दक्षिणा देकर अपना वचन पूरा कर सके और उच्च शिष्य की पदवी प्राप्त कर सके। अपनी इस प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए वह माधवी का भरपूर इस्तेमाल करता है। वह माधवी के मन की पीड़ा को भी समझने का प्रयास नहीं करता। माधवी गालव को जब स्वयं की पीड़ा बताने का प्रयास करती है तब अपनी महत्वकांक्षी प्रवृत्ति के कारण गालव माधवी को ही कमजोर व दुर्बल कहता है। वह माधवी से कहता है ''मैं नहीं जानता था कि संतान पैदा हो जाने पर तुम इतनी दुर्बल हो जाओगी। इसीलिए शायद स्त्रियाँ जोखिम के काम नहीं कर सकतीं, किसी बड़े काम का दायित्व वहन नहीं कर सकतीं।''

स्त्रियों के प्रति असहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण

स्त्रियों के प्रति गालव का दृष्टिकोण असहानूभूतिपूर्ण है। वह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए माधवी का भरपूर इस्तेमाल करता है। यह जानते हुए भी कि माधवी उस से

प्रेम करती है अंत में वह माधवी से विवाह करने से इंकार कर देता है क्योंकि माधवी पहले की तरह सुंदर नहीं रहती, समय के साथ माधवी का सौंदर्य ढल जाता है और वह अनुष्ठान कर पुनः युवती बनने से मना कर देती है। विवाह से इनकार करने के लिए गालव माधवी को झूठी मर्यादाओं का तर्क देता है। गालव कहता है ''मैं धर्म और नैतिक मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं कर सकता, मैं विवश हूँ। ××××× तुम मेरे गुरु के आश्रम में रह चुकी हो। ××××× जो स्त्री मेरे गुरु के आश्रम में रह चुकी हो, उसे मैं अपनी पत्नी कैसे मान सकता हूँ?'' गालव द्वारा दिए गए इन झूठे तर्कों से यह प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित हो जाता है कि गालव मात्र माधवी के सौंदर्य पर आसक्त था। न तो उसे माधवी से सच्चा प्रेम था। न ही वह स्त्रियों के प्रति एक स्वस्थ और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखता था।

10.6 ययाति का चरित्र

'माधवी' नाटक में ययाति पहले राजा थे बाद में वह राजपाट छोड़कर आश्रम में रहने लगे थे। राजा ययाति अपने दानवीर स्वभाव के कारण प्रसिद्ध थे। माधवी, राजा ययाति की इकलौती पुत्री थी। ऋषि विश्वामित्र का शिष्य गालव जब राजा ययाति के पास आकर आठ सौ अश्वमेधी घोड़ों की मांग करता है तब घोड़ों के बदले अपनी एकमात्र कन्या माधवी को गालव को दान में दे देते हैं।

दानवीर

नाटक के पहले दृश्य में ही ययाति की प्रशंसा सुनने की आदत, उसकी उदारता तथा दानी होने के गर्व का बोध होता है। राजा ययाति अपनी दानवीर प्रवृत्ति के कारण अत्यंत प्रसिद्ध है। अपनी दानवीर प्रवृत्ति के कारण ययाति का नाम हरिश्चंद्र व कर्ण जैसे दान वीरों के साथ लिया जाता है। गालव को आठ सौ अश्वमेधी घोड़े देने में असमर्थ होने के कारण वह अपनी एकमात्र कन्या माधवी को गालव को दान में दे देते हैं। जब आश्रमवासी उनसे कहते हैं कि गालव को ऋण मुक्त करके माधवी को वापस लाओ तब वह आश्रम वासियों से कहते हैं ''दान में दी हुई चीज को वापस नहीं लिया जाता''।

संवेदनहीन पिता

ययाति संवेदनहीन पिता हैं। केवल अपना आत्मसम्मान व दानवीर की छवि बचाने के लिए ययाति बिना कुछ भी सोचे समझे माधवी को गालव के हाथों सौंप देता है। मारीच द्वारा यह कहने पर कि ''यदि माधवी को किसी अन्य राजा के पास शेष घोड़ों के लिए रहना पड़े तो यह अच्छा नहीं होगा यह आप की मर्यादा का प्रश्न है'', पर भी ययाति का हृदय नहीं पसीजता। वह मारीच से कहता है ''सुनो मारीच जो दान में दिया जा चुका है उसके बारे में सोचना अथवा चिंता करना एक दानवीर को शोभा नहीं देता, इसका अर्थ है उसके दान में स्वार्थ का खोट मिला हुआ है। लोग कहेंगे कि ययाति अपनी एकमात्र पुत्री के मोह में फंसकर विश्वामित्र के सामने गिड़गिड़ाने गया है....... मारीच...... माधवी इस आश्रम से जा चुकी है।'' ययाति माधवी के भविष्य की पीड़ा को भी नहीं समझता उसके लिए माधवी केवल अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखने का साधन मात्र है। अपनी बेटी माधवी पर किए गए अत्याचार को भाग्य का नाम देकर अंत में ययाति खुद को अकलंकित साबित करता है। ययाति कहता है– ''प्रत्येक व्यक्ति अपना भाग्य स्वयं लेकर आता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के भाग्य का निर्णय नहीं कर सकता। वह केवल अपना कर्तव्य निभा सकता है।''

महत्वकांक्षी

राज–पाट छोड़ कर आश्रम में रहने के पश्चात भी ययाति की महत्वाकांक्षा का अंत नहीं हुआ। आज भी ययाति सबसे बड़ा दानवीर बनने की महत्वकांक्षा में अपनी पुत्री तक को दाँव पर लगा देता है। स्वयं की प्रशंसा की लालसा ययाति के लिए एक पिता–पुत्री के प्रेम से सदैव ऊपर रही है। इसी प्रशंसा की लालसा में वह अपनी पुत्री को गालव

को दान में दे देता है। ययाति सिर्फ और सिर्फ अपनी प्रशंसा सुनना चाहता है। माधवी का भी दान केवल इसलिए करता है कि उसे लगता है वह दिन एक बार तो आएगा ''जब दान दक्षिणा के प्रत्येक प्रसंग में केवल ययाति का नाम लिया जाएगा और लोग कर्ण को भूल जाएंगे।''

स्वयं विश्वामित्र भी नाटक के अंत में ययाति की दानशीलता के बारे में स्तुति वाक्य कहते हैं ''आप सच्चे दानवीर हैं। युगोंयुगों तक एक प्रकाश स्तंभ की भांति आपका नाम चमकेगा।''

आत्ममुग्धता

आत्ममुग्धता का गुण भी ययाति के चरित्र में विद्यमान है। स्वयं पर ययाति को बहुत घमंड है। दानवीरता में कर्ण के स्थान पर सदैव उसी का नाम लिया जाए, ययाति की यही लालसा है। और इसी लालसा को पूर्ण करने के लिए वह सही और गलत में अंतर भी नहीं कर पाता और अपनी पुत्री को गालव को दान में दे देता है। जब मारीच ययाति को माधवी से होने वाले पुत्र लाभ और अयोध्या में होने वाली उत्सव की तैयारियों के बारे में बताता है तो वह अपनी पुत्री की खैर खबर के बारे में न तो पूछना ही चाहता है और न सुनना चाहता है। वह बस अपनी दानवीरता की प्रशंसा ही सुनना चाहता है। वह मारीच से पूछता है ''तुम तो बहुत ही बातों की खबर लेकर आए हो, बताओ तो, उत्तराखंड में लोग मेरे दान दक्षिणा के संबंध में क्या सोचते हैं? वहां पर पता तो चल गया होगा। वह क्या कहते हैं, कि दानवीर ययाति ने एकमात्र पुत्री को सौंप दिया? ××××× लोग यह भी कहते होंगे कि राजपाट त्यागने के बाद भी दानवीर ययाति ने अपना हाथ नहीं खींचा, क्यों? क्या अभी भी दानी राजा कर्ण से मेरी तुलना की जाती है या राजा कर्ण को लोग भूल गए हैं?'' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ययाति में पितृत्व की भावना भी शेष नहीं है, वह केवल स्वयं की प्रशंसा ही सुनना चाहता है।

दंभी

ययाति को स्वयं पर और स्वयं के दानी होने पर बहुत अभिमान है और उसका यह अभिमान मिथ्या मात्र है। वह हमेशा इसी लालसा में रहता है कि मैं इतना दान दूँ। कि लोग राजा कर्ण को भी भूल जाए। जब मारीच ययाति से माधवी के हित के बारे में कहता है तब दंभी ययाति अहंकार से परिपूर्ण होकर मारीच से कहता है'' माधवी निश्चय ही किसी राजा की पटरानी बनेगी। पर मारीच, यदि माधवी किसी राजा की महारानी नहीं भी बन पाई तो मैं उसका स्वयंवर रचाऊंगा, यहीं इसी आश्रम में, देशभर के राजाओं राजकुमारों का आमंत्रित करूंगा। माधवी जिसे चाहे अपना वर चुन ले। समस्त आर्यावर्त जान जाएगा कि ययाति राजपाट त्याग देने के बाद भी हर बात में सबसे आगे हैं। ययाति का आश्रम अभी भी उसकी राजधानी के समान है।'' ययाति को अपनी बेटी माधवी के भविष्य की चिंता से ज्यादा अपने सम्मान और मान की चिंता सताती रहती है।

वस्तुतः देखा जाए तो ययाति एक झूठा दानवीर, दंभी, घमंडी व संवेदनहीन व्यक्ति और पिता है जिसे केवल स्वयं की प्रशंसा और यश की चिंता मात्र है।

10.7 अन्य पात्र

इस नाटक के शेष जितने भी पात्र हैं–विश्वामित्र, समस्त राजा गण, ज्योतिषी आदि, वे या तो पौराणिक कथा के अंग हैं या पुरुष समाज, पितृसत्तात्मक वृत्ति और समकालीन विसंगतियों के व्यंजक और माधवी के इर्द गिर्द विकट परिस्थितियों के सर्जक हैं।

विश्वामित्र

विश्वामित्र गालव के गुरु हैं जिनके लिए गालव को गुरु दक्षिणा एकत्र करनी है। पौराणिक कथाओं में भी ऋषि विश्वामित्र अपने क्रोधी स्वभाव के लिए प्रसिद्ध हैं। माधवी नाटक में भी ऋषि विश्वामित्र क्रोधी व हठी पात्र हैं।

ऋषि विश्वामित्र **ज्ञानी** होने के साथ–साथ **क्रोधी स्वभाव** के भी हैं। गालव को उन्होंने बारह विद्याओं में पारंगत किया, किंतु गालव के द्वारा गुरु दक्षिणा के जिए हठ किए जाने पर वे क्रोधित हो जाते हैं और गुरु दक्षिणा के रूप में आठ सौ अश्वमेधी घोड़ों की मांग करते हैं जबकि उन्हें भलीभाँति मालूम है कि वितस्ता नदी की बाढ़ में सैंकड़ों अश्वमेघी घोड़ों के बह जाने के बाद आर्यावर्त में केवल छः सौ अश्वमेद्यी घोड़े शेष रह गए हैं। फिर भी वे गालव से आठ सौ अश्वमेद्यी घोड़ों की मांग को कायम रखते हैं। अंक दो के दृश्य चार में जब तापस विश्वामित्र से कहता है कि ''महाराज, स्थिति बदल जाने पर आप गालव को कहला सकते थे कि अब और घोड़े भेजने की चेष्टा नहीं करें। दो सौ घोड़े मिल जाने पर भी आप उसे ऋण–मुक्त कर सकते थे। अपने शिष्य पर इतना क्रोध किस लिए महाराज?'' निष्ठुर हृदय के विश्वामित्र कहते हैं– ''गालव महत्वाकांक्षी है। मैंने इसीलिए उसे कठिन परीक्षा में डाला।''

क्रोधी होने के साथ–साथ विश्वामित्र **महत्वाकांक्षी और निष्ठुर** भी हैं। वे चाहते हैं कि देश के अधिकांश अश्वमेद्यी घोड़े उनके पास पहुँच जाएँ। तापस के बार–बार अनुनय–विनय करने पर भी वे अपनी कठोर गुरु दक्षिणा से गालव को मुक्त नहीं करते, जबकि उनको मालूम है कि इस गुरु दक्षिणा को जुटाने में माधवी का सर्वस्व लुट रहा है। उन्हें मालूम है कि माधवी गालव से प्रेम करती है और प्रेम को पाने के लिए ही इतनी मार्मांतक पीड़ा सह रही है फिर भी शेष बचे दो सौ अवश्वमेद्यी घोड़ों के लिए वे माधवी को अपने आश्रम में रख लेते हैं।

हर्यश्च

अयोध्या के **महाराज हर्यश्च** व्यापारिक मनोवृत्ति के हैं जो सौदे की तरह माधवी की जाँच परख करते हैं और गालव से कहते हैं कि ''हम महाराज ययाति का बड़ा आदर करते हैं पर सौदे इस तरह से तो नहीं पटाए जाते कि मात्र तुम्हारे कहने पर हम युवती को रनिवास में रख लें और तुम्हें अश्वमेद्यी घोड़े गिनकर दे दें।' ऐसा कहकर वे माधवी के अंग–प्रत्यंग की राज ज्योतिषी से जाँच कराते हैं और माधवी को अपने रनिवास में सदा–सदा के लिए रखने को तैयार हो जाते हैं। लेकिन, बदले में देने के लिए उनके पास केवल दो सौ अश्वमेद्यी घोड़े ही हैं। अतः शेष छः सौ अश्वमेद्यी घोड़ों के लिए वे अपनी न्यायप्रियता और वचनबद्धता का प्रदर्शन करते हुए पुत्र–प्राप्ति के बाद माधवी को मुक्त कर देने का वचन भी दे देते हैं।

दिवोदास

काशी के राजा दिवोदास रसिक मिजाज के हैं, कला प्रेमी हैं, रास–रंग में सदैव लीन रहने वाले हैं। उनके रनिवास में पैंतीस रानियाँ हैं जिनसे सत्रह पुत्रियाँ पैदा हो चुकी हैं लेकिन उन्हें पुत्र–प्राप्ति की लालसा है। स्त्री को भोग की सामग्री समझना इनकी स्वभाव है। इन्हें अपने रूप–सौन्दर्य पर गर्व ही नहीं है बल्कि ये विदूषक के मुख से भी बार–बार अपने रूप–सौन्दर्य और स्त्रियों का अपने प्रति आकर्षण सुनना चाहते हैं। विदूषक के साथ इनकी वार्ता में अश्लीलता को भी देखा जा सकता है। राजा दिवोदास की मानसिकता स्वार्थी और सामंतवादी है। वह कहता है– ''अगर पुत्र न हुआ और अठारहवीं बेटी हुई तो हम तुम दोनों को काल कोठरी में बंद कर देंगे।''

भोजनगर के वृद्ध **राजा उशीनर** माधवी से पुत्र–प्राप्ति के लिए, उसे रिझाने के प्रयास में देश–देशांतरों का भ्रमण करते हैं, सुख भोगते हैं।

मारीच

एक संवेदनशील मारीच है। वे ययाति के आश्रम में है। मारीच यद्यपि ययाति की उनकी प्रशंसा के गीत गाते रहते हैं, लेकन उन्हें माधवी की भी चिंता है। वे ययाति से प्रार्थना करते हैं कि ऋषि विश्वामित्र से मिलकर अनुरोध करें कि वे शेष घोड़ों का आग्रह छोड़ दें, तो माधवी को अन्य राजाओं के पास नहीं जाना पड़ेगा। मारीच माधवी के

हित–चिंतक हैं। माधवी को उन्होंने अपने सामने खेलकर बड़ा होते देखा है इसलिए उन्हें माधवी से स्नेह है जिसके लिए वे बार–बार उसकी रक्षा के लिए ययाति से अनुरोध करते हैं। 'माधवी' नाटक में मारीच पुरुष पात्रों में सबसे पहले उत्तम पात्र है। मारीच अच्छे हृदय का व्यक्ति है। वह माधवी के भविष्य को लेकर चिंतित है। 'माधवी' नाटक में मारीच ही ययाति को समझाने का प्रयास करता है कि वह विश्वामित्र से गालव को प्रतिज्ञा–मुक्त कराए। शेष सभी पात्र किसी न किसी रूप में माधवी का इस्तेमाल करते ही दिखाई देते हैं।

बोध प्रश्न–2

3. **निम्नलिखित वाक्यों में सही या गलत का निशान लगाइए :**
    1. 'माधवी' नाटक में सामंती समाज का प्रस्तुतीकरण हुआ है। ( )
    2. 'माधवी' नाटक एक पुरुष प्रधान कृति है। ( )
    3. गालव माधवी के पिता थे। ( )
    4. ऋषि विश्वामित्र माधवी के गुरु थे। ( )
    5. माधवी ययाति की पुत्री थी। ( )
    6. मारीच, माधवी का हित नहीं चाहता था। ( )
4. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :**
    1. 'माधवी' एक .... आख्यान है।
    2. ययाति .... में अपना नाम दर्ज कराने के आकांक्षी थे।
    3. 'माधवी' नाटक रंगमंच की दृष्टि से .... कृति है।
    4. ययाति एक संवेदन .... पिता के रूप में दिखाई देते हैं।
    5. ऋषि विश्वामित्र ने .... अश्वमेधी घोड़े मांगे।
    6. 'माधवी' नाटक का नायक .... है।
    7. गालव .... का शिष्य है।
    8. ययाति .... पिता है।
5. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 5–5 पंक्तियों में दीजिए :**

    (क) गालव के चरित्र की दो विशेषताएँ बताइए।

    ....

    ....

    ....

    ....

    ....

    (ख) ययाति के चरित्र की विशेषताएँ बताइए।

    ....

    ....

    ....

....

....

(ग) 'माधवी' नाटक के अन्य पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

10.8 सारांश

'माधवी' नाटक मिथक प्रयोग की दृष्टि से एक प्रतिष्ठित नाटक है। पुरुष प्रधान समाज में कर्त्तव्यों की शृंखला में बँधी, शोषित, पराजित व अपमानित नारी की त्रासद स्थिति और नियति को रेखांकित करती, महाभारत कालीन कथा का जीवंत दस्तावेज है जो अपनी गहन मार्मिक संवेदना की व्यंजना से आज भी उतना ही प्रासंगिक है। नाटककार ने इस पौराणिक कथा को भारतीय समाज–व्यवस्था में, विशेषकर पुरुष प्रधान व्यवस्था में निरीह नारी की स्थिति को रेखांकित करते हुए इस अछूते प्रसंग को पूरी तटस्थता से नवीन आयाम दिया है जिसके कारण यह नाटक यथार्थ प्रसंगों एवं वैयक्तिक–समाजिक द्वंद्व जैसे शाश्वत प्रश्नों से संघर्ष करता हुआ पौराणिक परिवेश के माध्यम से आज की सामाजिक विषमताओं को भी अभिव्यक्त करता है। कथानक की मार्मिकता के माध्यम से पुरुष शासित समाज में फँसी असहाय और दुर्बल नारी की क्रूर नियति को साहनी जी ने बखूबी दर्शाया है। नाटकीय कौशल का प्रयोग करके सामंती व्यवस्था की भयावह तस्वीर को दिखाया है साथ ही सम्पूर्ण नारी जाति की हृदयविदारक पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है। मिथक के आवरण में वर्तमान यथार्थ का प्रस्तुतिकरण इसकी प्रमुख विशेषता है। भीष्म साहनी द्वारा रचित मानवीय संवेदना के द्वंद्व का यह नाटक मात्र अपने कथानक और अद्भुत चरित्र योजना के कारण ही चर्चित नहीं रहा अपितु इसके शिल्पगत कौशल ने इसकी गरिमा को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया। मिथकीयता तथा ऐतिहासिकता का निर्वाह करने में संवाद तथा भाषा का सामंजस्य विशेष उल्लेखनीय है।

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. (क) भीष्म साहनी, (ख) 800, (ग) तीन, (घ) गालव
2. उत्तर के लिए देखिए 10.4

बोध प्रश्न–2

3. 1. (सही), 2. (गलत), 3. (गलत), 4. (गलत), 5. (सही), 6. (गलत)।
4. 1. पौराणिक, 2. दानवीरों, 3. अनुकूल, 4. हीन, 5. आठ सौ, 6. गालव, 7. महर्षि विश्वामित्र, 8. संवेदनहीन
5. (क) उत्तर के लिए देखिए 10.5,
   (ख) उत्तर के लिए देखिए 10.6,
   (ग) उत्तर के लिए देखिए 10.7।